# कालिदास के गीति काव्यों का कथ्य एवं शिल्प

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

1995


शोधार्थी

रेखा मिश्रा


निर्देशक<br>
डा0 विशन लाल गौड़ 'व्योमशेखर'<br>
एम.ए., पी-एच.डी., व्याकरणाचार्य<br>
प्राचार्य<br>
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलिज, अतर्रा, बांदा (उ0प्र0)



शोध केन्द्र<br>
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलिज, अतर्रा, बांदा, उ0प्र0<br>
बुन्देलखण्ड विश्व विधालय, झांसी

# अनुक्रमणिका

## भूमिका

'कालिदास के गीतिकाव्यों का कथ्य एवं शिल्प' विषय को अपनाकर किया गया यह शोध–अध्ययन कालिदास की रचनाओं के प्रति मेरी स्वाभाविक अभिरुचि की देन है । मैं अपने छात्र–जीवन में प्रायः सभी कक्षाओं के स्तर पर संस्कृत की विद्यार्थी रही हूँ । मेरे परिवार की परम्परा ने भी मुझे संस्कृत–साहित्य के अध्ययन की ओर प्रेरित किया । इस सबका ही यह परिणाम हुआ कि मैंने एम.ए. पर्यन्त संस्कृत अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त किया ।

मुझ जैसे साधारण अध्येता की तो बात ही क्या करना संस्कृत का महान कवि कालिदास सरल और जटिल सभी प्रकृति के काव्य–अध्येताओं का मन मोहने वाला कवि माना जाता है । अँग्रेजी साहित्य में जिस प्रकार की लोकप्रियता शेक्सपीयर की देखी जाती है वैसी ही हमारे संस्कृत कवि कालिदास की भी है । जिस प्रकार से शेक्सपीयर की रचनाओं को लेकर छोटे–बड़े सभी प्रकार के शोध–अध्ययन मिलते हैं ठीक वैसी ही स्थिति हमारे महान कवि कालिदास की है । उसकी काव्य रचनाओं में ऐसा आकर्षण है कि संस्कृत का प्रत्येक सहृदय अध्येता उलट–पलटकर उसके काव्य–संसार की ओर ही खिंच जाता है । यह आकर्षण ही मेरे प्रस्तुत अध्ययन का कारण है ।

कालिदास के गीतिकाव्य पर किये गये मेरे इस अध्ययन के लिए एक अन्य अनुकूल स्थिति की प्रेरणा का कारण बनी । मेरे शोध–निर्देशक डॉ० विशन लाल गौड़, व्योमशेखर, स्वयं संस्कृत के आधुनिक गीतकार हैं । उनकी 'अग्निजा' और

अहं राष्ट्री' जैसी गीति–रचनाएँ पढ़ने का मुझे भी सौभाग्य मिला । उनके निर्देशन में संस्कृत के आधुनिक मुक्तक साहित्य पर एक–दो महत्त्वपूर्ण शोध–कार्य भी किये जा चुके थे । अपने शोध–अध्ययन के लिए जब मेरे विषय चयन की बात आई तथा एक उपयुक्त निर्देशक की समस्या का मुझे सामना करना पड़ा तो मेरे परिवार के एक शुभचिंतक महानुभाव ने मुझे डा() गौड़ की शरण में पहुँचने का परामर्श दिया । जिस समय मैं उनके पास प्रथम बार पहुँची तो वे, अपने प्राचार्य पीठ पर आसीन महाविद्यालय के प्रशासनिक कार्यों में अत्यन्त व्यस्त थे । संयोगवश, मुझ जैसे दो–तीन शोधार्थी और भी पहले से ही भेंट करने की प्रतीक्षा में बाहर बैठे थे । प्रशासनिक व्यस्तताओं से कुछ अवसर पाकर उन्होंने शोधार्थियों की प्रार्थनाएँ सुनी, सब प्रार्थियों की एक ही माँग थी कि उनके लिए प्राचार्य गौड का निर्देशन किसी तरह प्राप्त हो जाए । प्राचार्य जी ने शोधार्थियों की समस्या को हल करने के लिए संस्कृत–विभाग के एक–दो आचार्यगण को आमन्त्रित किया और शोधार्थियों के लिए निर्देशन प्रदान करने का अनुरोध किया । परन्तु बात कुछ उस तरह बन नहीं सकी । किसी निर्देशक के साथ पहले से ही शोधार्थी संख्या पूर्ण थी और किसी की अपनी कुछ दूसरे प्रकार की व्यस्तताएँ थी । अंततः निर्देशन का सारा भार–बोझ शोधार्थियों की आग्रहपूर्ण प्रार्थना पर प्राचार्य गौड को स्वयं स्वीकारना पड़ा और उन्होंने यह कहते हुये कि प्राचार्य जीवन की बेढुकी व्यस्तताएँ शोधार्थियों के साथ न्याय तो क्या करने देंगी परन्तु जब कोई और सहारा नहीं है तो हम ही स्वीकृति प्रदान करते हैं ।

शोध-निर्देशक हो जाने की स्वीकृति ही पर्याप्त नहीं थी । शोधार्थियों की रूचि और क्षमता को ध्यान में रखकर उनके लिए उचित और उपयोगी शोध-विषय चयन करने की दिशा देने की भी बहुत बड़ी आवश्यकता थी । प्राचार्य गौड़ ने जहाँ तक मुझे ध्यान है, सभी को कोई न कोई नई प्रवृत्ति और नई दृष्टि से जुड़े विषयों के चयन का ही परामर्श दिया मेरा यह विषय उन्हीं के परामर्श की देन है।

मेरे इस अध्ययन की निरन्तरता में बहुत सी बाधाएँ बीच-बीच में आती रहीं । यहाँ तक कि कुछ कारणों से मेरे शोध-निर्देशक प्राचार्य गौड भी महाविद्यालय से दूर रहे और उनसे सम्पर्क बनाने में तथा उनका मार्ग दर्शन प्राप्त करने में मुझे बहुत सी बाधाएँ झेलनी पड़ी । यह सब होने पर भी एक शोध-निर्देशक के रूप में डॉ0 गौड़ जो भी अधिक से अधिक कृपा कर सकते थे उन्होंने वह कृपा की । यह उनकी कृपा का ही सहारा था कि अपने शोध के दौरान में कभी भी निराश और उत्साह-हीन नहीं हुई । आगे चलकर वह संकट भी दूर हो गया और मेरे इस अध्ययन के उत्तरकाल में प्राचार्य गौड़ का वरद हस्त मुझे पूरी तरह प्राप्त रहा ।

प्राचार्य गौड के निर्देशन में सम्पन्न किये गये मेरे इस अध्ययन में मैने कालिदास के गीति-काव्यों के कथ्य और शिल्प के बीच के अन्त:संबंधों का पहचानने का प्रयत्न किया है । मेरा यह शोध-अध्ययन परम्परागत काव्यशास्त्र की अलंकार प्रणाली तक ही बंधा नही रहा है बल्कि मैने कालिदास के गीति

काव्यों के शिल्प सौंदर्य को समझने के लिए आधुनिक समीक्षा दृष्टियों को अपनाने का भरपूर प्रयास किया है । मुझ जैसा कोई भी साधारण शोधार्थी कालिदास काव्य के किसी भी पक्ष का पूरा पूरा मर्म खोल देने वाला अधिकारी पात्र तो माना ही नहीं जा सकता, वह तो केवल कवि के एक नौसिखिए पाठक के रूप में उसकी कविता के साथ जुड़ने का यथाशक्ति प्रयत्न भर कर सकता है । इस प्रयत्न में भी उसका मार्ग दर्शन उन्हीं विद्वानों की कृतियों से होता है जो ऐसे महान साहित्यकारों के कृतित्त्व को समझने का मार्ग खोलते हैं । इस दिशा में जिन विद्वानों की कृतियों से मुझे मार्गदर्शन मिला है तथा जिन्होंने मेरी गुत्थियों को सुलझाने में कृपापूर्ण सहारा दिया है, उन सबके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ । मेरे शोध निर्देशक प्राचार्य गौड़ का मैं धन्यवाद कर सकूँ, ऐसा मेरा सामर्थ्य नहीं है । विषय स्थितियों में भी उन्होंने मेरा साहस नहीं टूटने दिया, यह उनका सबसे अधिक प्रेरणाप्रद वरदान रहा । वे सदा यही कहते रहे कालिदास के बारे में इधर उधर का सब पढ़ो लेकिन इस सबके साथ कालिदास की कविता के सहृदय पाठक बनो । स्वयं यह देखों कि कालिदास की कविता की कौन सी सुन्दरता तुम्हारे मन को सबसे अधिक छू रही है और कवि ने उस सुन्दरता को किस शैली से व्यक्त किया है । इसके लिए अत्यावश्यक है कि जो कविताएं या जो छन्द रचना मन को अधिक लुभाए वह गुनगुनाते गुनगुनाते कण्ठ में बस जानी चाहिए । ऐसा होने पर कविता अपने कथ्य और शिल्प के सौन्दर्य को स्वयं पाठक के सामने खोलकर रख देती है । मुझसे जितना कुछ बन पड़ा मैंने कालिदास के गीतिकाव्यों को लेकर वैसा ही किया । इसके फलस्वरूप ही मेरा यह कार्य सम्पन्न हो सका है ।

मेरे शोध कार्य के दौर में अतर्रा स्नात्कोन्तर महाविद्यालय के पुस्तकालय से जो भी ग्रन्थादि का सहयोग संभव था, वह वहॉ पुस्तकालय अध्यक्ष श्री हीरालाल यादव तथा उनके सहयोगी कर्मचारियों से मिला, इसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ । इसके अतिरिन्क्त संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ डा0 जगदेव प्रसाद पाण्डेय, आचार्य कृष्णदन्त चतुर्वेदी, डॉ0 ओंकार प्रसाद त्रिपाठी, श्री राजाराम दीक्षित आदि का सहयोग मुझे मिला, मैं उंनका आभार प्रकट करती हूँ ।

मैं स्वयं शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर की एक संस्था की शिक्षिका हूँ । मुझे मेरी प्रधानाचार्या और परिवार जन से भी पूर्ण सहयोग मिला, अतः मैं उनकी भी आभारी हूँ । इस कार्य के पूर्ण हो सकने में इन सभी का मूल्यवान सहयोगरहा है ।

यह शोध कार्य जैसा है और जिस रूप में है, विद्वानों के कर कमलों में समर्पित है । मुझे आशा है, यह उनका आर्शीवाद प्राप्त करने योग्य अवश्य सिद्ध हो सकेगा ।

विनीत

रेखा मिश्रा

रेखा मिश्रा

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

**प्रस्तुत शोध का उद्देश्य एवं दिशा :**

कालिदास के गीतिकाव्यों का कथ्य एवं शिल्प शीर्षक के अन्तर्गत किया जा रहा यह शोध अध्ययन स्पष्ट रूप से कालिदास के गीतिकाव्य के अनुभूति पक्ष और कवि की अनुभूतियों का अभिव्यक्ति देने वाले काव्य शिल्प को आमने-सामने रख कर किया जा रहा एक समीक्षात्मक अध्ययन है । इस समीक्षात्मक अध्ययन के लिए हम प्राचीन काव्य शास्त्रीय तथा आधुनिक दोनों प्रकार के काव्य शास्त्रीय प्रतिमानों को उपयोग में लाएंगे । यह कोई तकनीकी अध्ययन नहीं है । यह ऐतिहासिक प्रवृत्ति का अध्ययन भी नहीं है । इस अध्ययन का उद्देश्य संस्कृत के किसी अन्य गीतिकार के साथ कालिदास के गीति कौशल की तुलनात्मक समीक्षा करना भी नहीं है । यह अध्ययन तो सीधे-सीधे संस्कृत साहित्य में गीति काव्य की विधा का स्वतन्त्र रूप से प्रवर्तन करने वाले महान गीतकार कालिदास के गीति काव्यों का सौन्दर्य बोध परक अध्ययन है । गीत काव्यकार कालिदास के इस सौन्दर्य बोध के हमें कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से आँकना है ।

अपने इस अध्ययन के एक समग्रता और व्यवस्था देने की दृष्टि से हम एक सुनिश्चित दिशा लेकर चल रहे है । हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि प्रत्येक साहित्यकार अपने युग के समाज का प्रतिबिम्ब करता है । उसका सौन्दर्य बोध और कलात्मक अभिरुचि युग का दर्पण होता है । हमारे महान कवि के कृतित्व में उसके युग बोध का प्रभाव समझना अध्ययन का दूसरा सोपान होगा गीतिकाव्य के मर्म को पहचानना अर्थात गीति काव्य का सैद्धान्तिक स्वरूप प्रतिपादन ।

अध्ययन का तीसरा सोपान होगा कालिदास के समग्र कृतित्व का राष्ट्रीय स्वरूप विवेचन गीति काव्य भी उसके राष्ट्रीय कृतित्व का ही एक महत्वपूर्ण पक्ष है । यह समीक्षण हमारे समीक्षा

बिन्दुओं को अधिक सार्थकता और स्पष्टता देने वाली कालिदास की गीतियों के साथ–साथ चलकर सम्पन्न होगा ।

अध्ययन के चतुर्थ सोपान में यह संस्कृत गीति काव्य परम्परा एक विकासात्मक सर्वेक्षण करेंगे और उस परम्परा में अपने महान कवि का स्थान निर्धारित करेंगे

अध्ययन के पाँचवे सोपान में हम गीतिकाव्यकार के रूप में कालिदास के कवित्व मुक्त दृष्टि से विवेचन करेंगे । इस विवेचन में हम यह देखना चाहेंगे कि कालिदास के कवित्व की मौलिकता क्या है तथा उसके गीतिकाव्य का प्रभाव कितना व्यापक है । ऋतुसंहार और मेघदूत का गीतकार किस भावबोध की धरती से उगा है । इस सोपान के अन्तर्गत हम ऋतुसंहार और मेघदूत का परिचयात्मक विश्लेषण करेंगे ।

हमारे अध्ययन की दिशा का छठा सोपान कालिदास के ऋतुगीतों का काव्य ऋतुसंहार होगा । इस सोपान के अन्तर्गत हम कालिदास के ऋतुगीतों की भाषा भूमि तथा उसके गीतिशिल्प का प्राच्य तथा नव्य दोनों दृष्टियों मूल्यांकन करेंगे ।

सातवें सोपान में हम महाकवि के विश्व विख्यात गीतिकाव्य मेघदूत का सर्वांग सौन्दर्य विवेचन करेंगे । उपसंहार नामक आठवें सोपान में हम अपने अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों का सिंहावलोकन करके अपने विवेचन को पूर्णता प्रदान करेंगे ।

<u>अध्ययन की विधाः</u>

कालिदास के गीतिकाव्यों पर किए जा रहे प्रस्तुत अध्ययन के मुख्य बिन्दु महाकवि की गीति रचनाओं के कथ्य और उस कथ्य को अभिव्यक्ति देने वाले काव्य शिल्प की एक दूसरे के सापेक्ष समीक्षा करना है । हमारी यह समीक्षा इस मान्यता के साथ सम्पन्न की जाएगी कि प्रबन्ध कविता, मुक्तक कविता और गीति मुक्तक कविता, कविता के यह सभी रूप मूलतः 'शब्दार्थौ' काव्यम् की परिभाषा परिधि में आते हैं । काव्य के यह तीनों रूप गद्य न होकर स्वरूपतः कविता ही हैं । परन्तु इनका विधात्मक

रूप एक दूसरे से बहुत भिन्न है । इनका आकार प्रकार तो एक दूसरे से भिन्न है ही, साथ ही इनका लहजा, इनकी अभिव्यक्ति का प्रकार तो इतना भिन्न है कि एक का मूल्यांकन करने वाले सारे के सारे काव्य शास्त्रीय प्रतिमान सभी पर सामान रूप से लागू नहीं किये जा सकते ।

कविता के इन तीनों रूपों के अलग–अलग विधात्मक व्यक्तित्व को तथा उनकी अपनी अपनी विशिष्ट अपेक्षाओं को हमारे संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने आरम्भ में गम्भीरता से नहीं लिया था । आगे जाकर साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज का ध्यान अंशतः इस ओर गया था । उन्होंने साहित्य को मुख्यतः गद्य और पद्य दो रूपों में विभक्त करके गद्य काव्य और पद्य काव्य के भी कुछ विशिष्ट प्रकृति रखने वाले विधात्मक भेदों का उल्लेख किया है । उदाहरण के लिए उन्होंने गद्यात्मक कथा साहित्य को दो रूपों में रखा–– कथा और आख्यायिका । उनके प्रतिमान के अनुसार अकेले बाणभट्ट की दो गद्य रचनाएं अलग--अलग विधा की कथात्मक रचनाएं हो गयी । कादम्बरी कथा रचना है तो हर्षचरित आख्यायिका ।

कविता साहित्य की रचनाओं को भी विश्वनाथ ने तीन वर्गो में किया । प्रथम वर्ग में वे बड़ी कविता रचनाएं हैं जो न केवल आकार में बहुत बड़ी हैं बल्कि वर्ण्य विषय की दृष्टि से बड़ी विविधता और व्यापकता रखती हैं । इनका भाव संसार भी बदलते हुए वर्ण्य विषय के अनुकूल बदलता रहता है । इस प्रकार की रचनाओं को उन्होंने महाकाव्य माना ।

महाकाव्य से बहुत लघु आकार वाली तथा वर्ण्य की दृष्टि से एक ही बिन्दु को केन्द्र में रखने वाली कविता रचना को विश्वनाथ ने खण्ड काव्य नाम दिया ।

वह कविता रचना जो पूर्वापर प्रसंग से सर्वथा निरपेक्ष हो और स्वयं में पूर्ण हो उसे मुक्तक नाम दिया–––

विश्वनाथ कविराज गीत को पृथक से कोई स्थान नहीं दे सके । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उनकी दृष्टि से मुक्तक नाम ही आज गीत कही जाने वाली कविता को समेट सकता था । इसका अर्थ यह निकला कि संस्कृत कविता का गीत महाकाव्य रचनाओं के साथ साथ अस्तित्व रखता था परन्तु उसको एक स्वतन्त्र प्रकार की कविता विधा के रूप में नहीं देखा जा सका था ।

संस्कृत काव्यशास्त्र में 'गीत' को पृथक विधा के रूप में स्वीकृति न मिलने से उसकी स्वरूपगत अपेक्षाओं पर भी पृथक से ध्यान नहीं दिया जा सका । इसके विपरीत हम देखते हैं कि महाकाव्य विधा और नाट्यविधा पर विस्तार के साथ काव्यशास्त्रीय चिन्तन किया गया है । इस सबका यह परिणाम हुआ कि संस्कृत के प्राचीन गीतिकाव्यों के मूल्यांकन के लिए हमारे काव्यशास्त्री हमारे लिए केवल वे ही काव्य शिल्पीय प्रतिमान दे सके हैं जो काव्य सामान्य के मूल्यांकन में उपयोगी होते हैं । उनके दिए हुए काव्य शिल्पीय प्रतिमानों का गीतिकाव्य का शिल्प और संवेदन परखने के लिए कोई महत्त्व नहीं है, यह बात नहीं है, वे सब उपयोगी हैं । उन्होंने काव्य की भाषा में जिन अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य आदि विशेषताओं के प्रतिमान लिए उन सबका महत्त्व है । वह महत्त्व तो इतना है कि उन प्रतिमानों से हम किसी भी भाषा के साहित्य का काव्य शिल्पीय मूल्यांकन एक बहुत बड़ी सीमा तक कर सकते हैं । उनके दिए काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों की सर्वथा उपेक्षा तो की ही नहीं जा सकती है । परन्तु इसके साथ-साथ यह भी वास्तविकता है कि जैसे-जैसे साहित्य की रचनाओं के नये-नये विधात्मक रूप सामने आते जा रहे हैं, उन रूपों की अपनी कुछ विशेष अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर कुछ नए प्रतिमान और नयी काव्य दृष्टियों का आविर्भाव होना भी स्वाभाविक है । कविता की गीत विधा के साथ भी ऐसा ही समझा जाना चाहिए ।

यहां एक प्रश्न यह हो सकता है क्या संस्कृत के प्राचीन गीति काव्य भी नयी गीत दृष्टि से परखे जाने चाहिए और क्या उन पर नये प्रतिमान लागू करना उचित होगा । इस बारे में हम यही कह

सकते हैं कि नये और पुराने के बीच संवाद विकास की प्रक्रिया का स्वाभाविक अंग है । इससे परम्परा अबाध बनी रहती है । साथ ही, यह भी कि प्राचीन कृतियों को नयी दृष्टियों से झाँकने पर उनमें बासीपन की गंध कभी नहीं आ पाता है । कालिदास के गीतिकाव्यों का अध्ययन हम इसी समन्वित दृष्टि सम्पन्न करना चाहेंगे । प्राचीन काव्य शास्त्रीय दृष्टि से हम कालिदास के गीति काव्यों के शिल्प और संवेदन दोनों पक्षों को अलंकार, ध्वनि, औचित्य और रस आदि की दृष्टि से भी परखेंगे और साथ ही आधुनिक गीतिशिल्प की दृष्टि से महाकवि की गीतियों में आत्म परकता, ऐन्द्रियकता, बिम्ब सौन्दर्य तथा भावतरलता जैसे महत्वपूर्ण पक्षों का भी अवलोकन करेंगे ।

उपर्युक्त प्रकार से हमारा यह अध्ययन प्राचीन काव्य शास्त्रीय पद्धति और आधुनिक मुक्त समीक्षा पद्धति का एक समन्वित रूप होगा । इस प्रकार के अध्ययन से हमें आशा है कि परम्परावादी समीक्षा पद्धति का बासीपन दूर होगा और कालिदास के गीतिकाव्यों को कुछ न कुछ नयी और मुक्त दृष्टि से परखने के द्वार खुलेंगे ।

<u>प्रस्तुत अध्ययन का योगदान</u>

मानव मात्र के लिये गीति और कहानियाँ सबसे अधिक रुचिकर एवं प्रभावोत्पादक रही हैं । शैशव अवस्था में ही बालक के कोमल अन्तःकरण में इन दोनों की छाप माताओं द्वारा सुनाए गए गीतों और कहानियों से पड़ जाती है । मातायें अपने नवजात शिशुओं को लोरिया सुनाती हुयी थपकियाँ देकर सुलाती है एवं कुछ सयाना हो जाने पर लघु कथाओं के द्वारा उसका मन बहलाव करती है । इन्हीं दोनों के बीच संस्कार बाल्यकाल में ही मानव के अन्तःकरण में सन्निहित हो जाते है और आगे चलकर पल्लवित पुष्पित और फलित होते हैं । इन दोनों में भी भावात्मक दृष्टि से गीति तत्व अधिक प्रभावित होता है । साधारण से साधारण व्यक्ति भी अपनी मानसिक प्रसन्नता की अभिव्यक्ति गुनगुनाहट के द्वारा प्रकट करता

है ।

मानव मन के न केवल प्रसादन के लिये प्रत्युत उसके परिष्कार के लिये भी गीत बहुत ही प्रभावी सिद्ध होते हैं । यही कारण है कि कोई भी रस सिद्ध कवि महाकाव्य कृतियों की अपेक्षा लघु विस्तार वाले गीति काव्य अथवा खण्ड काव्यों में अधिक भाव बोध उद्वेलित करता है । हम जानते है कि महाकवि कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तलम् विश्व साहित्य में अभूतपूर्व स्थान बना चुका है फिर भी उनका मेघदूत गीतिकाव्यों के संसार में अद्भुत एवं अद्वितीय है । निश्चय ही इस कृति में कवि ने अपने अन्तः कथ्य को अपनी अनुभूतियों के आवेगों को जिस तरह किया है वह उसकी अन्य रचनाओं से सौन्दर्य में कहीं बहुत अधिक आगे बढ़ गया है । यही कारण है कि कालिदास के मेघदूत की मुक्त कण्ठ से सहृदय जन के मध्य प्रशंसा होती रही है । 'माघे मेघे गतं वयः' जैसी सूक्तियाँ इसके निदर्शन हैं । कुछ सहृदय रसिक जन तो इस उक्ति में संशोधन करके उसे इस रूप में प्रस्तुत करना चाहते है---- 'मेघे मेघे गतं वयः' अर्थात् मेघदूत वह गीतिकाव्य है जिसे पूरा जीवन पढ़िए उसकी अभिनवता और उसका आकर्षण कभी कम नहीं होता ।

मेघदूत के शिल्प और कथ्य सौन्दर्य के प्रवाह में हम महाकवि के ऋतुसंहार नामक प्रारम्भिक गीतिकाव्य का महत्व भी कम करके नहीं आँक सकते । यह गीत काव्य ऋतुओं का पालना कहे जाने वाले भारत के लोक जीवन का संगीत है । कालिदास का संवेदनशील कवि ऋतुओं से ही बना है । मानव जीवन में प्राकृतिक दृश्यों के सौन्दर्य का जितना महत्व है उसको शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता । हमारे प्राचीन काव्य शास्त्रियों ने जिनमें भामह, दण्डी, वामन उद्भट्ट, मम्मट, जगन्नाथ आदि सभी आते है । रसाभिव्यक्ति में प्रकृति को मात्र उद्दीपन का साधन निरूपित किया है । हम समझते है कि यह दृष्टि अल्प है । आधुनिक रामचन्द्र शुक्ल ने इस सन्दर्भ में एक नयी और व्यापक दृष्टि प्रदान

की है । यह दृष्टि लक्ष्य करने योग्य है । आचार्य शुक्ल अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्य नामक निबन्ध में इस सन्दर्भ में अपने विचार अभिव्यक्त किये है । वे लिखते है-- साहित्य के आचार्यों की दृष्टि में वन, उपवन, ऋतु आदि श्रृंगार के उद्दीपन मात्र है वे केवल नायक या नायिका के हँसाने या रूलाने के लिये है । जब यही बात है तब फिर इनका संश्लिष्ट चित्रण करके श्रोता को बिम्ब ग्रहण कराने से क्या प्रयोजन उनके नाम गिनाकर अर्थ ग्रहण करा दिया बस, हो गया । पर सोचने की बात है कि क्या प्राचीन कवियों ने इनका वर्णन इसी रूप में किया है ? क्या विश्व हृदय बाल्मीकि ने वनों और नदियों आदि का वर्णन इसी उद्देश्य से किया है ? क्या महाकवि कालिदास ने कुमार संभव के आरम्भ में ही हिमालय को जो विशद वर्णन किया है । वह केवल श्रृंगार के उद्दीपन की दृष्टि से ? कभी नहीं । ये वर्णन पहले तो प्रसंग प्राप्त है अर्थात् आलम्बन की परिस्थिति को अंकित करने वाले हैं ।[1]

कहने का तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक वर्णन केवल अंग रूप से ही हमारे भावों के उद्दीपन भी नहीं है । वे स्वतन्त्र रूप में हमारे भावों के आलंबन भी है ।

आचार्य शुक्ल ने उपर्युक्त निबन्ध में ही लिखा है कि प्रकृति प्रेम की प्रतिष्ठा दो प्रकार से होती है :--

(अ) साहचर्य द्वारा

(ब) सुन्दर रूप के अनुभव द्वारा

प्रकृति हमारी शाश्वत साहचरी है । हम स्वयं प्रकृति के ही अंग हैं । यही कारण है कि प्राकृतिक साहचर्य हमारे जीवन के रग रग में अनुस्यूत रहता है । किसी भी समस्त सुख सम्पन्न व्यक्ति

---

1. काव्य में प्राकृतिक दृश्य, चिन्तामणि पृष्ठ 3

को मात्र कृत्रिम उपकरणों से संतुष्टि नहीं मिलती । वह भी प्रकृति के मुक्त प्रांगण में देर सबेर पर्यटन के लिये उत्कण्ठित हो जाता है । इतना गहरा सामीप्य है । जन–जीवन के साथ प्रकृति का कालिदास का कवि प्रकृति का सच्चा और भावुक सहचर है । उसने अपने गीति काव्यों में प्रकृति का जैसा हृदय हारी चित्रण प्रस्तुत किया है । वह प्रकृति का सच्चा सहचर ही कर सकता है ।

प्रकृति का साहचर्य कवि जीवन का एक पक्ष है और प्रकृति के सुन्दर रूपों की आच्छायाओं का कवि मानस में समा जाना दूसरा पक्ष है । यह तभी संभव होता है । जब मनुष्य को एक संवेदनशील मन प्राप्त होता है । यह संवेदनशीलता सभी मनुष्यों में एक समान नहीं होती । ऐसा होता तो सभी कविगण कालिदास या वर्ड्सवर्थ हो जाते । प्रकृति की रूपराशि तो हम सभी के लिए समान रूप से उजागर है परन्तु हम लोग तो ऋतुसंहार और मेघदूत जैसे गीत नहीं लिख देते । ऐसा क्यों ?, क्योंकि हमारी संवेदनाएं उतनी भावप्रवल नहीं है जितनी कि वे कालिदास जैसे कवियों की होती है । हिन्दी के कवि बिहारी का कथन है : रूप रिझावनहार यह वे नैना रिझवार । यह रूप मोहने वाला है तो वे आँखे भी तो रीझ जाने वाली हैं । बस यही बात है, हमारे महान् गीतकार कालिदास को प्रकृति के रूप सौन्दर्य पर रीझ जाने वाली आँखे मिली थी । उसने प्रकृति के रूप सौन्दर्य को छककर पिया और अपने गीतों की धुन में उसके चित्रों को उतार दिया । उसकी गीत माधुरी हमारे मन का मात्र प्रसाद ही नहीं करती जैसा कि आज कल के बहुत से सस्ते गीतों से होता है । वह हमारे सौन्दर्य संस्कारों का परिष्कार भी करती है । यही उसके गीति सौन्दर्य का सबसे बड़ा जादू है । हमारे इस अध्ययन का मुख्य योगदान कालिदास के गीतों के इस जादू कथ्य और शिल्प दोनों ही बिन्दुओं पर समझने का मार्ग प्रशस्त करना है ।

कालिदास तथा उसकी प्रौढ़ कृतियों को लेकर एक से एक अनूठे अध्ययन सम्पन्न किए जा चुके हैं । इस दिशा में न केवल आधुनिक भारतीय मनीषी आगे बढ़े हैं बल्कि पूर्व तथा पश्चिम के अनेक

साहित्य प्रेमी आगे बढ़े हैं । सच तो यह है इस प्रकार के नए अध्ययनों के कारण ही हमारा कालिदास एक विश्व कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है । इस विश्व कवि को लेकर नाना दिशाओं में- अध्ययन किए गए हैं । इन अध्ययनों ने कालिदास के बारे में सदा ही एक नयी अभिरुचि को जन्म दिया है और कुछ न कुछ नए विचारों को उत्तेजित किया है । महाकवि पर किए इन आधुनिक अध्ययनों को हम मुख्यतः निम्न दिशाओं में वर्गीकृत कर सकते है :-

1. अनुवादात्मक अध्ययन : कितने ही देशी और विदेशी कवियों और विद्वानों ने कालिदास की कृतियों के आधुनिक भाषाओं में अनुवाद किए हैं । इन अनुवादों के माध्यम से महाकवि की कृतियों का साहित्यिक महत्त्व पहचानने में और उनका कलात्मक महत्त्व समझने में बढ़ी सहायता मिली है ।

भारत के उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक एक भी ऐसा शिक्षित भारतीय मिलना कठिन है जिसने कालिदास के काव्य का कोई सर्ग या उसके नाटक का कोई अंक न पढ़ा हो । शायद ही कोई आधुनिक भारतीय भाषा हो जिसमें उसकी कृतियों का रूपान्तर न हो गया हो ।[1]

भारतीय अध्येताओं की तो बात ही क्या जो भी विदेशी कालिदास साहित्य के संपर्क में आया वह उसका दीवाना हो गया । जब तक उसने कालिदास की रचना को अपनी भाषा में नहीं ले लिया, उसे चैन नहीं मिला । इस सबके फलस्वरूप कालिदास जिस प्रकार गंगा--गोदावरी के तटों पर पढ़ा जाता है, वैसे ही राइन और टॉम्स नदी के किनारे भी पढ़ा जाने लगा । सर विलियम जान्स, जिन्होंने सर्व प्रथम पश्चिम को कालिदास का परिचय कराया, को उसमें भारत का शेक्सपियर दिखाई दिया । महान दार्शनिक और कवि गोथे को कालिदास का परिचय कराया, को उसमें भारत का शेक्सपियर दिखाई दिया । महान दार्शनिक और कवि गोथे को कालिदास की कविता में एक साथ धरती और स्वर्ग का आनन्द मिला, ए. वी. हंबोल्ट को वह

---

1. गोपाल रघुनाथ नन्दरगीकर : मेघदूत, प्रस्तावना 32

रचनात्मक प्रतिभा का असाधारण कवि लगा, प्रो. लासेन ने उसे भारतीय काव्य कला का सबसे अधिक देदीप्यमान नक्षत्र बताया ।[1]

2. <u>साहित्यिक समीक्षात्मक अध्ययन</u>:

संस्कृत की शास्त्रीय टीका पद्धति से कालिदास की कृतियों की व्याख्या करने वाले मल्लिनाथ जैसे कितने ही मनीषियों की एक श्रृंखला है । इस श्रृंखला को एक ओर रखकर यदि हम आधुनिक युग के भारतीय और विदेशी मनीषियों को देखे तो कालिदास के समीक्षकों की बहुत लम्बी सूची बन जाएगी । जिस किसी ने भी कालिदास को पढ़ा, वह अपने हृदय के आनन्द को अभिव्यक्त किए बिना रह नहीं सका । इस तरह के भारतीय मनीषियों में कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर और दार्शनिक कवि अरविन्द घोष की तो बात ही अलग है स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ जैसे आध्यात्मिक सन्त भी अछूते नहीं रह सके । अरविन्द घोष ने अपने 'कालिदास' नाम के एक बहुत ही लघुकाय प्रलेख में 'ऋतुसंहार' की जैसी समीक्षा कर डाली है वैसी अन्यत्र मिलना कठिन है । इस तरह की समीक्षा से पुरातन टीका पद्धति से हटकर मुक्त समीक्षा दृष्टि के द्वार खुल गए ।

कालिदास की कृतियों के समीक्षा अध्ययन की एक अन्य दिशा भी है जिसके अन्तर्गत महाकवि की किसी एक कृति अथवा एक ही प्रकार की कृतियों के किसी एक काव्य शास्त्रीय पक्ष को लेकर अध्ययन किए गए हैं । उदाहरण के लिए कालिदास की उपमा को लेकर किए गए अध्ययन इस कोटि में आते हैं ।

---

1. गोपाल रघुनाथ नन्दरगीकर : मेघदूत, प्रस्तावना पृ0 32--33

3. सम्पादनात्मक अध्ययनः

कितने ही देशी और विद्वानों ने कालिदास की कृतियों के नए-नए संस्करणों के सम्पादनों में रुचि दिखायी है । इस तरह के विद्वानों ने प्रायः प्राक्कथन के रूप में महाकवि और उसके कृतित्त्व के बारे में मूल्यवान आलोचनात्मक विचार दिए हैं जिनसे कालिदास के अध्येता को एक नयी दिशा और नयी चेतना मिलती है ।

4. सांस्कृतिक अध्ययनः

साहित्य को समाज का दर्पण मानने वाले विद्वानों ने कालिदास की कृतियों में प्रतिबिम्बित होने वाले समाज की संस्कृति और जीवन पद्धति को जानने की दिशा में कदम बढ़ाए हैं । इस प्रकार के अध्ययनों की भी बड़ी श्रृंखला है परन्तु डा0 भगवत शरण उपाध्याय का कालिदास का भारत सर्वाधिक चर्चित कार्य माना जाता है ।

5. ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक अध्ययन

कितने ही विद्वानों ने कालिदास की ऐतिहासिकता तथा उसकी कृतियों में वर्णित चरित्रों और स्थानों के बारे में छानबीन की है । इस दिशा में कार्य करने वाले लोगों में वी.वी.मिराशी और डा0 चन्द्रबली पाण्डेय जैसे विद्वान अग्रणी रहे हैं ।

संस्कृत साहित्य का नया इतिहास लिखने वाले पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस दिशा में बहुत कुछ योगदान किया है ।

उपर्युक्त प्रकार से हम देखते है कि कालिदास को लेकर विविध दिशाओं में अध्ययनों की एक विचित्र सी प्रतिस्पर्धा और उत्साह निरन्तर बढ़ते रहे हैं । अभी भी इस उत्साह में कहीं कोई कमी नहीं आयी है ।

जहाँ तक प्रस्तुत अध्ययन का प्रश्न है उसका अपना एक नया पन कहा जा सकता है । वह

नयापन यह है कि यह अध्ययन कालिदास की प्रौढ महाकाव्य कृतियों या नाट्यकृतियों से हटकर है । यह युवा कवि की गीति रचनाओं का अध्ययन है । दूसरा नयापन कुछ सीमा तक यह भी है कि यह प्राचीन काव्य शास्त्रीय दृष्टि से साथ-साथ कुछ सीमा तक आज की मुक्त समीक्षा दृष्टि से किया जा रहा अध्ययन । इससे हमें निश्चित ही महाकवि की गीति रचनाओं को समझने की और उनके शिल्प के मर्म को पहचानने की एक नयी दिशा अवश्य मिलेगी ।

## द्वितीय अध्याय

## कालिदास का युग और कृतित्व

कालिदास हो अथवा कोई और रचनाकार उसकी कृतियाँ अपने इतिहास की परम्परा तथा समकालीन युगबोध की अभिव्यक्ति होती है । इस इतिहास दृष्टि के साथ जब हम किसी रचनाकार की कृतियों पर विचार करते हैं तो फिर वे कृतियाँ हमारे लिए कोरी भाषायी आकृतियों का कला प्रदर्शन ही नहीं रह जाती बल्कि रचनाकार के युगबोध की जबान बनकर बोलती हैं । हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जब हम किसी कृतिकार के युग की जबान को नहीं पहचानते हैं तो फिर हम उसकी कृतियों के वास्तविक मर्म को भी नहीं पहचानते ।

परम्परा और युग बोध को लेकर जब हम किसी कृतिकार के बारे में विचार करते हैं तो हम यह मानकर चलते हैं कि प्रत्येक रचनाकार का व्यक्तित्व मुख्य रूप से दो तत्वों से बनता है; उसके व्यक्तित्व के एक पक्ष का निर्माण युग-युग से चली आ रही प्राचीन परम्परा से होता है । यह परम्परा उसके अन्दर मूल्यों के अमिट संस्कार अंकित कर देती है । केवल इतना ही नहीं अनेक बार तो रचनाकार अपनी रचनाओं के लिए वस्तु-सामग्री भी परम्परा से प्राप्त करता है और उस सामग्री को अपनाकर उसे समकालीन युगबोध से जोड़ देता है । इस प्रकार कोई भी अच्छी साहित्य-रचना साहित्यकार के परम्परा बोध और युग बोध के बीच एक अच्छा संवाद बन जाती है ।

परम्परा और युगबोध के बीच संवाद सदा ही सरलता से नहीं हो जाता है । अनेक बिन्दुओं पर उन दोनों के बीच टकराव और समझौता भी चलता है । उदाहरण के लिए हम वैदिक काल के बाद की साहित्य रचनाओं को देखें तो पायेंगे कि उन रचनाओं को विषय और वस्तु तथा शैली की दृष्टि से भी वैदिक रचनाओं से अलग मार्ग अपनाना पड़ा है । वैदिक रचनाओं में हमें इतिहास-बोध जैसी चीज़ बहुत कम हाथ आती है । रामायण और महाभारत के युग में इतिहास बोध जाग गया मिलता है ।

साथ ही, हम देखते हैं कि वैदिक रचनाएँ देवता पात्रों की प्रधानता रखती है । उत्तरकालीन रचनाओं में मानव चरित्र प्रधान हो जाते हैं । स्पष्टतः यह परम्परा के साथ कटाव का बिन्दु लगाता है । परन्तु हम यह भी देखते हैं कि इस तरह का कटाव परम्परा को पूरी तरह ठुकरा नहीं देता है । वह उससे सुलह और समझौता भी करता है । यही कारण है कि न केवल रामायण और महाभारत में बल्कि कालिदास जैसे कवियों की काव्य कृतियों में भी वैदिक परम्परा से मिले देवता पात्रों को भी मानव चरित्रों के साथ-साथ उचित स्थान मिला है ।

रचनाकार के व्यक्तित्व का एक पक्ष वह है जिसका निर्माण परम्परा से नहीं समकालीन परिस्थितियों से होता है । यह रचनाकार के व्यक्तित्व का वह पक्ष है जहाँ उसके अनुभवों का संसार सीधे-सीधे उसके प्रत्यक्ष बोध से बँधता है । रचनाकार के व्यक्तित्व का यह पक्ष अधिक प्रामाणिक और उत्तेजनशील होता है । किसी रचना का जन्म तो वास्तव में रचनाकार के मन में समकालीन परिस्थितियों द्वारा पैदा की हुई उत्तेजना से ही होता है । परम्परा की ओर तो वह पीछे मुड़कर इसलिए देखता है कि क्या कभी पहले भी वैसा कुछ हुआ था अथवा परम्परा के पास वर्तमान के लिए नया कुछ देने के लिए है अथवा नहीं । वर्तमान के जीवन को नया कुछ देने के लिए भी है अथवा नहीं ।

रचनाकार के व्यक्तित्व से जुड़े उपर्युक्त दोनों पक्षों को ध्यान में रखकर जब हम कालिदास के युगबोध का विचार करते हैं तो हमें स्थिति का चित्र बहुत कुछ साफ हो जाता है ।

<u>कालिदास का स्थिति काल</u>

वैसे तो कालिदास का स्थिति काल हमें अनिश्चयों के घेरे में झूलता ही मिलता है फिर भी हमारे उद्देश्य की दृष्टि से इतना तो स्पष्ट ही है कि हमारा यह महान कवि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर ईस्वी पाँचवी शताब्दी तक चाहे जिस काल खण्ड में हुआ हो महाभारत तथा रामायण की परम्परा का

निस्संदेग्ध उत्तराधिकारी है ।[1]

यह वह कालखण्ड है जब महाभारत और रामायण युग के बाद इतिहास और लोकशक्ति के सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं । जीवन का नीला कमल खिलता हुआ दिखाई देता है । घटनाओं और पात्रों के यथार्थ का प्रामाणिक सृजन होने लगता है ।[2]

भारतीय इतिहास का यह युग सामान्यतः तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में उदय हुये मौर्य साम्राज्य काल से लेकर सातवीं शताब्दी के हर्षवर्धन के काल तक माना जा सकता है । हमारी इस मान्यता का साफ-साफ आधार यह है कि यह युग हमारे देश के इतिहास का वह कालखण्ड है जिसकी सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था स्मृति शास्त्रों में बतलाये गये विधानों के अनुसार अनुशासित होती थी । राजनीतिक दृष्टि से यह वह युग है जब भारत भू खण्ड में फैली बहुत सारी छोटी-छोटी राज्य शक्तियों के ऊपर एक केन्द्रीय महाशक्ति के रूप में साम्राज्य शक्ति स्थापित हो गई थी । इस एकात्मकता के फलस्वरूप राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से हम इन शताब्दियों में फैले इस युग को इतिहास का एक कालखण्ड कह सकते हैं ।

इस युग के बारे में एक आधुनिक समीक्षक का कथन है :

एक सहस्राब्द में फैला यह हमारे इतिहास का वह युग है, जहाँ से भारतीय विरासत का हर संस्कार आज भी किसी न किसी रूप में विचारधारात्मक क्रान्तियों से रस ग्रहण करता है ।[3]

---

1. भगवत्शरण उपाध्याय : कालिदास का भारत, भाग--2 पृ0 201
2. राजेश्वर सक्सेना, परम्परा का द्वन्द्व और आलोचना पृ0 34
3. राजेश्वर सक्सेना, परम्परा का द्वन्द्व और आलोचना पृ0 34

मौर्य युग से लेकर सातवीं शती के हर्षवर्धन तक फैली सहस्राब्दि को हमने कालिदास के युगबोध का महायुग माना है । उस युग की किन-किन मूल्य दृष्टियों का तथा उस युग की किन-किन सामाजिक छवियों का चित्रण महाकवि की कृतियों में उपलब्ध होता है, इस विषय पर हम कुछ प्रमुख बिन्दुओं के प्रकाश में विचार कर लेना उचित समझते हैं । इस विवेचना से हम पर्याप्त सीमा तक यह जान सकेंगे कि वे कौन सी युगीन परिस्थितियाँ जिन्होंने कालिदास की इतनी उदात्त और महान कृतियों को जन्म दिया ।

**वैदिक संस्कृति का उत्थान युग :**

कालिदास के साहित्य के व्यापक अनुशीलन के पश्चात यह प्रतीत होता है कि महाकवि का समय इस देश में वैदिक आर्य जनों की संस्कृति का अभ्युदय काल रहा है । ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, शास्त्र और दर्शन आदि में पर्याप्त प्रगति हो गई थी । भोग-विलास के प्रसाधनों की पर्याप्तता थी । कालिदास के समय में देश में अशान्ति या निराशा का अवसर नहीं था । आशा और विश्वास का स्वस्थ वातावरण बना हुआ था । इसी पर जीवन का आदर्श स्थित था । वैदिक विधि विधान, नैतिक आदर्श, मर्यादाशीलता, चरित्र और ज्ञान से उसके युग के अभिजात जन सुसंस्कृत थे । उसके समय का समाज सुगठित, सुव्यवस्थित एवम् सुसम्पन्न था ।

**वर्णव्यवस्था मूलक समाज संरचना:**

समाज व्यवस्था चार वर्णों में विभाजित थी । उसके नियन्त्रण और योग क्षेम का उत्तरदायित्व राजा पर रहता था । कालिदास समाज की वर्ण व्यवस्था को इश्वरीय संरचना मानता है :

चतुर्वर्णमयोलोकस्त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात् ।[1]

रघुवंश के इस वाक्य में विष्णु की स्तुति करते हुये लोक जीवन को 'चतुर्वर्णमय' सूचित किया है ।

---

1. रघुवंश : 10.22

मनुप्रणीत वर्णाश्रम धर्म का पालन वह राजा परम कर्तव्य बताता है : नृपस्य वर्णाश्रम पालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।[1] शाकुन्तल के नायक दुष्यन्त को 'वर्णाश्रमाणां पालयिता ।[2] वर्णाश्रम का पालन करने वाला बतलाया है । इसी प्रकार रघु को 'वर्णाश्रममाणांगुरू'[3] वर्णाश्रम का गुरू कहा है । दुष्यन्त को यह प्रमाण पत्र दिया गया है कि उसके शासन में वर्णो में से अत्यन्त नीच दर्जे का व्यक्ति भी गलत रास्ते पर नहीं जाता है-- न कश्चित वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते ।[4] चार वर्णो में ब्राह्मण और क्षत्रियों के विषय में उसके साहित्य में विस्तार से चर्चा उपलब्ध होती है । अन्य दो के विषय में उतनी नहीं । इससे यह स्पष्ट है कि इन दो वर्णो का प्रभाव उस समय अधिक बढ़ा हुआ था । क्षत्रियों का शासक और वर्णाश्रम रक्षक होने के कारण प्रभाव अधिक था तथा ब्राह्मण वर्ग का प्रभाव उनके ज्ञान, त्याग और आदर्श चरित्र के कारण था । कालिदास की कृतियों में वैश्यों का वर्चस्व कहीं नहीं दिखाई देता । शूद्रो की स्थिति भी उसी प्रकार साधारण ही प्रतीत होती है ।

कालिदास ने अत्यन्त तेजस्वती ब्राह्मणों के आदर्श रूप में समाज में प्रतिष्ठित एवम् प्रभाव रखने वाले वशिष्ठ, बाल्मीकि, कण्व, कौत्स, मरीचि, वरतन्तु, च्यवन आदि की चर्चा की है । दूसरी ओर विदूषकों के रूप में खाऊ-पीऊ, मजाक करने वाले तथा राजाओं की चापलूसी करने वाले ब्राह्मणों की तस्वीर भी प्रस्तुत की है । इस वर्ग के ब्राह्मण साधारण प्रतिष्ठा वाले ही है । परन्तु राजकुलगुरू, उपाध्याय, आश्रमवासी ऋषि, अध्यापक, आचार्य आदि ब्राह्मणों को प्रतिष्ठित रूप में देखा गया है । परन्तु ब्राह्मण विदूषकों में वह विशेषता या श्रेष्ठता के दर्शन नहीं होते । आचार व्यवहार में भी वे प्रथम वर्ग के ब्राह्मणो से हीन प्रतीत होते है । आश्रम के प्रमुख आचार्य और कुलपति में अधिकांश ऋषि मुनि तथा

---

1. रघु0 14, 67
2. आभि0 5/2
3. रघु0 5/19
4. शाकु0 5-101

विशिष्ट प्रकार के आर्य--आदर्श के व्यक्ति रहे है । उनके आश्रय का वातावरण उनके उच्च नैतिक वातावरण से अभिभूत रहना स्वाभाविक है । उनसे साधारण समाज, या तत्कालीन ब्राह्मण वर्ग का साधारणीकरण अधिक तर्कसंगत नहीं माना जा सकता । जहाँ तक आश्रमों का जीवन था वह निःसन्देह पवित्र और चरित्र की मर्यादाओं से ओतप्रोत रहता था । आश्रमों की मर्यादा की रक्षा शासकों के लिए भी आवश्यक रहती थी । जब दुष्यन्त कण्वाश्रम की सीमा में मृगया के लिये चला गया तो आश्रम के अन्तेवासी ब्रह्मचारियों ने उसे सावधान किया था कि सावधान ये आश्रम के मृग हैं । इस पर राजा को सखेद शिकार से विरत होना पड़ा था । आश्रमों में युवक ही नहीं बालिकाएँ भी रह सकती थी, और वहाँ ज्ञान-विज्ञान और चरित्र गठन भारतीय आदर्श-मर्यादा के अनुरूप होता था । इतना ही नहीं आश्रमों में चाहे सादा जीवन, स्वस्थ वातावरण, वल्कल वसन आदि का व्यवहार भले ही होता हो पर वहाँ के स्नातक शिक्षित और अशिक्षित जीवन से लेकर सुधरे हुये सम्पन्न एवं सुसंस्कृत राज परिवारों के कुलशील संस्कारों से पूर्ण परिचित होते थे । आश्रमपोषिता शकुन्तला इसका आदर्श उदाहरण है । वह ऋषि आश्रम की वन कन्या होते हुए भी इतनी सुसंस्कृत थी कि सहज ही वह उस समय के सर्वशक्तिसम्पन्न राजा की महारानी होने के अनुरूप समझी गई । वह केवल वनचारिणी विदुषी ही नहीं थी, आर्य आदर्श की उदाहरण भी थी ।

कालिदास के आश्रम सर्वविध शिक्षा के केन्द्र थे । पुररवा के पुत्र आयु का समस्त शिक्षण संस्कार च्यवन आश्रम में हुआ था । वहाँ शास्त्रीय ज्ञान और वेद-वेदांग की शिक्षा के साथ ही क्षत्रियों के राजकुमारों को शस्त्रास्त्र ज्ञान, समर कौशल का अध्ययन भी करवाया जाता था । राजकुमार आयु को च्यवन ने जात-कर्म संस्कार देकर दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान की थी ।[1] रघुवंश में कौत्स और वरतन्तु का उदाहरण भी महत्व का है । शिक्षा लेने के बाद गुरदक्षिणा के लिए चौदह कोटि मुद्राएं राजा के कोष से

---

1. विक्रमोर्वशीय : 5.11

प्राप्त हुई थी । राजा ने आश्रम के स्नातक का सत्कार अपना कर्त्तव्य समझा था । यह उन आश्रमों की प्रतिष्ठा और मर्यादा का उदाहरण भी है । कुलपति कण्व के आश्रम में हजारो छात्रों को आश्रय प्राप्त होता था । उनके भरण पोषण के साथ चरित्र संस्कार निर्माण और ज्ञान का दान दिया जाता था । वहाँ का वातावरण अत्यन्त मानवतापूर्ण था । आश्रमवासियों का हृदय स्नेह से सिक्त रहता था । शकुन्तला आश्रम के वृक्ष, वन लताओं से जहाँ आत्मीयता रखती थी, वहीं आश्रम हरिणों से भी उसका वात्सल्य था । ठीक उसी प्रकार स्वयम् कुलपति कण्व का वीतराग होते हुये भी शकुन्तला की विदाई के समय गदगद हो जाना इसका प्रमाण है कि आचार्य और आश्रम वासीजनों में कितना तादात्म्य सम्बन्ध रहता था ।

आश्रमों के जीवन में शास्त्रीय ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ, व्यवहार और सामाजिक जीवन के संस्कार और मानवता के विकास की दीक्षा मिलती थी, अध्ययन, लेखन, मनन, कला, कृषि, बागपत्रि का भी उनके ज्ञान में समावेश रहता था ।

आश्रमों में सामान्यतः प्रातःकाल उठकर वेदपाठ किए जाते थे । आश्रमों में विरक्त संयासी ही नहीं गृहस्थ भी दिखाई देते हैं । वे कर्मकाण्ड, यज्ञयाग, संस्कारों के साथ अतिथि सत्कार और गृहस्थोचित व्यवहार करते है ।[1] आश्रमवासियों की इस गुणगरिमा के कारण ही राजभवनों में उनका विशेष आदर किया जाता था । उनकी आकांक्षाओं को आज्ञा समझकर राजाओं द्वारा पूर्ण किया जाता था ।

<u>क्षत्रिय वर्ग का विशिष्ट चरित्र</u>

कालिदास ने समकालीन समाज के क्षत्रियों का वर्णन अधिक विस्तार से किया है । उसके अधिकांश पात्र क्षत्रिय आदर्शों के प्रतिनिधि रहे है । स्वाभाविक है कि उनके वर्णन में उनके वर्ग का चरित्र अधिक विशद होकर सामने आया है । कवि ने क्षत्रियों के चरित्र की कसौटी राज्य और समाज की रक्षा

---

1. शाकुन्तल 1.12, रघुवंश 1.53

को माना है । कालिदास की दृष्टि में किसी हिंसक से आर्त्त प्राणी की रक्षा करने वाले व्यक्ति को ही सच्च क्षत्रिय माना जा सकता है-- क्षतात् किल त्रायत् इत्युदग्रः क्षत्रेति शब्दो भुवनेषु रूढः । आर्त्त प्राणियों की रक्षा और राज्य तथा समाज की रक्षा तो वही क्षत्रिय कर सकता है जो स्वयं की रक्षा करने में समर्थ हो । कालिदास के क्षत्रिय चरित्र स्ववीर्यगुप्त मनु वंशी क्षत्रिय है ।[1]

कालिदास के काव्यनायक दिलीप, रघु, अज, दशरथ राम, दुष्यन्त आदि सभी आर्य आदर्शों के तथा संस्कार-शील मर्यादा और नीति के प्रतिनिधि चरित्र है । चरित्र-शीलता और मर्यादा प्रवणता के आदर्श रूप में यद्यपि दिलीप, रघु आदि के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, परन्तु 'अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्' के एक सूत्र में उनके शील और चरित्र के समस्त रूप निहित हो जाते हैं ।

निर्मर्याद चरित्र क्षत्रियों के पतन का कारण है यह सन्देश कालिदास ने क्षत्रियों के उक्त आदर्श के विपरीत अग्नि वर्ण राजा के दूषित चरित्र पर प्रकाश डालकर दिया है ।[2]

कालिदास के काल के क्षत्रियों को उचित जातकर्म संस्कार उपनयन आदि दिये जाते हो, और उनकी शिक्षा में धनुर्वेद सैन्य शिक्षा का भी समावेश होता था । आश्रमों में इस शिक्षा की व्यवस्था रहती थी । महाभारत के द्रोणाचार्य आदि की परम्परा वशिष्ठ के द्वारा राम को दी गई सैन्य शिक्षा का क्रम कवि के काल में आश्रमों में प्रचलित रहा है । क्षत्रियों के समस्त संस्कारों पर इन आचार्यों का अधिकार रहता था ।

आदर्श चरित्र के साथ ही साथ राजन्य वर्ग में साहस कर्म और शानशौकत की भी उद्दाम प्रवृत्ति होती थी । उनमें मृगया की प्रवृत्ति थी । प्रायः राजा गणों में बहु विवाह भी प्रचलित था ।[2] सर्वसाधारण समाज में बहुविवाह की शायद उतनी स्वीकृति नहीं थी ।

---

1. रघुवंश 4
2. वही ;
3. देखिए शकुन्तल अंक-3 वहुबल्लभा राजानः श्रूयन्ते ।

क्षत्रियों में शराब पीने की प्रवृत्ति भी अवश्य रही है । अग्नि मित्र की महारानी इरावती और रघु के सैनिकों में मदिरा प्रयोग करने का उल्लेख मिलता है ।

सारतः कालिदास के क्षत्रियों में विद्वानों का सम्मान, यज्ञ यागों की प्रवृत्ति[1], दिग्विजय की रुचि[2], अपनी प्रजा के प्रति सन्तान की तरह व्यवहार[3], तपोवनों और आश्रमों की सुरक्षा एवम् योग–क्षेम का उत्तरदायित्व क्षत्रियों का विशिष्ट चरित्र था । न केवल पुरूषों की भाँति क्षत्रिय महिलायें भी ज्ञान, विज्ञान, शास्त्र में निपुण; शील और संस्कार से युक्त, कला--कौशल में प्रवीण होती थी । पुरोहितों मुनियों का प्रभाव शाप का भय इन पर भी रहता था । वे पति भी सहचारिणी तथा युद्धों में भी साथ देने वाली होती थी ।

वैश्य वर्ग की सामान्य स्थितिः–

कालिदास के साहित्य में वैश्य वर्ग की चर्चा अधिक नहीं मिलती । कहीं--कहीं राजा के द्वारा व्यापारियों के व्यापार मार्ग की रक्षा व्यवस्था का संकेत प्राप्त होता है । अतिथि नामक राजा द्वारा अपनी शासन प्रवीणता के अनुरूप वैश्यों को भयरहित व्यापार करने की व्यवस्था की गयी थी । सुरक्षा व्यवस्था से व्यापारी, नदी की ओर प्रवास करते हुये यही अनुभव करता था, मानो वह अपने घर के दरवाजे के पास की छोटी सी बावडी पर ही आया है । पहाड़ों की ओर प्रवास करते हुये भी वह यही समझता था जैसे अपने बगीचे या घर में ही घूम रहा है ।[4] अर्थात व्यापारी के लिए उस काल के शासन में कहीं भी भय का कारण नहीं था ।

शकुन्तला में धनमित्र नामक एक व्यापारी की चर्चा है । जो समुद्र का व्यापार करता था ।

---

1. रघुवंश 2 ; शाकुन्तल 5
2. रघुवंश सर्ग 4
3. रघुवंश 1. ; शाकुन्तल 5.
4. रघुवंश 17.64

उसके निधन के बाद सम्पत्ति अधिकार के लिए दुष्यन्त यह अनुमान करता है कि शायद उसकी अधिकाधिक स्त्रियाँ होंगी । इससे पता चलता है कि सम्पन्न वैश्यों में बहुविवाह प्रवृत्ति राजन्य वर्ग की तरह ही प्रचलित थी । व्यापार की आय का छठा भाग शासकों को देना पड़ता था ।[1] यद्यपि शासन द्वारा व्यापार की सुविधाएँ सुलभ होती तो पर व्यापारी को अपने सार्थ (काफिले) की व्यवस्था स्वयं भी करनी पड़ती थी । वह भी अपने सार्थ का इन्तजाम करके निकलता था । शासकीय सुविधा होते हुये भी कभी कभी प्रतिस्पर्धी व्यापारियों में संघर्ष हो जाता था । ऐसी एक घटना का वर्णन मालविकाग्नि मित्र में आया है ।[2]

कालिदास के साहित्य से वैश्यों के व्यवहार संस्कार आदि का कोई अधिक वर्णन सुलभ नहीं है । इसका अर्थ यह है कि उस समय वैश्यों का सामाजिक प्रभाव बहुत अधिक नहीं था ।

<u>शूद्र वर्ग की हीनता</u>

शूद्रो के सम्बन्ध में भी कालिदास ने अधिक प्रकाश नहीं डाला है । शकुन्तला में धीवर के प्रवेश से साधारण रूप से शूद्रो की स्थिति की कल्पना होती है । वे प्रायः अल्प साधन, निर्धन और अशिक्षित होते थे । पुलिस आदि कठोर कर्मों वाले राजकीय विभागों में कर्मचारी शायद निम्न वर्ण के ही रहते थे ।

कवि के समय के दास दासी, छोटे अधिकारी, प्रासाद के परिचारक आदि सभी प्राकृत बोली का प्रयोग करते हैं । इससे पता चलता है कि वे बेचारे साधारण वर्ग के ही लोग हो सकते हैं । पुलिस के सिपाही और थानेदार के लिए किसी को पकड़कर चार चाँटे चिपका देना, झूठा--सच्चा इकबाल करा लेना, शराब पिलवाना, मौका पाने पर पैसा भी झटक लेना आदि व्यवहार आज की पुलिस की ही भाँति कुछ असंभव न थे । इससे पता चलता है कि इस तरह के विभागों में शूद्र वर्ग के लोगों की भर्ती ही की जाती थी ।

---

1. रघुवंश 17.65

2. मालविकाग्निमित्र अंक 5

राजपरिवारों की कुछ अन्य सेवाओं में भी शूद्र वर्ग के लोग ही काम आते थे । इन सेवाओं में सारथी सूत, दास दासी, अश्व रक्षक, गज रक्षक आदि की सेवाएं समझी जा सकती है ।

नारी जीवनः –

कालिदास कालीन महिलाओं में सुदक्षिणा इन्दुमती, दमयन्ती, मालविका, उर्वशी, यक्षिणी, भिक्षुणी दासिकाएँ, परिचारिकाएँ, शकुन्तला की सहेलियाँ प्रियवन्दा, अनसूया तथा ऋषि पत्नियाँ रसवती धारिणी महारानियाँ आदि विशेष है । ये सभी नारी पात्र संस्कार युक्त शिक्षिता चरित्रशीला नारियों के प्रतिनिधि है । कालिदास युग की नारियों, चित्रकला, वाद्य–संगीत, नृत्य कलाओं में निपुण, व्यवहार–दक्ष मिलती है ।

विवाह नारी जीवन का मुख्य प्रश्न था । यह पिता का दायित्व था कि कन्या के लिए अच्छा वर प्रदान करें । इसी अर्थ में कन्या पराया धन कहीं जाती थी ।[1]

तपोवनों में आजीवन कुमारी रहने वाली कन्याएँ भी हो सकती थी । दुष्यन्त ने शकुन्तला की सहेलियों से यह पूछा भी था कि "क्या यह आजन्म तपस्विनी का जीवन व्यतीत कर अविवाहित रहना चाहती है ?"

गौतमी इस प्रकार के अविवाहित जीवन का उदाहरण मौजूद है । लड़कियों की पसन्दगी भी की जाती थी, माता–पिता और वर की सम्मति भी अपेक्षित थी । आज की तरह चित्रों के द्वारा भी कन्या के प्रति वर की अनुमति प्राप्त की जाती थी । 'प्रतिकृति रचनाभ्यः' ऐसा मालविकाग्निमित्र में स्पष्ट कहा गया है । उस समय की बालिकाएं अल्प वय में विवाहित नहीं होती थी । शादी होने पर परिवार में उन्हें स्नेह तथा सम्मान का स्थान प्राप्त होता था ।

---

1. शाकुन्तल 4--18

सती प्रथा भी नारी जीवन का एक पक्ष था । कालिदास ने कुश राजा के युद्ध में वीर गति पाने पर उसकी स्त्री कुमुद्वती के सती होने का उल्लेख किया है । परन्तु सती होना नारी की स्वेच्छा पर निर्भर था । कालिदास ने अग्निवर्ण की रानी को सती नहीं बनाया है । गर्भिणी होने के अलावा उस राजमाता के कन्धों पर शासन संचालन का भार भी है ।[1] स्त्रियॉ उस समय व्रत उपवास नियमादि का आचरण करती थी । शकुन्तला द्वारा सौभाग्यदेव का पूजन धारिणी द्वारा पुत्र के लिये व्रत, औशिनरी के द्वारा प्रियानुरंजन व्रत आदि की चर्चा आई है ।

जीवन के मनोविनोद–

कवि के समय में मनोरंजन के साधन भी पर्याप्त थे । उत्सव, नाटक, उद्यान, भोजन, नृत्य, संगीत, मनोविनोद, विविध प्रसंगो पर अभिनय के प्रयोग किये जाते थे, राज प्रासादों में संगीत–चित्र के विविध प्रयोग मिलते है । स्वयम् राजा, राजकुमारियों संगीत, नृत्य, चित्रकला में प्रवीण दिखाई देते है । दुष्यन्त का चित्र प्रेम, अग्निमित्र का चित्र दर्शन, मालविका का संगीत नृत्य में नैपुण्य, अग्निवर्ण की गायन वाद्य में प्रवीणता कथा, वार्ताओं का प्रयोग प्रायः होता रहता था । लोगों में कथा–कहानियॉ सुनने–कहने का प्रचार था । उदयन कथा कोविद ग्राम वृद्धान संघस इसी प्रकार शादी विवाह के प्रसंग पर समारोह निकालने की प्रथा थी, उन समारोहो पर फूल और खीलें बालिकाऍ बरसाती थी ।[2] शादी ब्याह की अन्य रस्मे तो उसी प्रकार होती थी जिस प्रकार आज भी प्रचलित है । महिलाएं उस समय कौशेय (कोसे) और चीनांशुक भी पहनती थी उत्तरीय भी धारण करती थी, अलंकार, आभूषण भी पहना करती थी शुक, सारिका, मृग, हंसो के पालने, चुगाने, उन्हें शिक्षित करने में अनुराग रखती थी । मकान को सजाना, बटरस भोजन का निर्माण, दीवारों पर चित्र अंकित करना, पुष्प स्तवक, ताम्बूल केशों को चन्दन की धूप द्वारा सुगन्धित बनाना,

---

1. रघुवंश 19.57

2. वही. 2.10

पैरों में महावर लगाना, घरों को रंगना, शरीर पर पीठिका मर्दन करना, मुँह पर पावडर सुगन्धित जल द्वारा पंखों को सिंचित कर हवा जलयन्त्र (फव्वारो) से स्नान, यन्त्र धारागृह की रचना भी की जाती थी । वैश्या तथा अभिसारिकाएँ भी रहती थी । देव मन्दिरों में नर्तकाएँ रहती थी ।

## सौन्दर्य प्रसाधन

कवि ने रूप सज्जा के विपुल–साधनों का वर्णन किया है । नूपुर, मणि मेखला, कांची रत्नों के विविद्य अलंकार, कर्णफूल, कटिकिंकिणी बाहुवल्लभ, अभ्यंजन (काज्जल) आदि का वर्णन भी विस्तारपूर्वक मिलता है । नगर भवन प्रासादों की मनोहारी रचना के विविध वर्णनों से काव्य नाटकों के अनेक पृष्ठ भरे हैं । साकेत का सौन्दर्य, अलका का अनुपम वैभव, सप्त–मंजिले महल, स्फटिक के फर्श, सुन्दर--मनोरम–उद्यान, विहार स्थल, धनिकों के हर्म्य, मलय पवन के साथ भवनों से प्रसारित होने वाली सुरभित धूप, संगीत की स्वर लहरी यह सब ठाठबाट कालिदास के राजमहलों में मिलता है ।

विदिशा और मन्दसौर की रूप रमणियों का संचार, शिप्रा का प्रियतम बात, उद्याम--यौवन श्रृगार विलास, विष–वैद्य, कोमार, भृत्य की कुशलता, ज्योतिष के ग्रह–मुहूर्त पर आस्था, भन्ता, पूजा, टोटका, शाप और वरदान का महत्व, प्रवास के शकुन आदि का विचार अनुष्ठान, कमण्ड का महत्व यह सब कालिदास के काव्यों का बहुरंगी भारतीय जीवन है ।

जीवन के चारों पुरूषार्थों में 'काम' पक्ष को किसी भी प्रकार हीन नहीं माना जाता था । कालिदास कामवासना को एक नैसर्गिक प्रवृत्ति के रूप में देखता है लेकिन वह इसे एक सामाजिक मर्यादा में कल्याणकारी मानता है । उच्छृंखल काम को वह हेय मानता है । कालिदास के युग में परकीय स्त्रियों की चर्चा करना तो पाप समझा जाता था । कामुक–वृत्ति के विषय में यद्यपि विलासिता का, श्रृंगार का प्रभूत वर्णन करते हुए भी कवि ने धर्म विरूद्ध काम के आचरणों को वर्जित बतलाया है-- अव्यर्थ कामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः ।[1]

कालिदास युग के भारतीय समाज में समय ऐश्वर्य और सुख विलासिता के साधन सुलभ थे। फिर भी लोग यश की भावना रखते थे। भौतिक सुख को अधिक महत्व नहीं देते थे। शरीर को नाशवान समझकर उसको जीवन में महत्व नहीं दिया जाता था।[1]

कालिदास का समाज एक सामञ्जस्यपूर्ण समाज था। मनोविकृतियों पर नियन्त्रण, अपने अपने वचन पर दृढ़ता, प्रामाणिकता, विपरीत आचार व्यवहार से घृणा, कार्य स्वीकार कर उसकी पूर्ति में निश्चय, सत्य आचरण, श्रेष्ठजनों की मर्यादा, गुरूजनों के प्रति आदर, कर्त्तव्य निष्ठा, आत्म निर्भरता यह उस समाज की विशेषता थी।

इस देश में अनेक संघर्ष ब्राह्मण और क्षत्रिय को लेकर होते रहे हैं। यह कालिदास के पूर्ववर्ती काल में अधिक होते रहे है। परन्तु कालिदास ने जिस समय अपना साहित्य निर्मित किया है उस काल में इन दो वर्गों में परस्पर सौहार्द है और सहयोग भावना बनी हुयी थी। महाकवि ने इसी पर बल देते हुये बतलाया है कि ब्रह्म बल और क्षत्र बल का संयोग वायु और आग का सहयोग है। इस सहयोग से राज्य का सामर्थ्य हजार गुना बढ़ जाता है।[2]

विराट भारतीय चेतना :-

कालिदास युग के भारत की राष्ट्र चेतना विराट है। उसका भारत उत्तर में हिमालय से दक्षिण में सागर तक फैला है। यह विशाल धरती ही कालिदास की समुद्रवसना उर्वी और पयोधरी भूत चतुः समुद्रा 'नान्दनी' गौ है। 'विष्णुपुराण' की परम्परा तथा अपने युग के बोध से ही कवि चेतना में भारत का यह विराट चित्र बना था। विष्णुपुराण के भारत का चित्र जिसने कालिदास की कवि--चेतना को प्रेरित किया वह इस रूप में था--

---

1. वही 2.57

2. रघुवंश 4.4

उन्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।

वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।[1]

कालिदास के युग की राजनीति ने भारत के इस विराट भू चित्र को अच्छी तरह पहचाना था । कालिदास युगीन सम्प्रभु राज्य शक्ति ने इस अखण्ड भारत के चित्र को अपनी मान मर्यादा के प्रतीक राज कर्त्तव्य के रूप में शिरोधार्य कर लिया था । कालिदास के गीति काव्य पढ़ें, नाटक पढ़ें अथवा महाकाव्य पढ़ें । प्रत्येक रचना की अन्तरात्मा में विशाल भारत का अखण्ड चित्र हमारी आँखों में खेलता रहता है ।

राजनीतिक संस्कृतिः-

राजनीति की भाषा में कालिदास का युग राजतन्त्र शासन व्यवस्था का युग था । कालिदास के भारत के लिए मुख्यतः यही शासन प्रणाली परम्परा से प्राप्त थी । काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार राजतन्त्र शासन प्रणाली ही वैदिक हिन्दू परम्परा की सबसे प्राचीन शासन पद्धति थी । कालिदास की कृतियों के अध्ययन से विदित होता है कि महाकवि की राजनीतिक चेतना पूरी तरह रामायण और महाभारत की परम्परा से प्राप्त राजनीतिक आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण करने वाली है ।[2]

वैसे तो लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा पाश्चात्य लोकतन्त्र की देन बताई जाती है, लेकिन कालिदास की कृतियों के अध्ययन से यह बात हम सरलता से जान सकते हैं कि उसके युग का राजतन्त्र लोक कल्याणकारी राज्य के आदर्श को अपनाकर चलता था । राज्य के इस आदर्श को कालिदास की रचनाओं में कहीं ओझल नहीं किया गया है । उसके राजतन्त्र का प्रमुख राजा, प्रजा के सर्वविध कल्याण के लिए उत्तरदायी था । राजा जनता का पिता अर्थात पालन करने वाला और प्रजा उसकी संतान समझी जाती थी ।

---

1. विष्णु पुराण 2.3.1

2- हिन्दू राजधर्म

प्रजानाम् विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महे तव ।।[1]

कालिदास की राजनीतिक युग चेतना एक ऐसे शासन का आदर्श प्रस्तुत करती है, जिसमें राज्य की जनता में न किसी प्रकार के रोग–धोग का खतरा और न किसी बाहरी शत्रु के आक्रमण का भय । राज्य में सब ओर अमन चैन तथा समृद्धि का प्रसार ही प्रसार ।[2]

इस तरह का लोक कल्याणकारी राज्य आराम तलब शासक नहीं चला सकते । कालिदास का जागरूक कवि अपने युग के शासकवर्ग को और साथ ही, भावी पीढ़ियों के शासक वर्ग को भी एक ही सन्देश देता है---

आविश्रमोऽयं लोकतंत्राधिकारः ।[3]

कालिदास के विराट भारत की जिन भौगोलिक सीमाओं का हम संकेत कर चुके हैं, उसकी रक्षा का भार कोई दुर्बल शासन वहन नहीं कर सकता । इस बारे में कालिदास का अपने युग के राष्ट्र के लिए एक ही महान शक्ति सन्देश प्राप्त होता है--

स्ववीर्य गुप्ता हि मनोप्रसूतिः ।[4]

---

1. रघुवंश 1.24
2. वही. 9.4
3. शाकुन्तलम् अंक 5
4. रघुवंश 2.4

कालिदास का राजतन्त्र निरंकुश राजतन्त्र नहीं जान पड़ता । उसके राजतन्त्र की लोकतांत्रिक शक्ति मन्त्रिमंडल में निहित होती थी । राज्य की यह मंत्र शक्ति अनेक अर्थो में सैन्य शक्ति से भी अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती थी । राज्य के सभी अंगों का संघटन और निरीक्षण मन्त्र शक्ति के परामर्श से ही राजा करता था । राज्य की सारी योजनाएं मन्त्रि मंडल के परामर्श से ही चलती थी । सभी प्रकार के सन्धि और विग्रह राजा मन्त्रियों के परामर्श से ही करता था । कालिदास ने दिलीप के शासन वर्णन में यही आदर्श प्रस्तुत किया है ।[1]

धार्मिक चेतना :--

इतिहास की दृष्टि से कालिदास युग से पूर्व बौद्ध और जैन विचारों की दो सामाजिक क्रान्तियाँ हो चुकी थी । आरम्भ में ये दोनों विचारधाराएं वैदिक धर्म के पूरी तरह विरोध में खड़ी थी । परन्तु कालिदास का युग आते--आते सब धारायें मिलकर एक मुख्य धारा बन गइ । इस विषय में कालिदास की कृतियों से एक स्थिति पूरी तरह साफ चमकती है, वह यह कि कालिदास के युग में बौद्धों के निराशावाद और पलायनवाद को कोई स्थान नहीं था । वैदिक आर्यो का धर्मवादी महत्वाकांक्षी जीवन--दर्शन ही वास्तविक धर्म का स्वरूप था व्यक्तिगत सदाचार और आदर्श चरित्र आम आदमी की तरह शासक--वर्ग के लिए भी आवश्यक थे । किन्तु कालिदास का क्षत्रिय शासक चौथी अवस्था से पूर्व जीवन से पलायन की बात नहीं सोच सकता था । कालिदास की कृतियाँ जीवन को समग्रता में जीने का दर्शन बनाती हैं ।[2]

कालिदास युग की उदार विचारधारा के बारे में एक विद्वान का कथन है कि कालिदास की चेतना में धर्म मानव जीवन की संधारक शक्ति प्राप्त करने के साधन का नाम है । कवि ने अपने प्रत्येक राजन्य चरित्र की विशेषताओं से मानव जीवन के औदार्य, शौर्य, सहिष्णुता, आत्म त्याग, शुद्धि और सत्यवादिता जैसे मानवीय गुणों की मूल्यवत्ता ही स्थापित की है ।[3]

---

1. रघुवंश 1.60--61
2. वागीश्वर विद्यालंकार : कालिदास और उसकी काव्यकला पृ0 98
3. दिम्बेस्वर सर्मा : एन इन्टरप्रेटेटिव स्टडी ऑफ कालिदास पृ0 41

अर्थ तन्त्र :-

समकालीन जीवन के आर्थिक पक्षों को लेकर कालिदास की कृतियों में विस्तार से कोई विवरण नहीं मिलते हैं । फिर भी उसके काव्यों में जीवन का जो उत्साह और महत्वाकांक्षाएं भरी हैं, उनसे यह तो स्पष्ट ही है कि उसके युग का भारत, दरिद्र भारत नहीं समृद्ध भारत था । कृषि निस्संदेह आर्थिक जीवन की धुरी थी । कृषि उत्पादन का मुख्य सहारा अनुकूल वर्षाओं पर निर्भर करता था कालिदास के मेघदूत के एक ही कथन से कृषि का यह चित्र खुल जाता है ----

त्वय्यायन्तं कृषिफलमिति ।[1]

कालिदास का भारत अपने युग का विश्व में एक अत्यन्त समृद्ध देश था; विविध उत्पादन क्षेत्रों में जल-थल सभी व्यापारों का भरपूर विकास हो चुका था । इस सन्दर्भ में डा0 भगवत शरण उपाध्याय ने अपने 'कालिदास का भारत' ग्रन्थ में बड़े विस्तार के साथ विश्लेषण किया है ।

नैतिकता :-

कालिदास की कृतियों में मानव जीवन की नैतिकता को लेकर हम एक प्रकार की मुक्त दृष्टि पाते हैं । कालिदास के युग में धर्म और मोक्ष के आदर्शो के नाम जीवन के काम और अर्थ पुरूषार्थो का बलिदान आवश्यक नहीं था । कालिदास के काव्य को तो हम बहुत सीमा तक कामतत्व का आदर्श काव्य कह सकते हैं । यह आदर्श इस लिए है कि वहाँ काम-कुंठाओं के लिए कोई स्थान नहीं है, समाज में पण्यास्त्रियों को भी हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था । कालिदास का काव्य आदर्श के रूप में धर्म से अविरूद्ध काम की बात अवश्य करता है, परन्तु वह काम का निषेध किसी बिन्दु पर भी नहीं करता । काम को वह जीवन का परमप्रेरक तत्व लेकर चलता है । उसके गीतिकाव्य, नाटक और महाकाव्य सभी काम के इसी उदात्त पक्ष को लेकर चले हैं ।

---

1. मेघदूत पूर्व. 16

<u>साहित्यिक तथा सांस्कृतिक चेतना</u>–

कालिदास की कृतियाँ एक ऐसे युग की सूचना देती हैं, जिसमें सारे वेद–वेदांगों का विकास हो चुका था । ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र ग्रन्थ, रामायण और महाभारत तथा सांख्य आदि दर्शन शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग थे । पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के व्याकरण ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके थे । मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र, कौटिल्य का अर्थशास्त्र और वात्स्यायन का कामशास्त्र जैसा बहुविध साहित्य समृद्ध हो चुका था ।[1]

कालिदास का युग नाट्यकला, संगीत कला और नृत्यकला की दृष्टि से अत्यन्त उन्नत था । जिस तरह से आधुनिक युग में हम नृत्य की 'भारतनाट्यम्' कत्थक तथा कुचिपुडी आदि नृत्य शैलियाँ देखते हैं, वैसी ही नृत्य शैलियाँ कालिदास के युग में पनप चुकी थी । कालिदास की कृतियों में अनेकशः इसके संकेत मिलते है ।[2]

कालिदास के युग में स्थापत्य कला और चित्रकला भी बहुत उन्नत थी । चित्रकला के बारे में तो कालिदास की कृतियों में ऐसे–ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि हमारा यह महान कवि स्वयं भी अच्छा चित्रकार था ।

<u>कालिदास युग का लोक जीवन</u>–

अभिजातीय साहित्य कृतियाँ और शास्त्र समकालीन युग की जो झाँकी देते हैं, वह समाज के अगुआ वर्ग का ही अधिक चित्रांकन होता है । लोक जीवन का चित्र तो हमें केवल उन्हीं कृतियों से हाथ आता है जिनकी प्रेरणा कविजन लोक जीवन से ग्रहण करते हैं । हमारे महान कवि कालिदास के दो गीति–काव्य ऋतुसंहार और मेघदूत ऐसी रचनाएं है जिनकी प्रेरणा का मूलस्रोत लोक जीवन है । कालिदास के युग का लोकजीवन अर्थात साधारण जन जीवन प्रकृति के साथ किस तरह रचा–पचा था, प्रकृति के बदलते मौसम और उसकी छओं ऋतुओं का चक्र लोक जीवन को क्या– क्या रूप–रंग देता था, उसके तन

---

1. वागीश्वर विद्यालंकार : कालिदास और उसकी काव्यकला पृ0 111
2- वही

और मन को कैसे कैसे छूता था ये सारे चित्र हमें कालिदास के ऋतुसंहार और मेघदूत से ही मिलते हैं ।

कालिदास का कृतित्व–

विद्वानों की एक सर्वसामान्य है कि साहित्य तत्कालीन समाज का दर्पण होता है । जिस समय रचनाकार की कोई कृति निर्मित होती है तो वह अपने परिवेश में तत्कालीन सभ्यता संस्कृति आदि को समाविशित किये रहती है । यही कारण है कि पाठक किसी किसी रचनाकार की रचना के अवगाहन करते हुये उस समय के सामाजिक जीवन का चित्र आत्मसात् कर लेता है किन्तु इसके साथ ही यह भी सच है कि साहित्य सर्जक तत्कालीन समाज को नयी दिशा देने के लिए भी अपनी कृतियों की सृजना करता है । इस अर्थ में समाज का द्रष्टा ही नहीं स्रष्टा भी होता है ।

आलंकारिकों ने काव्य प्रयोजन के सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किये है । इनमें मम्मट के काव्य प्रयोजन अति प्रसिद्ध है । उन्होंने अपनी कृति काव्य प्रकाश में काव्य निर्माण के छः प्रयोजन निर्दीशित किये है–– यश, अर्थ, व्यवहार ज्ञान, शिवत्वप्राप्ति, आनन्द और कमनीय उपदेश ।[1]

इन छः प्रयोजनों में महाकवि कालिदास के काव्य सर्जन में उन्होंने यश प्राप्त का उल्लेश किया है ।[2]

कालिदास के यशस्वी कृतित्व को लेकर उनकी कृतियों के विषय में कुछ लिखने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह जाने कि विश्व का माना हुआ यह कवि किस अन्तर्वेदना के समाधान हेतु अपनी कृतियों की सृष्टि में प्रवृत्त हुआ । इस सन्दर्भ में हम इसी अध्याय में डॉ0 देवीदत्त शर्मा का एक उद्धरण प्रस्तुत कर चुके हैं, जिसका सारांश यह है कि कवि के सामने एक विकट राष्ट्रीय समस्या थी राष्ट्र व्यापी बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार से वैदिक धर्म एवं संस्कृति का ह्रास एवं भारतीय संस्कृति के प्राण

---

1. काव्यप्रकाश 1.2
2. वही, कालिदासदासदीनामिव यशः ।

वर्णाश्रम व्यवस्था का नितान्त अवमूल्यन था । कालिदास जैसे राष्ट्रीय कवि के सन्दर्भ में यह मान्यता स्थापित करना कि उनकी काव्य रचना का प्रयोजन मात्र वैयक्तिक यशः प्राप्ति है, शोभनीय नहीं लगता ।

कालिदास की सारी कृतियों में स्पष्ट रूप से बौद्ध धर्म का विरोध प्रदर्शन तो नहीं दृष्टिगोचर होता किन्तु वैदिक धर्म के अप्राकृतिक लोक व्यवहार एवं उसके दुष्परिणाम से जनित जन जीवन में व्याप्त विसंगतिया उनके अन्तर्मन को अवश्य मथित करती रही होगी । यह निर्विवाद बात है कि स्त्री पुरूष का उपयुक्त समय में परस्पर आकर्षण स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य है । इतना ही नहीं प्रत्युत स्त्री–पुरूष के सम्मिलन में सृष्टि का रहस्य अन्तर्गर्भित है । जिसका नकारना समाज को विश्रृंखलित करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

बौद्ध धर्म के प्रवाह में आकर भारतीय संस्कृति का इतना अवमूल्यन होने लगा था इसका स्पष्ट नहीं तो सूक्ष्म संकेत कालिदास की कृतियों में सर्वत्र विद्यमान है । चाहे वो रघुवंश हो या कुमार संभव, शाकुन्तल हो या विक्रमोर्वशीयम् । स्वैर यौनाचार गुप्त रूप से बौद्ध धर्म में व्याप्त था । कालिदास इसका स्पष्ट रूप से नहीं किन्तु सूक्ष्म रूप में सर्वत्र प्रत्याख्यान करते है और दाम्पत्य प्रणय का समर्थन करते है-- प्रजायै गृहमेधिनाम् ।[1]

कालिदास के युग में बौद्ध विहारों के कदाचार से अवैध सन्तानों, नवजात शिशुओं का भरण पोषण एक गम्भीर समस्या बन गई थी । गृहस्थाश्रम व्यवस्था के शैथिल्य से बौद्ध मठो एवं विहारों में जो कदाचार हो रहे थे उसकी परिणति और क्या हो सकती थी सिवाय इसके कि अवैध निरापराध नवजात शिशु यत्र तत्र सुरक्षा के लिये मोहताज हो । कालिदास का मन इस कुव्यवस्था से अवश्य तिलमिला उठा होगा और उसके समाधान हेतु उन्होंने अपनी कृतियों के निर्माण के माध्यम से एक नयी सही सही दिशा प्रस्तुत की । श्री पाण्डेय ने अपने शोध पत्रों में कालिदास ने अपनी कृतियों के माध्यम से जो कुछ किया उसका निष्कर्ष यह निकाला है--

---

1. रघुवंश 1.17

1. मनुष्य के मन में सन्तान की उत्कट लालसा को जगाना ।

2. सन्तान के स्वस्थ पालन पोषण के लिए पारिवारिक जीवन पर बलाघात ।

3. शारीरिक और मानसिक स्तर पर तथाकथित अवैध बच्चों की पूर्ण पात्रता और उच्च सामर्थ्य का ऐसा निरूपण कि वैध सम्बन्धों से उत्पन्न ये सन्ताने अन्य शिशुओं से किसी प्रकार भी हीन नहीं होती है ।

कालिदास के अभिज्ञान–शाकुन्तल में निरूपित उक्त प्रयोजन अन्य रचनाओं में भी देखा जा सकता है । शकुन्तला की मालिनी और महर्षि का आश्रम नामक ग्रन्थ में कुंअर हरिश्चन्द्र, पूर्व जिलाधीश गढ़वाल ने भी स्थापित किया है । वे अपने आलेख में लिखते है--- महर्षि कण्व की संसार को सबसे बड़ी देन रही है एक परित्यक्त बालिका का भरण पोषण । यह सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में एक इतना बड़ा योगदान है, जिसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन होगा और है तो फिर उसी अभिज्ञान शाकुन्तलम् में । मारीचि और अदिति के व्यक्तित्व की कृपा के फल से भरत जैसे यशस्वी किन्तु तिरस्कृत बालक का लालन पालन सम्भव हो सका । कालिदास से सम्बन्धित एक लेख में मैने अन्यत्र यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि अभिज्ञान शाकुन्तलम् की रचना के पीछे नाटयकार का उद्देश्य था परित्यक्ता नारियों और अवैध कही जाने वाली संतान के जीवन यापन की समस्या का समाधान । यदि ऐसा न हो तो वह गन्धर्व विवाह की आलोचना न करता और न ही अन्त में दुष्यन्त से शकुन्तला के पाँव पकड़वाने का प्रयास करता । उस नाटक की सारी घटनाओं के लिये वर्तमान युग भी एक अभूतपूर्व पृष्ठभूमि बना हुआ है जहाँ प्रेम–विवाह पर बल दिया जाने लगा है, यौन व्यापार इतने खुले ढंग से होता है कि वह समाज के लिये अभिशाप बनता जा रहा है । संस्कार के कानून बनाने पड़ गये है । फिर भी परेशानी कम नहीं हुयी ।[1]

कालिदास के कृतित्व की मीमांसा हमें अन्ततः इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि कालिदास के कृतित्व का मूल आधार राष्ट्र में वैदिक संस्कृति की पुनः स्थापना एवं भारतीय संस्कृति के मूल उत्स वर्णाश्रम व्यवस्था की जन जीवन में सामंजस्य पूर्ण प्रतिष्ठा करना है । कालिदास का सम्पूर्ण कृतित्व बौद्धों की तरह पलायन नहीं एक सार्थक सामाजिक जीवन जीने की कला का सन्देश प्रदान करता है । कालिदास की सही पहचान कर्मवाद है, शून्यवाद नहीं ।

---

1. शकुन्तला की मालिनी और महर्षि कण्व का आश्रम, पृ0 34

<u>रघुवंश महाकाव्य :-</u>

महाकवि कालिदास का यह महाकाव्य एक उच्च कोटि का राष्ट्रीय महाकाव्य है । इस महाकाव्य में महाकवि ने रघुवंश प्रसूत अनेक राजाओं के कथानक के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत की है । निश्चय ही कवि के चिन्तन का आयाम बड़ा विस्तृत तथा विशाल था । भारतीय संस्कृति की महनीयता उसे इतनी व्यापक दीख पड़ी कि किसी एक महापुरूष के चरित्र में उसका समाहार असम्भव लगा । अतएव कवि ने पूरे सूर्यवंशी राजाओं के चरित्र के माध्यम से अपने अभिमत को प्रस्तुत किया । रघुवंश के प्रणयन में आदि कवि वाल्मीकि से आशय मिला ।[1] उन्होंने इसको मुक्त कण्ठ से स्वीकारा है । कालिदास ने रघुवंश की रचना बहुत ही सधे हाथों से की है । इस सन्दर्भ में कवि की दृष्टि सतत् जागरूक रही है कि किस चरित्र के माध्यम से कितनी बहुमूल्य देन समाज को दी जाये । रघुवंश की रचना में कालिदास अपनी निष्ठा रघुवंश प्रसूत महापुरूषों में मुक्त कण्ठ से स्वीकारते हैं । जिस प्रकार महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य के एक अध्याय में जिसका अभिधान मूल 'रामायण लोक' प्रसिद्ध है । राम के अपूर्ण गुणों को चित्रित किया है । कुछ ऐसी ही शैली में कालिदास ने भी रघुवंशी नायकों के गुणों का समायोजन किया है । लगता तो ऐसा है कि महाकवि कालिदास ने अनेक राजाओं के चरित्रों को इस लिये अपना वर्ण्य विषय बनाया क्योंकि उनका विश्वास था कि भारतीय संस्कृति किसी एक चरित्र में समाहित नहीं हो सकती । दिलीप की गुरू सेवा, रघु की वदान्यता, अज का अगाध दाम्पत्य प्रणय, राम का मर्यादा पुरूषोत्तमत्व आदि ऐसे अनेक लोकातिशायी चरित्र है जो एकत्र दुर्लभ हैं ।

रघुवंश की रचना करके महाकवि ने भारतीय संस्कृति एवं भारतीयता का स्थापन तो किया ही साथ ही इस महाकाव्य को समाज के लिये भी उपकारक बनाया । राजाओं को प्रजा के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए । जहाँ एक ओर यह स्पष्ट होता है तो दूसरी ओर प्रजा का राजा के साथ किस तरह का सम्बन्ध होना चाहिए इसका भी इस महाकाव्य में अभूतपूर्व चित्रण है ।

---

1. रघुवंश 1.4

रघुवंश महाकाव्य में इक्तीस सूर्यवंशी राजाओं के जीवन का वर्णन है । इस महाकाव्य में कवि की प्रतिभा का प्रस्फुरण पदे--पदे परिलक्षित होता है । एक ओर भावों का सौन्दर्य है तो दूसरी ओर कला का चमत्कार; एक ओर भाषा में प्रसाद और माधुर्य है तो दूसरी ओर अलंकारों की अनुमप छटा, एक ओर वाच्यार्थ की मुक्तता है तो दूसरी ओर व्यग्यार्थ का अपूर्व संयोग एक ओर संभोग श्रृंगार का रसास्वाद है तो दूसरी ओर विप्रलम्भ श्रृंगार की मार्मिक अनुभूति, एक ओर बाह्य प्रकृति का चित्रण है तो दूसरी ओर आन्तरिक प्रकृति का तात्त्विक विश्लेषण । इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास सभी दृष्टियों से कवियों के लिये आदर्श हो गये । कालिदास के इस वैशिष्टय के कारण ही कवियों और आलोचकों को कहना पड़ा है कि 'क इव रघुकारे न रमते'-- कौन ऐसा है जिसका मन रघुवंश काव्य में नहीं रम जाता ?

रघुवंश में सर्वत्र वैदर्भी रीति एवं प्रसाद गुण विद्यमान है । महाकवि कालिदास सौन्दर्य के तो उत्कृष्ट कोटि के चितेरे है ही साथ ही उन्होंने उजाड़ खण्डहारों का भी ऐसा ही वर्णन किया है । उदाहरण के लिए कुश जब कुशावती में जाकर राज्य करने लगे तब अयोध्या अधिदेवता स्त्री का रूप धारण करके उनके पास गयी । इस प्रसंग में अयोध्या की हीन दशा का अत्यन्त मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है ।[1]

रघुवंश महाकाव्य के काव्य वैशिष्ट्य के सन्दर्भ में पल्लवन करना आवश्यक नहीं क्योंकि नाटकों में जिस तरह अभिज्ञान शाकुन्तल सहृदयों का सर्वस्व है वैसे ही महाकाव्यों में यह महाकाव्य काव्य रसिकों के गले का हार है ।

---

1. रघु0 16-18, 20

इस महाकाव्य के सन्दर्भ में एक विद्वान की कालिदास के प्रति की गई यह टिप्पणी ध्यान देने योग्य है । रघुकार तुम्हारी नान्दनी रघुवंश वर्धिनी ही नहीं मानव वंश संवर्धिनी भी है, जिसका दुग्धपान कर भारतीय संस्कृति प्राणवान बनी है, जिसमें रघु और अज ही नहीं राम जैसे भगवान भी जन्म लेते हैं, जिसकी परम पुनीत सीता आज भी पृथ्वी के अवगीता होकर कोटि--कोटि भारतीयों के कण्ठ की भगवद् गीता बनी हुई है । कवि आज भी तुम्हारी सीता के दृढव्रत चरणों से जाने कितने ही भरतों के मस्तक पावन होते हैं । आज भी तुम्हारे भरत के ज्येष्ठानुवृत्ति जयलासित मस्तकों के स्पर्श से जाने कितनी ही सीताओं के चरण युगल कृतार्थ होते हैं । आज भी तुम्हारे राम की सीता और भरत सा अनुज विश्व साहित्य में दुर्लभ है । अमर काव्य के कवि कालिदास । तुम्हारा कोमल कवित्व अगाध पाण्डित्य तथा असीम चिन्तन इतना महान है, तुम्हारे काव्य का आयाम इतना विस्तृत तथा विशाल है कि उसके विषय में यही कहा जा सकता है-- गौरवेण इदं महत् ।[1]

<u>कुमारसम्भव महाकाव्य</u>--

कवि का द्वितीय महाकाव्य 'कुमारसम्भव' है । यह अष्ट सर्गात्मक महाकाव्य है । यद्यपि यह महाकाव्य सत्रह सर्गों में उपलब्ध है; किन्तु अष्टम सर्ग पर्यन्त ही कुमारसम्भव महाकवि की रचना मानी जाती है । कालिदास के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने मात्र अष्टम सर्ग तक ही महाकाव्य की टीका लिखी है ।

औचित्य सिद्धान्त के प्रवर्तक क्षेमेन्द्र ने कुमारसंभव के आठवे सर्ग का श्लोक प्रबन्धार्थ औचित्य के विरूद्ध उदाहरण रूप में लिया है । क्षेमेन्द्र का मत है कि इस पद्य में जगदम्बा का वर्णन निम्न कोटि की नारी के अनुरूप नखक्षतादि के द्वारा और जगत् के पिता शंकर का उनके दर्शन की काम लालसा के द्वारा

---

1. कृष्णदत्त; कालिदास का काव्य दर्शन, पृ0 94

किया गया है । जो अनुचित है । इससे प्रबन्धार्थ में घोर अनौचित्य उपस्थित हो जाता है ।[1] यह प्राय: निश्चित है कि महाकवि का यह महाकाव्य आठ सर्गात्मक है । अनेक काव्यशास्त्रियों के ग्रन्थों में उनके ही श्लोकों का उद्धरण यही प्रमाणित करता है । वामन राजशेखर कुन्तक क्षेमेन्द्र भोज, हेमचन्द्र, अप्पय दीक्षित, शारदा तनय आदि सभी आचार्यों ने आठवे सर्ग के अनेक श्लोक उदधृत किये है । वामन से लेकर अठारहवी शती तक किसी भी संस्कृत काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ में आठवे सर्ग के पश्चात के किसी भी सर्ग का कोई भी श्लोक किसी भी आचार्य द्वारा उदधृत नहीं किया गया है । इससे स्पष्ट है कि हमारे काव्यशास्त्री मनीषी कुमारसंभव को आठ सर्ग तक ही कवि की मौलिक रचना मानते हैं ।[1]

कुमारसंभव और रघुवंश इन दोनों महाकाव्यो में कवि का लक्ष्य एक ही रहा है---- वैदिक संस्कृति का उन्नयन । किन्तु लक्ष्य की यह समानता होने पर भी दोनों महाकाव्यों में कवि की दृष्टि में भेद है । रघुवंश के विषय में ऊपर कहा जा चुका है कि उसके प्रणयन में कवि की दृष्टि का आयाम बहुमुखी था । कुमारसंभव में कवि की दृष्टि एक मात्र ग्रहस्थ धर्म की पुष्टि में समाहित है । भगवान शिव भले ही विरक्त हो किन्तु लोक कल्याण के लिये उन्हें भी गृहस्थ जीवन स्वीकारना अनिवार्य हो जाता है । यही कारण है कि इस महाकावय में हम शिव--पार्वती के सम्भोग वर्णन का अतिरेक पाते हैं । प्राचीन पंडितों ने इसकी भरपूर आलोचना की है । अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी कड़े आक्षेप किये है । परन्तु यह सब कालिदास के श्रृंगार को सतही तौर पर देखने के कारण ही हुआ है । वास्तविकता तो यह है कि कालिदास ने जानबूझकर कुमारसंभव में शिव पार्वती का संभोग वर्णन किया है । जो काव्य की दृष्टि से उचित ही है । कालिदास कोई धर्मशास्त्र का ग्रन्थ नहीं लिख रहे थे किन्तु 'कान्तासम्मित उपदेश' के माध्यम से दाम्पत्य प्रणय की उपादेयता हेतु वे एक काव्यकृति की रचना कर रहे थे ।

---

1. कुमारसंभव 1.1 मल्लिनाथ टीका

कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री पुरूष का अनैतिक सम्मिलन की अपेक्षा जो न चाहते हुये भी बौद्ध धर्म. की दुर्बलता बन गई थी । उसके विपरीत एक स्वभाविक जीवन दर्शन देने के लिए कालिदास ने संभोग प्रधान दाम्पत्य का चित्रण किया ।

प्राच्य एवं पाश्चात्य समीक्षकों की धारणा के विपरीत हमारी यह स्थापना यद्यपि एक धृष्टता ही कही जा सकती है, किन्तु यह विचारणीय तो है ही । हमारा यह कोरा आग्रह नहीं प्रत्युत गहरी आस्था है कि कालिदास जैसा महान कवि निरूद्देश्य जोखिम उठाने में उतारू नहीं होता जैसा कि उसके काव्य से प्रतीत होता है । उसका श्रृंगार सोद्देश्य है, आक्षेप योग्य नहीं है ।

एक विचारक की यह स्थापना जिससे हमारे मन्तव्य की पुष्टि होती है, मननीय है: ''वाग्देवातात्मन् ! तुम्हारा 'कुमारसम्भव' यह तो जैसे अष्ट सर्गात्मक महाकाव्य तेरे अष्टमूर्ति रूप की रसमयी व्याख्या है । तत्वतः तुम्हारी यह रचना अनुपम है । इसमें पार्वती का जो अन्तः सौन्दर्य तुमने चित्रित किया है उसकी छाया तक अन्यत्र दुर्लभ है । सच तो यह है कि इस काव्य के तत्वावगाहन के बिना तुम्हारे श्रृंगार का रहस्य बोध खपुष्पायित है ।[1]

कुमारसंभव में शिव पार्वती के सम्भोग--श्रृंगार का चित्रण किया गया है और जमकर किया गया है इसको लेकर जो आक्षेप--प्रत्याक्षेप हुये है जिसकी एक लम्बी श्रृंखला है इसकी चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं । किन्तु इतना तो निवेद्य अवश्य है कि यह आलोचना का विषय ही तो कुमारसंभव के समझने की कुञ्जी है । तथागत बुद्ध ने भी काम--विजय किया था । महाकवि अश्वघोष ने विजयी भगवान बुद्ध के चरणों में पराजित कामदेव को प्रणिपात् करते हुये दिखाया किन्तु सच तो यह है कि तथागत के श्री चरणों में मदन भले ही हारे हुये जुआरी की तरह गिरा हो परन्तु उनका प्रवर्तित धर्म जो संसार के कौने--कौने में फैला,

---

1. कृष्णदत्त चतुर्वेदी : `कालिदास, पृ0 94

उसको भी विकृत करने में वह सफल तो हुआ । लगता है बुद्ध की मारविजय न होकर कामदेव की बुद्ध के ऊपर विजय हुई हो, किन्तु कालिदास के मार दहन की बात ही दूसरी है ।

'ओं कुबेर नाथ' राय इस सन्दर्भ में लिखते है--- बुद्ध में जहाँ यह मार विजय एक निवृति प्रधान दृष्टि मात्र बनकर रह गया, शिव ने इसे प्रवृत्ति के साथ जोड़कर सम्पूर्ण बनाया । भार दहन के बाद पार्वती वरण काम और मोक्ष का, प्रवृति और निवृत्ति का परस्पर वरण है । निवृत्ति प्रवृत्ति को शुद्ध पावन करती है और प्रवृत्ति निवृत्ति को समृद्ध और संपृक्त ।[1]

कालिदास के कुमारसंभव को लेकर कहीं न कहीं व्यर्थ का भटकाव है ऐसा लगता है ।

हमें सोचना चाहिए यदि दाम्पत्य में स्त्री पुरूष का सह मिलन अनैतिक और अप्राकृतिक है तो फिर जीवन में प्राकृतिक क्या है ? सच तो यह है कि कालिदास ने काम-दहन के द्वारा काम के कालुष्य को जिसमें वासना ओतप्रोत रहती है, उसे निरस्त किया है । स्त्री पुरूष के बीच वासनामूलक साहचर्य हेय है किन्तु निष्कलुष श्रृंगार तो वरेण्य ही नहीं सृष्टि के रहस्य का मूलाधार है । यही कुमारसम्भव में कालिदास का संदेश है ।

ऋतुसंहार एवं मेघदूत

कवि की ये दोनों कृतियाँ गीतिकाव्य है । जो इस शोध प्रबन्ध में प्रमुखतया विवेच्य है । जिसका विस्तृत विवेचन षष्ठ एवं सप्तम अध्याय में किया जाना है । अतएव अब हम कालिदास के कृतित्व के परिप्रेक्ष्य में उनकी चर्चा आवृत्ति दोष से बचाने के लिये यहाँ करना उचित नहीं समझते है ।

कालिदास के नाटक:

कालिदास के तीन नाटक है :--

1. मालविकाग्निमित्रम्
2. विक्रमोर्वशीयम्
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्

---

1. कुबेरनाथराय : रस आखेटक, पृ0 122

कालिदास की इन उत्कृष्ट नाट्यकृतियों का क्रमानुसार संक्षिप्त विवेचन हम यहाँ कर रहे है ।

मालविकाग्निमित्रम्--

ऐसा लगता है कि नाट्य क्षेत्र में यह कवि की प्रथम रचना है । इस नाटक की प्रस्तावना में कवि स्वयं को कविपुत्र, भास एवं सौमिल्य आदि की तुलना में नौसिखिया घोषित करता है ।[1] बाद में आत्मविश्वास जागृत होने पर इस प्रकार का भाव कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है, रचना के अनोखेपन का दावा अवश्य करता है ।

नाटक की कथावस्तु अंशतः ऐतिहासिक है । इसका नायक अग्निमित्र, उसके पिता पुष्पमित्र, पुत्र बसुमित्र तीनों ऐतिहासिक पात्र है । इसी भाँति नाटक की मालविका जो प्रधान स्त्री पात्र है । उसका व्यक्तित्व भी इतिहास की राजनैतिक जटिलता से सम्बद्ध लगता है । विदर्भ देश पर अग्निमित्र का आक्रमण और उस राज्य का विभाजन सम्भवतः ऐतिहासिक वास्तविकताएं रखते हैं ।

इस नाटक में अग्निमित्र और मालविका के प्रणय और विवाह का अंकन है । विदर्भ नरेश यज्ञसेन के साले मौर्य को अग्निमित्र ने बन्दी बना लिया था । उधर यज्ञसेन के चचेरे भाई माधवसेन का अग्निमित्र की ओर झुकाव था । वह अग्निमित्र से अपनी बहन मालविका का विवाह कर राजनीतिक मैत्री को दृढ़ करना चाहता था । विदर्भ राज्य के भाग का समान उत्तराधिकारी जानकर माधवसेन को यज्ञसेन ने बन्दी बना लिया । अग्निमित्र के लिये उपहार स्वरूप भेजी गयी मालविका मन्त्री सुमति के डाकुओं के साथ संघर्ष में मारे जाने पर किसी प्रकार निकल भागी । वह वन--रक्षकों की सहायता से अग्निमित्र के सेनापति वीरसेन के पास पहुँच गई । वीरसेन ने उसे सैनिकों के साथ विदिशा भेज दिया । इसी ऐतिहासिक तथ्य को लेकर कवि ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में कथानक का फ्रेम तैयार किया है ।[2]

कवि की प्रथम नाटक रचना होने के कारण इस नाटक में कवि के अन्य नाटकों की भाँति प्रौढ़ता तो नहीं आ पायी है । किन्तु कालिदास की यह कृति शिल्प की दृष्टि से अन्य नाटकों की अपेक्षा कम उत्कृष्ट कहीं जा सकती है । इसमें अभिनेयता का निर्वाह सुगमता से किया गया है । जो नाटक का अन्यतम गुण माना जाता है । इसी नाटक को लेकर कालिदास को शुंगकालीन सिद्ध करने की

---

1. मालविकाग्निमित्रम्; प्रस्तावना
2. देखिए अमलधारी सिंह का कालिदास पृ0 35--37

चेष्टा की गई है । समीक्षकों का कहना है कि यदि कालिदास गुप्त कालीन होते तो उनको इतने प्राचीन राजनैतिक कथानक की क्या अपेक्षा थी । इस सन्दर्भ में हमारा निवेदन तो यह है कि इस मतभेद में न पड़कर यह देखना चाहिए कि 'मालविकाग्निमित्र' रस परिपाक एवं कला की दृष्टि से कितना खरा उतरता है । इस नाटक के शिल्प पर टिप्पणी करते हुए शिव प्रसार भारद्वाज अपने 'कालिदास दर्शन' में कहते हैं : इस नाटक में लेखक ने प्रेम का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह पार्थिव है । इसलिए इस प्रणय सिद्धि में कोई साधना नहीं करनी पड़ती । इस नाटक में प्रेम का संक्रमण एक दासी से होता है, जो एक राजा को शोभा नहीं देता । वियोग श्रृंगार का सामान्य चित्रण कवि ने इसमें किया है, जिसमें अन्तःपुर का षडयन्त्र ही कारण बना है । किन्तु विदूषक की एक साधारण चाल से सारा षडयन्त्र दूर हो जाता है ।[1]

मालविकाग्निमित्रम् में इस दृष्टि से उत्कृष्ट नाटक है कि इसमें लोकोत्तर तत्वों की कोई सहायता नहीं ली गयी है । यह वास्तविकता के अधिक निकट है । इसका नायक धीरोदात्त न होकर धीर ललित है । नाटक का प्रधान रस श्रृंगार है । काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह नाटक कम प्रभावी नहीं है ।

## विक्रमोर्वशीयम्

'विक्रमोर्वशीयम्' कालिदास का दूसरा नाटक है । पाँच अंकों में लिखा गया यह नाटक एक उपरूपक है । इसमें राजा पुरूरवा और उर्वशी नामक अप्सरा की प्रणय कथा वर्णित है । पुरूरवा और उर्वशी की कथा ऋग्वेद काल से चली आ रही है । यह प्रणय कथा यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण और महाभारत आदि में भी मिलती है ।[2] कालिदास ने वैदिक एवं पौराणिक आख्यान को अपनी कल्पना तूलिका के द्वारा एक नये चित्र में ढाला है । उदाहरणार्थ भरतमुनि का उर्वशी को मर्त्यलोक में जाने का शाप, कुमारवन में स्त्री का लता बन जाना आदि नाटककार की अपनी नाटकीय कल्पनाएं है ।

---

1. शिव प्रसाद भारद्वाज : कालिदास दर्शन, पृ0 372
2. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ0 330

विक्रमोर्वशीयम् भी श्रृंगार रस प्रधान नाट्यकृति है । मालविकाग्निमित्र के श्रृंगार की अपेक्षा इसके श्रृंगार को हम अधिक विकसित पाते हैं । मालविकाग्निमित्र में जहाँ एक अधेड़ राजा जो कई रानियों का पहले से ही पति है तथा कई सन्तानों का पिता भी है, उसका एक दासी के प्रति अनुरक्त होना औचित्य पूर्ण नहीं कहा जा सकता । विक्रमोर्वशीयम का नायक भूमण्डल का एक छत्र स्वामी है । देवता भी उससे यदा कदा सहायता माँगते हैं-- 'भवांश्च सांयुगीनः सहायः ।[1]

यह कृति मालविकाग्निमित्र की अपेक्षा उत्कृष्ट है । नाटक की भाषा नाट्योचित प्रसाद एवं माधुर्य गुण से संपृक्त है । नाटकीय तत्व भी इसमें स्पृहणीय है क्योंकि इसमें अन्तर्द्वन्द और मानसिक दशा का सुन्दर विश्लेषण है । चतुर्थ अंक में राजा का विलाप काव्य की दृष्टि से अत्यन्त सरस एवं प्रभावी है । विक्रमोर्वशीयम् की सौन्दर्याभिव्यक्ति इतनी उत्कृष्ट है कि वह सहस्रों सहृदयों का आज भी हृदयहार बना है । इस नाटक में कवि ने प्रेमी और प्रेमिका के अन्तः सौन्दर्य की अभिव्यक्ति बहुत ही मार्मिकता के साथ रूपायित की है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि नाटककार कालिदास ने इस नाटक में एक अप्सरा को मानवी नारी का मातृत्व प्रदान किया है । यह बात दूसरी है कि वह अपने प्रेमी से इस तथ्य को प्रकट होने नहीं देती । शायद इसका कारण यही कहा जा सकता है कि उसका प्रेमी पति कहीं उसको प्रौढ़ा समझकर वंचित न करें ।

कालिदास की कृतियों में अन्तः सौन्दर्य उनकी अपनी कलात्मक विशेषता है । साहित्यकार आनन्द शंकर माधवन ने कालिदास के इस सौन्दर्य पक्ष के बारे में लिखा है: पुष्प किसी अद्भुत एवं सम्भव व्यवस्था का परिचय देने आते है । वे कभी आपस में संघर्ष नहीं करते । सम्मिलित प्रयास से जनमानस को उस सम्भव व्यवस्था का दर्शन कराना चाहते हैं, जैसे अनगिनत दीपक अपने सम्मिलित प्रयास से अंधकार को दूर भगाते हैं । कालिदास जैसे साहित्य साधकों का ऐसा ही चरित्र है । पुष्प की कीमत मात्र यह नहीं है कि उसमें सौन्दर्य है, सुगन्ध है पराग है, मधु है, बल्कि यह है कि उसमें फल प्रसविनी

---

1. विक्रमोर्वशीय अंक 5

शक्ति है, जो असंख्य पौधे पैदा करने में सामर्थ्य वाले बीजों को धारण किए हुये है । कालिदास की प्रत्येक रचना को भी इसी रूप में समझने की जरूरत है ।[1]

**विक्रमोर्वशीयम्**– नाटक शिल्प की दृष्टि से भले ही शिथिल हो किन्तु रस–परिपाक की दृष्टि से यह एक उत्तम नाटक है । इस नाटक जैसा प्रभावी पार्श्वसंगीत तो कदाचित् ही संस्कृत के किसी नाटक में बन पड़ा हो ।

**अभिज्ञानशाकुन्तलम्**–

प्रस्तुत नाटक मात्र संस्कृत साहित्य का ही नहीं विश्व साहित्य का एक अपूर्व रत्न है ।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की कथा का सर्वाधिक चमत्कार अभिज्ञान (मुद्रिका) द्वारा विस्मृत शकुन्तला के विस्मरण और तत्पश्चात् उसके स्वीकार पर निर्भर है । नाटक की कथा का मूल सौन्दर्य यही है । कालिदास ने इस चमत्कार को कृति के नामकरण में ही सम्पृक्त कर दिया है । यह उनका अद्भुत काव्य कौशल है । नाटक के नामकरण के सन्दर्भ में बहुमत यही है कि 'अभिज्ञानेन स्मृता शकुन्तला यस्मिन् तन्नाटकं अभिज्ञानशाकुन्तलम्' । अर्थात् जिस नाटक में मुद्रिका के द्वारा शकुन्तला की पहचान होती है ।

प्रस्तुत नाटक का कथानक यद्यपि महाभारत से लिया गया है किन्तु महाभारतोक्त कथानक में कवि ने अपनी कल्पना से पर्याप्त परिवर्तन तो किया ही है साथ ही उसमें आवश्यक सन्निवेश भी किया है । नाटक की कथावस्तु में दुर्वासा प्रकरण कवि कल्पना प्रसूत है । इससे नाटक में कथानक की नाटकीय प्रभाविष्णुता बढ़ जाती है । एक ओर जहाँ नाटक का प्रधान पात्र दुष्यन्त अभिशप्त होने के कारण निर्दोष सिद्ध होता है, वहीं दूसरी ओर नाटक की जीवन्तता और समृद्ध हो जाती है । प्रस्तुत नाटक में सात अंक है । इसमें दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम, वियोग और पुनर्मिलन का वर्णन है । यूँ तो सारा का सारा शाकुन्तल अद्भुत तथा अपूर्व है । किन्तु रसज्ञों ने इस नाटक के कुछ विशेष स्थलों की विशेष छानबीन

---

1. कृष्णदत्त चतुर्वेदी : कालिदास श्रद्धाञ्जलिका, पृ0 32

की है । कुछ के मत से इस नाटक का चतुर्थ अंक सर्वथा उत्कृष्ट है । अन्य कुछ विद्वान ही ऐसे भी हैं जो चतुर्थ अंक की अपेक्षा पंचम अंक को श्रेष्ठ घोषित करते हैं । इस बारे में तारिणीश झा लिखते हैं:-- प्राचीन प्रवाद है कि इस नाटक में यहीं श्लोक सबसे उत्तम है-- यास्यत्यद्योते । किन्तु हमारी दृष्टि में इसी अंक की श्लोक संख्या दो यात्येकतोऽस्ताशिखरं का जितना सुन्दर भाव है उतना किसी का नहीं । कहा तो यह भी जाता है कि चतुर्थ अंक सर्वोत्कृष्ट है । किन्तु इस सम्बन्ध में हमारा विचार है कि पंचम अंक तो उससे भी उत्कृष्ट है ।[1]

इन विवादों को दूर करें । सच तो यह है कि कालिदास की यह कृति सर्वांश में एक अप्रतिम रचना है । रस परिपाक की दृष्टि से, भाव बोध की दृष्टि से तथा नाट्यशिल्प की दृष्टि से यह एक मनोरम और असाधारण नाट्य कृति है । कालिदास की सौन्दर्याभिव्यक्ति 'शाकुन्तल' में जिस तरह का निखार पा सकी है, वह सचमुच अद्वितीय है । निसर्ग पुत्री शकुन्तला मेनका प्रसूता भले ही हो, कण्व परिपालिता भले ही हो, किन्तु नाट्यकला के संसार में तो वह महाकवि कालिदास की मानस पुत्री ही है ।

शकुन्तला के निर्माण में कालिदास को किसी देवी का नहीं मानवी नारी का शील अंकन अभिप्रेत था । कुमारसंभव की पार्वती और रघुवंश की सीता के चरित्रांकन से कलाकार का जो मन तृप्त न हो सका वह मानवी शकुन्तला के चित्रांकन से परितृप्त हुआ ।

एक मानवी भारतीया नारी का चरित्र ही वह तत्त्व है जिसको महाकवि ने शकुन्तला में रूपायित किया है । वह भारतीय संस्कृति का प्राण है । शारंगव, शारद्वत एवं गौतमी के समक्ष अपने ही राजप्रासाद में जब उसका पति उसे अस्वीकार देता है तब शकुन्तला इस मर्मान्तक वेदना को झेलती मौन खड़ी रह जाती है । किन्तु जब राजा समस्त स्त्री जाति के ही शील पर आक्षेप कर डालता है तो

---

1. तरणीश झा : संस्कृत काव्य शास्त्र में व्यावहारिक समीक्षा, पृ0 53

शकुन्तला तिलमिला उठती है । वह उसे लताड कर बोलती है । 'अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन प्रेक्षसे । अनार्य, तुम अपने ही हृदय के समान सबको समझते हो । कालिदास की शकुन्तला की यह दृढ़ोक्ति लक्ष्य करने योग्य है । यह कालिदास की भारतीय नारी का अस्मिता का निदर्शन है ।

कालिदास की इस अपूर्व कृति के बारे में डा0 विद्यानिवास मिश्र की यह उक्ति अवधेय है : तपोवन में शान्ति ढूँढते रहे, ऐसे थके हारे कवि कोई और होंगे कालिदास नहीं । कालिदास तपोवन में वह निगूढ़, वह दाहात्मक तेज ढूँढ़ता है जो राज्य सत्ता की चमक में नहीं, ऐश्वर्य में नहीं है, वह तेज तपोवन के छने हुए प्रकाश में है । तप के साथ जिसका सौदा न हुआ वह सुरूपता वन्ध्या है । तप से जो मृदु न हुआ वह ऐश्वर्य ओछा है । तप से जो ज्ञान नहीं निखरा वह ज्ञान ठूंठ है ।[1]

निष्कर्ष: इस अध्याय में किया गया कालिदास के युग और उसके कृतित्व का विवेचन हमें कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रदान करता है । वे निष्कर्ष इस प्रकार समझे जा सकते है :

1. कवि को समझने के लिए उसके युग को समझना आवश्यक है ।
2. कालिदास इतिहास के जिस मोड़ पर जन्मा वह मोड़ बौद्ध धर्म कवि पलायनवादी प्रवृत्ति के विरूद्ध कर्मवादी प्रवृत्ति के उत्थान का युग था । इस युग की एक चाह थी जीवन भरपूर ढंग से जिया और भोगा जाना चाहिए ।
3. व्यक्तिगत ज्ञान–साधना को समष्टि कल्याण के लिए समर्पित होना चाहिए ।
4. काम जीवन का सहज और प्राकृतिक पक्ष है, इसे नकारना प्रवृति के स्वभाव को नकारना है ।
5. साहित्य का उद्देश्य धार्मिक और आडम्बरपूर्ण नैतिक उपदेश करना नहीं है, अपितु जीवन के प्रति लगाव पैदा करना है ।
6. जीवन के प्रति लगाव का सबसे प्रमुख तन्तु प्रेम है–– नर और नारी का प्रेम । यह प्रेम और मिथुन भाव प्रकृति के कण–कण में व्याप्त है ।

---

1. कालिदास श्रद्धाञ्जलिका, पृ0 103

## तृतीय अध्याय

## कालिदास की कृतियों का राष्ट्रीय व्यक्तित्व

### साहित्य कृतियों के राष्ट्रीय व्यक्तित्व का अर्थ–

कालिदास की कृतियों के राष्ट्रीय व्यक्तित्व को समझने से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि साहित्य की कृतियों के राष्ट्रीय व्यक्तित्व का अभिप्राय क्या होता है ? क्या इसका अर्थ यह है कि जो रचनाएं किसी पूरे राष्ट्र में पढ़ी जाती हैं, वे राष्ट्रीय हैं ? इसका सीधा सा उत्तर है, हाँ । केवल इतना और जोड़ लेना चाहिए कि उन रचनाओं के पढ़ने से राष्ट्र के सभी जन में अपने इतिहास, अपनी संस्कृति, अपनी कला अपने देश की धरती और विविद्य अंचलों के स्वदेशी जन के प्रति आत्मीयता और गौरव का भाव अवश्य जागना चाहिए । यदि किसी रचना के पढ़ने से यह नहीं होता है तो वह रचना सारे देश में पढ़ी जाने पर भी राष्ट्रीय नहीं कहीं जा सकती । उदाहरण के लिए यदि कोई सनसनीपूर्ण फिल्म सारी राष्ट्र में देखी जाए तो इतने भर से वह राष्ट्रीय व्यक्तित्व की फिल्म नहीं कहीं जा सकती । ऐसा ही अगर कोई अश्लील रचना है अथवा रूश्दी के 'शैतान की आयतें' जैसी चौंका देने वाली रचना है या फिर वात्स्यायन के कामसूत्र जैसी रचनाएं हैं वे भी अपनी और विशेषताएं रखने पर और सारे राष्ट्र में पढ़ी जाने पर भी राष्ट्रीय व्यक्तित्व की रचनाएं नहीं कही जा सकती । कारण इसका वहीं है जो ऊपर कहा गया है । राष्ट्रीय रचना वहीं है जो राष्ट्र को किसी प्रकार के आदर्श देती है, उसमें आशा का संचार करती है, अपने राष्ट्र के गौरव और सूरक्षा का भाव पैदा करती है । कालिदास जैसे कवि की रचनाओं में यह गुण है और वह किस रूप में है, यह हम आगे देखेंगे । कालिदास की कृतियाँ न केवल पूरे राष्ट्र में पढ़ी ही जाती है वे अपने पाठकों में भारतीय होने का स्वाभिमान भी भरती हैं ।

### राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व का समन्वय–

जहाँ तक रचनाओं के पूरे राष्ट्र में पढ़े जाने की बात है वह तो कालिदास के लिए बहुत छोटी बात रह गयी है । आज के संसार में हमारा यह कवि न केवल हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक फैले भारत राष्ट्र में ही पढ़ा जाता है बल्कि सारे भूमण्डल में उसकी रचनाएं सम्मान के साथ पढ़ी जाती हैं । श्रेष्ठ साहित्य के वे पाठक जिन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं है वे अपनी–अपनी भाषाओं में किए

गए अनुवादों से कालिदास की रचनाओं का आनन्द उठाते हैं । यह बात किसी से छिपी नहीं है कि उसकी कृतियों को पढ़ कर पश्चिम के लोग चकित रह गए । अनेक साहित्य मर्मज्ञों देश और जाति के भेद भुला कर इस सच्चाई को स्वीकारा कि कालिदास मानव जाति के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों में से एक है ।[1] इस दृष्टि से विचार करें तो कालिदास की कृतियों का भौगोलिक विस्तार राष्ट्र के सीमाओं को लांघकर अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है । परन्तु कालिदास की कृतियों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास और सम्मान का यह अर्थ नहीं है कि उसका राष्ट्रीय व्यक्तित्व कहीं विलीन हो गया है । वास्तविकता यह है कि इससे उसके राष्ट्रीय व्यक्तित्व में चार चाँद लग गए हैं । वह सच्चे अर्थों में एक राष्ट्र कवि हो गया है । सच्चा राष्ट्रीय व्यक्तित्व अपने राष्ट्र में गौरव का भाव भरता है, परन्तु मानवता उसके लिए सबसे ऊपर होती है । जो मानवतावादी नहीं है, वह राष्ट्रीय भी नहीं हो सकता । उदाहरण के लिए हम आधुनिक राष्ट्रवादी युग के महान सन्त स्वामी विवेकानन्द का उदाहरण लें । उन्होंने अमरीका और यूरोप में जाकर भारत के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक विचारों के मानवीय पक्षों का सच्चा रूप लोगों के सामने रखा । सारे पश्चिम के लोग उनके मानवतावादी वेदान्त धर्म के आगे श्रद्धा से सिर झुकाने लगे । इससे स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का हो गया । इस अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति ने उनके राष्ट्रीय व्यक्तित्व को और ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया । उनके प्रत्येक शब्द से भारत की आत्मा और भारत का गौरव बोलने लगा । भारत राष्ट्र का जन--जन, जो अँगरेजों की गुलामी से अपना आत्म विश्वास खो चुका था, जिसके अन्दर राष्ट्रीय गौरव का भाव बहुत क्षीण हो चुका था, आत्म गौरव अनुभव करने लगा । इससे राष्ट्र के अन्दर एक नया व्यक्तित्व पैदा हुआ । इसीलिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व होने पर भी विवेकानन्द महान् राष्ट्रीय व्यक्तित्व हैं ।

ऊपर जो कुछ हमने कहा है उसका अर्थ केवल यही है कि साहित्य की कृतियों का अथवा किसी व्यक्ति के विचारों का राष्ट्रीय व्यक्तित्व का प्रचार--प्रसार केवल एक स्थूल पक्ष है, वही सब कुछ नहीं है राष्ट्रीय व्यक्तित्व एक सूक्ष्म और भावात्मक चीज है ।

<u>भारतीय राष्ट्र : एक इतिहास दृष्टि–</u>

कालिदास की कृतियों के राष्ट्रीय व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आधुनिक युग में जिसे हम राष्ट्र कहते हैं, उसका विकास कई सोपानों में हुआ है । सामान्यतः राष्ट्र शब्द एक ऐसे जन समुदास का बोधक माना जाता है जिसकी धरती एक, भाषा एक, धर्म और संस्कृति एक तथा जिसकी राजनीति एक । आज के युग के यूरोप में जितने भी राज्य हैं, एकाध, अपवाद को छोड़ कर इसी राष्ट्रवादी सिद्धान्त से बने हैं ।

प्राचीन भारत में भी जब हम दृष्टि डालते हैं तो राष्ट्र का लगभग ऐसा ही स्वरूप हमें दिखाई देता हैं । वैदिक युग का राष्ट्र हम केवल किसी एक कुल या खानदान या कबीले के ऐसे लोगों के समुदाय के रूप में पाते हैं जिनकी भाषा और नस्ल एक होती है । ऋग्वेद में ऐसे अनेक जन समुदायों का उल्लेख मिलता है । अनु, यदु, तुवसु, तृत्सु, यदु, इक्ष्वाकु और पुरू ऐसे ही राष्ट्र प्रतीत होते हैं । यह राष्ट्र सब एक साहसी कबीले के रूप में प्रतीत होते हैं । इन्हें अपने लिए स्थायी भू–प्रदेश की चाह है । इसके लिए यह सभी समुदाय आपस में लड़ते झगड़ते हैं । ऋग्वेद का 'दाशराज्ञ' युद्ध इसी प्रकार के कलह की देन लगता है । उत्तर वैदिक युग में यही जन राष्ट्र भूमि से जुड़ जाते हैं । अब वे जन नहीं जनपद कहलाते हैं । भूमि के साथ इनका स्थायी सम्बन्ध जुड़ जाता है । हमारे देश के इतिहास में जनपद राष्ट्रो का इतिहास बहुत लम्बा है । जन और जनपद एक ही नाम से पुकारे जाते हैं--- कुरू, पञ्चाल, अंग, बंग जन और जनपदों के लिए एक से नाम हैं ।

जनपद राष्ट्रों का यह युग उत्तर वैदिक काल से पूरे गौतम बौद्ध के युग तक चलता है । बाद में मगध का शक्तिशाली जनपद दूसरे जनपदों को अपने अन्दर मिलाकर साम्राज्य राष्ट्र का आरम्भ करता है । भारत के इतिहास में राष्ट्र के विकास का यह तीसरा सोपान है । यह राष्ट्र जन और जनपद के प्राकृतिक रूप से बढ़कर राजनीतिक रूप ग्रहण कर लेता है । एक राजनीति के अधीन विभिन्न संस्कृति, नृवंश और भाषा वाले जन अब एक विशाल राजनीतिक राष्ट्र बनने लगे ।

साम्राज्य राष्ट्र की यह प्रक्रिया हम मगध साम्राज्य की स्थापना से लेकर मुगल युग तक देख सकते हैं । अँगरेज राज्य एक विदेशी राज्य था, अतः उसके विस्तार को हम राष्ट्र का विस्तार कहने में संकोच करते हैं । परन्तु भौतिक अर्थ में वह भी भारत राष्ट्र का राजनीतिक विस्तार ही था । अस्तु, जिसे हमने साम्राज्य राष्ट्र कहा है राजनीतिक अर्थ में वहीं भारत राष्ट्र के विकास का पहला सोपान है । इस सोपान का एक रूप तो हम महामनीषी और राजनीति के विश्वविख्यात आचार्य चाणक्य द्वारा स्थापित मौर्य साम्राज्य के रूप में पाते हैं । साम्राज्य राष्ट्र का वह रूप है जो अपनी केन्द्र शक्ति के समान्तर किसी जन राष्ट्र की सम्प्रभुता कोई मान्यता नहीं देना चाहता । युग की उन परिस्थितियों में हम समझते हैं राष्ट्र का ऐसा ही राजनीतिक एकात्मक रूप अभीष्ट था, विदेशी यूनानियों के सामने एकात्मक राष्ट्र ही खड़ा रह सकता था । वहाँ जनपद राष्ट्रों का समान्तर छूट और सम्प्रभुता राष्ट्र की राजनीतिक शक्ति को छितरा सकती थी ।

मौर्य युग से आगे चल कर जब हम गुप्त युग में आते हैं तो वहाँ भी साम्राज्य राष्ट्र का ही रूप पाते हैं । किन्तु यहाँ एक अन्तर जान पड़ता है । अन्तर यह मिलता है कि केन्द्र सत्ता तो साम्राज्य की रहती है किन्तु सीमित सम्प्रभुता जनपद राष्ट्र को भी मिली रहती है । कालिदास के रघुवंश से ऐसा ही सूचित होता है । केन्द्र की महाशक्ति का प्रतीक रघु की दिग्विजय यात्रा में महानदी के आसपास के प्रदेश को विजित करने के बाद रघु ने उसकी सम्प्रभुता तो क्षीण कर दी किन्तु उस राज्य की धरती का अपहरण नहीं किया-- श्रियं महेन्द्रराजस्य जहार न तु मेदिनीम् ।[1] हम ऐसा समझते हैं यह साम्राज्यवादी राष्ट्र का एक उदार रूप था । इसमें अलग अलग प्रदेशों की सीमित प्रकार की जनपदीय प्रभुता सुरक्षित रहती थी किन्तु एकात्मक शक्ति भी सर्वोपरि बनी रहती थी ।

भारत राष्ट्र के विकास का इतिहास उपर्युक्त प्रकार का ही मिलता है । आरम्भ में जन राष्ट्र, बाद में जनपद राष्ट्र और फिर साम्राज्य के रूप में जनपदों का मिला-जुला राष्ट्र । अँगरेजी राज्य तक

---

1. रघु0 4.43

भारत राष्ट्र की स्थिति कुछ ऐसी ही बनी रहती है । परन्तु इस प्रकार के भारत राष्ट्र की एक अतिरिक्त विशेषता भी देखने में आती है । वह विशेषता यह है कि सीमित सम्प्रभुता वाली और कभी कभी समान्तर सम्प्रभुता वाली राजनीतिक इकाईयों में बँटा होने पर भी पूरा भारत एक साँस्कृतिक राष्ट्र के रूप में विकसित हो गया था । यह साँस्कृतिक राष्ट्र बहुत सी बाधाओं का सामना करते हुए आज तक भी सुरक्षित चला आ रहा है । हमारे लोकतन्त्रात्मक भारत राष्ट्र की एकता का आधार उतना राजनीतिक नहीं है जितना कि सांस्कृतिक है ।

भारत राष्ट्र के इस ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डालते हुए डा0 विशन लाल गौड़ व्योमशेखर ने लिखा है :- 'राष्ट्र की बदलती परिभाषा और उसके विकसित स्वरूप की चर्चा के प्रसंग में वह एक नया तथ्य और जोड़ लेना चाहिए कि विश्व के मानचित्र पर आज कुछ ऐसे भी विशाल जनगण हैं जो प्राकृतिक राष्ट्र राष्ट्र नहीं कहे जा सकते । संयुक्त राज्य अमरीका, रूस तथा भारत, यहाँ तक कि ब्रिटेन भी इस परिभाषा में नहीं समाते हैं । ये ऐसे राष्ट्र है जिनकी न नस्ल एक, न भाषा एक, न धर्म एक, न सांस्कृतिक जीवन पद्धति ही एक और न ही भौगोलिक पर्यावरण एक है, किन्तु आज इन्हें एक राष्ट्र माना जाता है । इसका मुख्य आधार यहाँ के जन का एक राजनीतिक सत्ता के रूप में गठित होना तथा समान आर्थिक सामाजिक व्यवस्था में बँध जाना है । प्राकृतिक राष्ट्र की परिभाषा की दृष्टि से ऐसे राष्ट्र विविध जातीय राष्ट्रों के समुदित एकात्मक रूप हैं । एकात्मक बड़ी राष्ट्र इकाई के अंग बने पुराने छोटे--छोटे प्राकृतिक राष्ट्र आज बड़े राष्ट्र भी उपराष्ट्रीयताएं बन गए हैं और बहुत सही मसलहत में जैसे भाषिक और सांस्कृतिक पक्ष में उनकी निजता को मान्यता दी जाती है तथा राजनीतिक रूप से वे एकात्मक राष्ट्र के राज्य या प्रदेश कहलाते हैं । ऐसे महान राष्ट्रों को हम विविध भाषा और संस्कृति वाली राष्ट्रीयताओं के जीवन के कुछ समान कारकों जैसे एक सी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संरचना, कतिपद जीवन मूल्यों की एक सी जन चेतना तथा परिस्थिति मूलक संघर्षों की एक सी दिशा का प्रतिफलन कह सकते हैं ।[1]

---

1. राजसत्ता का अनुशासन, पृ0 126-27

आधुनिक युग में अनेक छोटे–छोटे प्राकृतिक राष्ट्रों के मिलने से बने विशाल राष्ट्रों के विकास की प्रक्रिया को इतिहास से भली भाँति प्रमाणित किया जा सकता है । हमारा भारत राष्ट्र इसका एक अच्छा उदाहरण है । इस बारे में डा0 व्योमशेखर का मत है: विविध जनगणों के समायोग से बने 'एक राष्ट्र की धारणा इतिहास में एकदम नयी नहीं है । मध्ययुगीन सामन्ती ढाँचे में भी यह प्रवृत्ति पायी गयी है । भारत के पुराण युग में, सम्भवतः गुप्त युग में, इस धारणा का साफ–साफ उदय दिखायी देता है :

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।

---विष्णु पुराण

हिमाद्रि से लेकर हिन्द सागर तक विस्तीण भूखण्ड भारतवर्ष है तथा इसमें जन्मे जनगण भारतीय है । हम नहीं कह सकते कि आज की राष्ट्र धारणा जैसा कट्टरपन इसमें है या नहीं, परन्तु इतना अवश्य है कि इसमें विविधताओं को पचा कर राष्ट्र की एकात्मकता कायम करने का संकल्प अवश्य है । इसलिए सतही तौर पर यह मान लेना कि भारत के विविध जनगणों की एकराष्ट्रात्मक चेतना का उदय ब्रिटिश उपनिवेशवाद की देन था, ठीक नहीं जँचता ।[1]

विष्णुपुराण में वर्णित आसेतु आहिमालय भारत राष्ट्र ने कितने ही उतार चढ़ाव देखे हैं परन्तु इसकी साँस्कृतिक एकात्मता आज तक अक्षुण्ण बनी रही है । इस एकता को रेखांकित करते हुए डा0 व्योमशेखर लिखते है :

हम समझते हैं बुरे से बुरे सामन्ती बिखराव के दिनों में भी भारत के विविध भाषा भाषी तथा विविध खानपान और विविध संस्कृति वाले जनगणों को उनकी भाषा, नस्ल और खानपान, यहाँ तक कि राजसत्ता की विविधता होते हुए भी कतिपय समान कारकों ने जैसे हिमालय के उत्तुंग शिखरों की दुर्लंघ्य प्राचीर, तीन दिशाओं से घेर रही सागर की परिखा, विश्व के अन्य भागों से विशिष्ट भौगोलिक संस्थिति, विविध जनगणों की आर्थिक अन्योन्य निर्भरता, एक सी दार्शनिक विचार चेतनाएं, सामाजिक संरचना,

---

1. राजसत्ता का अनुशासन, पृ0 27

भिन्न-भिन्न जनगणों के लोगों का जहाँ-तहाँ फैलकर स्थायी रूप से बस जाना तथा जीवन-पद्धतियों के पारस्परिक आदान--प्रदान मूलक संश्लेषण से जन्मे लगभग एक से सामाजिक सम्बन्धों के संविधान आदि ने उन्हें समान रूप से भारतीय होने का अहसास दिया । हिमाद्रि से सागर तक 'हम सब भारतीय हैं' यह अहसास ही भारतीय राष्ट्रीयता है और इस ऐतिहासिक अहसास से ओतप्रोत जन समुदाय अपनी अनेक निजताओं और विविधताओं के बावजूद आज का महान भारतीय राष्ट्र है ।[1]

इस भारतीय राष्ट्र की एकता को रेखांकित करते हुए पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने 'भारत की खोज' में लिखा है: राष्ट्र की एकता का एक अद्‌भुत स्वप्न सभ्यता के अरूणोदय से ही भारत के लोगों के मन में समाया रहा है । वह एकता किन्हीं बाहरी कारकों से आरोपित संधारणा नहीं थी, और ना ही एक जैसे बाहरी रूपों अथवा एक जैसे बाहरी रूपों या धार्मिक विश्वासों की देन थी, यह एकता भारत के लोगों की कोई आन्तरिक भावना थी । इसमें धार्मिक विश्वासों, आचारों और आस्थाओं की व्यापक सहिष्णुता थी, प्रत्येक विचारधारा और आस्था को सम्मान और प्रोत्साहन दिया जाता था ।[2]

हम समझते हैं भारत राष्ट्र की एकता को लेकर जवाहर लाल नेहरू ने जिस आन्तरिक भावना की बात कही है वह आन्तरिक भावना विकसित करने में हमारी संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य का सबसे अधिक योगदान रहा है । अँगरेजी गुलामी से आजादी के लिए जूझते हुए भारतीय जन की राष्ट्रीय एकता का सबसे बड़ा स्रोत संस्कृत साहित्य ही रहा था । उसमें निहित राष्ट्रीय एकता और गौरव के सन्देश आधुनिक भाषाओं में रूपान्तरित होकर जन-जन तक पहुँचे और सोया राष्ट्र जाग उठा । संस्कृत के इस ऐतिहासिक महत्त्व की पहचान करते हुए जवाहर लाल नेहरू ने भारत की खोज में लिखा है :

---

1. राजसत्ता का अनुशासन, पृ0 127
2. जवाहर लाल नेहरू : भारत की खोज

दुनिया में कोई ऐसी भाषा मिलना कठिन है जिसने किसी राष्ट्र के इतिहास में इतनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हो जैसी कि संस्कृत ने निभाई है । इसने न केवल ऊँचे विचारों और ऊँची साहित्य रचनाओं का ही भार वहन किया है, अपितु राजनीतिक टूटन के जमानों में भी भारत की एकता को कायम रखा था ।[1]

जवाहर लाल नेहरू राष्ट्र की एकता के लिए जिस आन्तरिक भावना की बात की है तथा उस दिशा में संस्कृत साहित्य का जो महत्व बताया है, उसका मुख्य आधार हमारे वाल्मीकि, वेदव्यास और कालिदास जैसे महान कवियों की श्रेष्ठ रचनाएं ही हैं । यह तीनों ही महान कवि हमारे भारतीय राष्ट्र के जीवन और चिन्तन के विभिन्न विकास सोपानों के प्रतिनिधि कवि हैं । राष्ट्रीय इतिहास के इस महत्वपूर्ण पक्ष को अरविन्द घोष ने इन शब्दों में आलोकित किया है :

वाल्मीकि, व्यास और कालिदास भारत के प्राचीन इतिहास का सारतत्त्व हैं । यदि और सब कुछ नष्ट हो जाता तो भी वे भारत के इतिहास और संस्कृति की सम्पूर्णता को पर्याप्त रूप में सुरक्षित रख सकते थे .... इनकी कृतियाँ हमारे राष्ट्रीय व्यक्तित्व के विकास के तीन भिन्न-भिन्न सोपान सूचित करती हैं । पहला सोपान आदर्शवादी, दूसरा बुद्धिवादी और तीसरा भौतिकवादी था । कालिदास तीसरे चरण का प्रतिनिधि कवि है ।[2]

<u>कालिदास का राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व –</u>

जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कालिदास अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का राष्ट्र कवि है । अरविन्द

---

1. जवाहर लाल नेहरू : मौलाना अबुल कलाम आजाद व्याख्यानमाला, 1959

2. अरविन्द घोष : कालिदास, पृ0 1

घोष के शब्दों में 'महाकवि कालिदास सच्चा राष्ट्र कवि है ।[1] यद्यपि उनकी कविता का आयाम उत्तरोतर विस्तृत एवं विशाल होता जा रहा है । संसार की शायद ही कोई अभागिनी भाषा होगी जिसमें कालिदास की कृतियों का रूपान्तर न हुआ हो । समस्त यूरोप एवं अमरीका में न केवल कालिदास की कृतियों का अनुवाद हुआ है, प्रत्युत उनका शाकुन्तल कहीं मूल रूप में कही तद् तद् भाषाओं में अनूदित होकर अभिनीत हुआ है । सच तो यह है कि कई पाश्चात्य विद्वानों ने शाकुन्तला का रसास्वादन करने के लिए संस्कृत भाषा सीखी । इस तरह हम देखते हैं कि कालिदास राष्ट्र के संकीर्ण घेरे में बन्द कवि नहीं है, वे तो विश्व कवि हैं । उनका काव्य–जगत् उनके हिमालय वर्णन में सन्दर्भ में कहीं गई उक्ति स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।[2] की भाँति समस्त पृथ्वी मण्डल में फैला है ।

विश्व कवि होने के साथ ही कालिदास हमारा राष्ट्रीय प्रतिनिधि कवि है । आज का भारत कालिदास का भारत है । तभी तो जर्मन कवि हर्डर को मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार करने में प्रसन्नता हुई है कि उपनिषदों एवं भागवत की अपेक्षा केवल 'शाकुन्तलम्' के अध्ययन से मुझे प्राचीन भारतीयों की विचार पद्धति का अधिक वास्तविक एवं विश्वसनीय बोध हुआ है ।[3] सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक किसी भी दृष्टि से देखे कालिदास की रचनाओं में अपने राष्ट्र की इन विशेषताओं का रूपांकन हुआ है; इनमें हमारी राष्ट्रीयता उजागर होती है । कहीं कवि इस क्षेत्र में स्पष्ट रूप से अपने राष्ट्र भारत का गौरव घोष करता हुआ हमारे सामने प्रस्तुत होता है तो कहीं कला की सीमा में प्रतिबद्ध हो संकेत रूप में इस तथ्य को उद्घाटित करता चलता है । किन्तु समग्र दृष्टि में कालिदास का लक्ष्य एक ही है । अपने राष्ट्र की विभूतियों का, अपनी राष्ट्रगत विशेषताओं का गौरव गान करना, की अभिव्यक्ति में क्या और किस प्रकार योगदान करती है । भारतीय जन जीवन पद्धति आरण्यक है । जीवेम शरदः शतम् के अनुसार भारतीय आश्रम व्यवस्था में शत वर्षीय जीवन को चार भागों में विभक्त किया गया है ।

---

1. अरविन्द घोष : कालिदास, पृ0 7
2. कुमारसंभव, 1.1
3. चतुर्वेदी, कालिदास श्रद्धांजलिका पृ0 104

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास अर्थात् जीवन के पचहत्तर वर्ष हमारी आश्रम व्यवस्था में अरण्य में सुरक्षित हैं । इस तरह भारत राष्ट्र की यह अपनी व्यवस्था है कि हम सहस्त्रों वर्ष से आज तक अनुप्रकृति के सान्निद्ध में उसको अपनी सहचरी बनाकर उसी भाँति पुष्पित, पल्लवित और फलित होते हैं; यह इस राष्ट्र की ही विशेषता है कि हमारा जीवन भीतर से एक रसता लिए किन्तु बाहर अनेकताओं से पूर्ण तथा बहुविद्य बना रहता है । जिससे हमारी ओजास्विता समृद्ध होती रहती है । भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ छः ऋतुओं का चक्र घूमता रहता है जिससे जनजीवन में एक ताज़गी बनी रहती है । हम यथा समय ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त शिशिर और बसन्त का आनन्द प्राप्त करते रहते है । यही कारण है कि वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक संस्कृत साहित्य में प्रकृति के गीत खूब गाये गये हैं ।

कालिदास जैसा युवाकवि अपने राष्ट्र के इस मोहक व्यक्तित्व से कैसे उदासीन रहता । उसने सबसे पहले अपने राष्ट्र के ऋतु--वैभव के गीत ही लिखना अपना कर्त्तव्य समझा । महाकवि ने छः ऋतुओं के सौन्दर्य से अभिभूत होकर जो स्वच्छन्द छन्द प्रस्तुत किये है वे हमारे राष्ट्रीय ऋतु चक्र के रंग बिरंगे चित्र हैं और राष्ट्रकवि के राष्ट्रीयता के प्रथम हस्ताक्षर हैं । कालिदास आधुनिक अवसरवादी कवियों की तरह नहीं जो राजनीतिक दाँव--पेंच से राष्ट्रकवि कहलवाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । वे लोग भ्रान्त हैं जो इस महान कवि को साम्राज्यशाही की छत्रछाया में फलता फूलता दिखलाने की चेष्टा करते हैं । वास्तविकता तो यह कि यह एक स्वतन्त्र चेता, युगदष्टा और युग का सृष्टा कवि है किसी राजा महाराजा की रूचियों की आग्रही नहीं । उसके सामने अखण्ड भारत का चित्र है । सारा भारत उसका भारत है । वह 'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।[1] का गायक है । मातृभूमि के गायक राष्ट्रकवि कालिदास के कवित्य का राष्ट्रीय चरित्र रेखांकित करते हुए डा0 शिव कुमार भारद्वाज ने लिखा है : कालिदास की कविता के व्याख्याकारों ने अपनी चेतना को आम तौर पर उसके कलात्मक सौन्दर्य पर ही न्यौछावर कर

---

1. शिव कुमार भारद्वाज : अखण्ड और महान भारत : कालिदास की कविता पृ0 24--25

दिया है, उसके अन्दर हिमालय की बुलन्दी से गूँजते और सागर की उत्ताल तरंगों से घोष करते 'अखण्ड और महान भारत' के दिग्घोषित स्तर को बहुत कम लोगों ने जाँचा परखा है । राष्ट्र के इतिहास में कुछ चीजें इतनी गहरा जाती हैं कि उनका नाम उस राष्ट्र का पूरा व्यक्तित्व बन जाता है । ऐसा हमेशा इसलिए नहीं होता कि उनके साथ कोई धार्मिक कठमुल्लापन जुड़ा होता है या दूसरी प्रकार का कोई संकीर्णतावादी कट्टरपन उसमें निहित होता है । यह इसलिए होता है कि वह व्यक्तित्व या वह आचरण अपने उदात्त और व्यापक प्रभाव से, मानवीय सौन्दर्य से जन--जन के मन पर छा जाता है । सभी देशवासी उसमें अपनापन महसूस करते हैं, उसके बड़प्पन में अपना बड़प्पन देखते हैं । भारत की राष्ट्रीयता के सिलसिले में बहुत सी ऐसी चीजें हैं जिनका नाम एक ही अर्थ रखता है-- भारत की धरती, भारत का गौरव, भारत की सन्तान का गौरव । ऐसी अनमोल चीजों में जहाँ रामायण और महाभारत राम और कृष्ण, गंगा और यमुना, अशोक और अकबर जैसे बहुत से नाम लिए जाते हैं वहीं एक बेमिसाल और अनबुझ नाम है हिमालय और उसका कवि कालिदास ।[1]

कालिदास की कविता के राष्ट्रीय मर्म को खोलते हुए विद्वान लेखक का कथन है :

कालिदास ही विश्व के महान कवियों में संभवतः एक मात्र ऐसा है जिसकी प्यार और श्रृंगार से भरी कविता अपने देश की धरती का श्रृंगार करना कभी नहीं भूलती । कालिदास की कविता का 'भारत महान' कोई कल्पनालोक नहीं, एक प्रत्यक्ष अनुभव है । देश की धरती के कण--कण से गूँजता सौन्दर्य और गौरव का संगीत उसकी कविता का प्राण है । सागर की साड़ी लपेटे और हिमालय का सौभाग्य तिलक लगाए कालिदास की कविता भारत की धरती का एक शाश्वत और मधुर संगीत है ।

अतिरिक्त रूप से कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे इस महान कवि की रचनाओं में हमारे

---

1. शिव कुमार भारद्वाज : अखण्ड और महान भारत : कालिदास की कविता पृ0 24--25

राष्ट्र की आत्मा बोलती है । मातृभूमि के प्रति उसका अनुराग आधुनिक राष्ट्रवाद के किन्हीं संकीर्ण नारों में नहीं और न ही किसी दूसरे राष्ट्र के प्रति घृणा अथवा विद्वेष के रूप में प्रकट हुआ है, वह शुद्ध रूप से अपने देश की सुन्दर प्रकृति, उदात्त सौन्दर्य बोध, राष्ट्रीय उत्कर्ष बोध, जन जीवन के प्रेम और उल्लास के रूप में प्रकट हुआ है । चाहे हम कालिदास के गीत काव्य, चाहे प्रबन्ध काव्य और चाहे नाटक सभी में हमें समग्र भारत का सौन्दर्य मिलता है, समग्र भारत की आत्मीयता मिलती है । उसकी किसी भी रचना भारत के किसी एक अंचल की रचना नहीं कहा जा सकता । किसी भी अंचल का वर्णन उसने ऐसा नहीं किया है जिसे हम चलते ढंग का या तटस्थ भाव वाला कह सकें । उसकी कृतियों को पढ़ कर तो यही अनुभव होता है जैसे भारत भूमि के सभी अंचलों का उसने आत्मीयता के साथ अवलोकन किया हो । कालिदास की कृतियों का यही वह राष्ट्रीय व्यक्तित्व है जिसके कारण भारत के सभी प्रदेशों के लोग उसे अपना कहने में गौरव का अनुभव करते है । कालिदास की प्रत्येक कृति को राष्ट्रीय व्यक्तित्व किन कारकों दिया है और वह व्यक्तित्व किस रूप में प्रस्फुटित हुआ है, यह हम महाकवि की प्रत्येक कृति के आलोक में समझ सकते हैं ।

ऋतुसंहार का राष्ट्रीय व्यक्तित्व

कालिदास की सर्वप्रथम रचना उसका 'ऋतुसंहार' गीति काव्य है । इस रचना का राष्ट्रीय व्यक्तित्व इससे ही आँका जा सकता है कि इसने स्वतन्त्रता संघर्ष के अग्रणी राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी अरविन्द का मन मोह लिया था ।

ऋतुसंहार को जो विद्वान ऋतु वर्णन मात्र समझते है वे महाकवि के प्रति न्याय दृष्टि नहीं रखते । यह सत्य है कि ऋतुसंहार ऋतु काव्य है, उसमें भारत की छः ऋतुओं का वर्णन है, किन्तु इससे अधिक सत्य यह है कि कवि की तत्व स्पर्शी प्रज्ञा प्रत्येक ऋतुओ के अन्तः निरीक्षण में कितनी दक्ष है, किस ऋतु में कौन पुष्प पुष्पित होता है, उसका क्या रंग--रूप है, जन--जीवन तत्--तत् ऋतुओं से कैसे प्रभावित होता है कालिदास इसका सजीव अंकन करते है ।

सारांश यह है कि ऋतु वर्णन के माध्यम से हमारा कवि हमारे राष्ट्रीय वैशिष्ट्य का अंकन करता है और यह लिखने में जरा भी संकोच नहीं कि परवर्ती कवियों के लिए उनका 'ऋतुसंहार' दिशा निर्देशक का कार्य कर रहा है और करता रहेगा ।

मेघदूत का राष्ट्रीय व्यक्तित्व

कालिदास का दूसरा गीति काव्य मेघदूत है । इसके सम्बन्ध में विशद चर्चा शोध प्रबन्ध के सप्तम् अध्याय में होगी । यहाँ इस कृति की केवल राष्ट्रीय गरिमा के परिप्रेक्ष्य में कुछ चर्चा की जा रही है, कहने के लिए तो मेघदूत एक विप्रलम्भ श्रृंगार मूलक विरह काव्य है किन्तु सच तो यह है कि वह केवल इतना ही नहीं कुछ और भी है । मेघदूत का कुछ और होना ही उसकी विशेषता है जो अन्य विरह गीति काव्यों से पृथक करता है । मेघदूत के सन्दर्भ में कुछ कहने के पूर्व यह निवेदन है कि प्रायः कालिदास के अध्येता उसको मात्र श्रृंगारी कवि कहकर सन्तोष कर लेते हैं किन्तु यथार्थता की दृष्टि से दूसरी ही है । कालिदास भारतीय लोक जीवन का अद्भुत चितेरा है । उनका यह वैशिष्ट्य उनकी प्रत्येक कृति में उजागर होता है । इस सन्दर्भ में 'अखण्ड और महान भारतः कालिदास की कविता' के लेखक शिव कुमार भारद्वाज की निम्नांकित पंक्तियाँ अवधेय हैं; जो कालिदास की कविता के यथार्थ बोध को उन्मीलित करती हैं: 'कालिदास की कविता में हमारे देश की धरती का प्राकृतिक वैभव, सांस्कृतिक गरिमा और अखण्डता सभी कुछ अपने उच्चतम रूप में चित्रित मिलता है । साधारणतः कालिदास की कविता को श्रृंगार और प्यार की सतही धारणाओं में फिसला दिया जाता है और उसमें आदि से अन्त तक बह रही राष्ट्र बोध की अन्तर्वाही सरस्वती की अनदेखी हो जाती है । सच बात तो यह है कि कालिदास की दुनिया उन इने-गिने महान कवियों में से एक है जिनकी कविता का प्यार और श्रृंगार देश की धरती का प्यार और श्रृंगार है, राष्ट्र के आत्म गौरव तथा उसकी एकता और अखण्डता का संगीत है । कालिदास की कविता के इस संगीत का आस्वाद रसवादी श्रृंगारिक दृष्टि से नहीं, राष्ट्रवादी चेतना से ही संभव है ।[1]

---

1. शिव कुमार भारद्वाज : अखण्ड और महान भारत, कालिदास की कविता, पृ0 221

मेघदूत दो भागों में विभक्त है-- 1- पूर्वमेघ 2- उत्तरमेघ ।

मेघदूत का पूर्वमेघ कवि के द्वारा ऐसा अंकित किया गया है कि वो रामगिरि से लेकर अलका तक की भूमि भारतभूमि का एक चित्र ही प्रस्तुत कर देता है । कुछ विचारक यह आपत्ति कर सकते है कि विरह काव्य में इस लम्बे मार्ग का निरूपण व्यर्थ है किनतु ऐसा वहीं लोग सोचते हैं जो कालिदास की रचना दृष्टि से अनभिज्ञ है । कालिदास की कृतियों में श्रृंगार भावना भले अभिबिम्बित हो किन्तु उसके तह में उसका राष्ट्रीय प्रेम अनुश्रव्य रहता है । मेघदूत के सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द शुक्ल की यह स्थापना मननीय है "मनुष्येतर बाह्य प्रकृति की जो प्रधानता मेघदूत में मिलती है वह संस्कृत के और किसी काव्य में नहीं । पूर्वमेघ तो यहाँ से वहाँ तक प्रकृति की एक मनोहर झाँकी अथवा भारत भूमि के स्वरूप का ही मधुर ध्यान है । मेघदूत न कल्पना की क्रीडा है, न कला की विचित्रता, वह है प्राचीन भारत के सबसे भावुक हृदय की अपनी प्यारी भूमि की रूप--माधुरी पर सीधी सादी प्रेम दृष्टि ।[1] यही बात शिव कुमार भारद्वाज भी कह रहे हैं-- "मेघ यात्रा की यह सलोनी भूमिका बाँध कालिदास के कवि की राष्ट्रीय चेतना उसके विरह गीतों की चेतना के साफ-साफ कह देती है: विरह की वेदने । माना कि तुम कविता का श्रृंगार हो पर यह मत भूलो कि कला के सब श्रृंगारों से बड़ा एक और श्रृंगार है, मेरे देश की धरती का श्रृंगार । मैं चाहता हूँ कि पहल उसे ही मिले । पहले मैं धरती के गीत गा लूँ फिर मुझे उम्मीद है कि तुम्हारे विरह गीत भी उसके अंक में कमल बन के खिल सकेंगे । कालिदास के मेघगीतों का यह मोड़ कवि चेतना की दिशा का यह अभिज्ञान कोई बाहरी आरोपण नहीं है, यह तो कवि चेतना का कभी न भुलाया जा सकने वाला व्योम मुखरित स्वर है-- मेरा प्रिय अखण्ड और महान भारत ।[2]

---

1. रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि प्रथम भाग पृ0 149

2. शिव कुमार भारद्वाज : अखण्ड और महान भारत, कालिदास की कविता, पृ0 49-50

हमारी तो यह धारणा है कवि का पूर्वमेघ तो स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है ही, क्योंकि उसमें तो स्पष्ट देश की धरती विविध अंचलों का प्राकृतिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक वैभव गाया गया है । उसका उत्तर मेघ भी जिसमें यक्ष-दम्पत्ति की पारस्परिक विरह वेदना अभिव्यञ्जित है, भारत के राष्ट्रीय--दाम्पत्य के स्वर मुखरित करता है । भारतेतर विश्व में यह दुर्लभ है । इसमें वर्णित अलका और नारी के सौन्दर्य चित्र भी हमारे राष्ट्रीय सौन्दर्य बोध के जीते जागते चित्र है ।

कुमार सम्भव का राष्ट्रीय व्यक्तित्व

कवि का कुमार संभव महाकाव्य तो अपने आरम्भ से ही भारत देश के अनन्त प्रहरी हिमालय का वर्णन प्रस्तुत करता है और वह भी विस्तार के साथ । कवि की अन्तःचेतना पूर्णतः समझती है कि हिमगिरि की सरिताओं से ही आप्लावित होकर सारा का सारा भारत बनता है । हिमालय से निःसृत गंगा चाहे वह उत्तरापथ हो या दक्षिणापथ समान रूप से जाति-धर्म निरपेक्ष जन-सामान्य को पवित्र करती है । कुछ लोग जो कुमारसंभव को मात्र सम्भोग श्रृंगार की कृति समझते है, उनको अपने सन्देह निराकरण के लिए हिमालय के सन्दर्भ में कवि का कथ्य पठनीय तथा मननीय है । इतना ही नहीं इस महाकाव्य में शैल पुत्री पार्वती का निर्व्याज पतिव्रत भारतीय ललनाओं का सर्वस्व है । हिमालय पुत्री उमा न केवल भारतीय नारी जन को ही वन्दनीया है, प्रत्युत भारतीय लोक--जीवन में भी उनका पूजन अर्चन प्रत्येक मांगलिक कार्य के आरम्भ में किया जाता है । कालिदास ने इस महाकाव्य में भारतीय दाम्पत्य के निष्कलुष प्रेम को जो स्वरूप प्रदान किया गया है वह भारत के राष्ट्रीय जीवन की अमूल्य सम्पत्ति है ।

रघुवंश का राष्ट्रीय व्यक्तित्व-

कालिदास की अनूठी कृति रघुवंश महाकाव्य में पदे पदे राष्ट्रीयता की झाँकी प्रस्तुत की गई है । हम पहले लिख चुके है कि महान कवि कालिदास राष्ट्रीय छवि के समग्र चित्रण में रघुवंश महाकाव्य में अनेक इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का अंकन करता है । क्योंकि उसको एहसास है कि उसकी राष्ट्रीयता की परिधि कितनी निस्सीम है ? वह किसी एक महापुरूष के चरित्र के माध्यम से रूपायित नहीं की जा सकती । कवि सामान्य से सामान्य वर्णन में अपनी राष्ट्रीयता का सूत्र पकड़े रहता है । उदाहरणार्थ राजा

दिलीप गोचारण कर रहा है । कालिदास वहाँ भी गौ की रक्षा को 'समुद्रवसना' भारती धरा की रक्षा मानता है :

> निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ।
>
> पयोधरीभूतचतुः समुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ।।[1]

कालिदास की दृष्टि से राष्ट्र की राजसत्ता धारण करने वाले व्यक्ति का सबसे पहला कार्य देश की धरती की बाहरी आक्रामक से रक्षा करना है । राष्ट्र की रक्षा तो वही राष्ट्रनायक कर सकता है जो आत्मबल से युक्त हो, अपनी रक्षा के लिए दूसरी शक्ति पर निर्भर न करता हो । कालिदास के शब्दो में कहें तो जो 'स्ववीर्यगुप्त' हो और जिसका राष्ट्र भी वैसा ही शक्तिशाली हो--स्ववीर्यगुप्ताहिमनोः प्रसूतिः 'रघुवंश' में रघु की दिग्विजय के माध्यम से अखण्ड भारत का जो चित्र कवि ने खीचा है, वह उसके राष्ट्रीयता का ही ज्वलन्त निदर्शन है इतना ही क्यो राम लंका विजय के पश्चात् पुष्पक यान से अपनी जन्मभूमि अयोध्या को लौट रहे है । विमान आकाश मार्ग से जा रहा है । नीचे भारत की वसुन्धरा के मनोहर स्थल पदे-पदे दृष्टिगोचर हो रहे है । इस पूरे वर्णन में भारत की जो मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गई है । वह भी हमारे कवि की राष्ट्रीय भावना का ही निदर्शन है ।

मालविकाग्निमित्र

कालिदास के साहित्य का मूल स्वर पलायनवादी बौद्ध जीवन पद्धति के विपरीत है, यह हम पहले ही कह चुके हैं । हम यह भी जानते है कि चाणक्य ने जिस शक्तिशाली राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना की थी, वह बौद्ध पलायनवादी प्रभाव के कारण अशोक के बाद दुर्बल हो गया था । परिणामतः सेनापति पुष्पमित्र ने दुर्बल शासक को समाप्त कर शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिया । उसने एक सशक्त साम्राज्य की फिर से नींव डाली और पलायनवादी बौद्ध विचारधारा पर रोक लगाकर कर्मवादी वैदिक

---

1. रघु0 2.3

विचारधारा का पुनरूत्थान किया । संभवतः कालिदास ने इसी दृष्टि से उस वंश के शासक अग्निमित्र को अपने नाटक का नायक बनाया । इस नाटक का मूल सन्देश इसके भारत वाक्य के एक ही वाक्य में आ जाता है :

आशास्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानां ।
सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरिनाग्निमित्रे ।।[1]

इसका तात्पर्य सीधा--सीधा है राष्ट्र नायक ऐसा हो जिसके नेतृत्व में प्रजा में इति-भीति का आतंक न रहे ।

विक्रमोर्वशीयम् –

कालिदास ने राष्ट्रनायक के विक्रम और पराक्रम का सन्देश तो कदाचित् ही किसी कृति में भुलाया हो । यहाँ तक कि ऋतुसंहार में भी 'घनागम' और 'बसन्त' को एक पराक्रमी राजा और योद्धा के रूप में ही उपमित करता है ।[2]

'विक्रमोर्वशीयम्' में वह जिस पुरूरवा को अपना नायक बनाता है 'विक्रम' उसका अलंकार है । यह विक्रम ही राष्ट्र रक्षा के सामर्थ्य का पहला लक्षण है-- दिष्ट्या महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान् ।[3]

इस नाटक का अन्य महत्त्वपूर्ण सन्देश इसके भरत वाक्य में मिलता है । वह सन्देश है कि

---

1. मालविका० 5.20

2. ऋतुसंहार 2.1 तथा 6.1

3. विक्रम० प्रथम अंक

राष्ट्र के जीवन में श्री और सरस्वती का सदा साथ-साथ विकास होता रहे ।[1]

शाकुन्तल का राष्ट्रीय व्यक्तित्व--

शाकुन्तल में तो कवि जिस राष्ट्रीय व्यक्तित्व को अपना प्रधान नायक बनाता है उसके पुत्र नाम से ही हमारे देश का नाम जुड़ा है । सम्राट दुष्यन्त अखण्ड भारत का चक्रवर्ती नरेश है । 'समुद्रवसना' भारती धरती ही उसकी मान मर्यादा है :

परिग्रहबहुत्वेऽपिद्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ।।[2]

राष्ट्रवादी दृष्टि से कालिदास की कृतियों का अवलोकन यह सिद्ध करता है कि विश्व कवि कालिदास हमारे राष्ट्रीय कवि है । उनकी प्रत्येक कृति में उनका राष्ट्रीय व्यक्तित्व ओतप्रोत है । कवि की अन्तश्चेतना में राष्ट्रीय चरित्र रच पच गया था । उनका यह स्वप्न था कि भारत राष्ट्र सुखी एवं समृद्ध हो । राजन्य वर्ग अपने शासन से भारतीय जन जीवन को सुखी करे । जैसा कि शाकुन्तल में भरत वाक्य में कवि की उक्ति है:-

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।[3]

सारतः हम कह सकते हैं कि हमारा कालिदास सच्चे अर्थों में भारत बसुन्धरा का कवि है । अपनी धरती के प्रति उसका नैसर्गिक प्रेम है । अपनी किसी भी कृति में वह भारतीय लोक जीवन के गीत गाना नहीं भूलता । संभवतः इसी सच्चाई को ध्यान में रखकर कालिदास की कविता के राष्ट्रीय

---

1. विक्रम प्रथम अंक 5.24
2. रघुवंश 1.5
3. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 3.17

व्यक्तित्व पर यह टिप्पणी की गयी है :--

साहित्यकार हो या राजनीतिक अथवा कोई अन्य व्यक्ति, देश की धरती और धरती के लोगों से प्यार उसे उधार खाते में कभी नहीं मिलता । यह तभी सम्भव होता है जब दोनों के बीच साहचर्य की जड़े भावात्मक स्तर पर बड़ी गहरी होती हैं । कालिदास की कविता का राष्ट्र प्रेम इसी गहरे भावात्मक साहचर्य में उपजा है । देश की धरती के प्रत्येक अंचल और उसके लोगों के साथ ऐसे आत्मीयता पूर्ण लगाव की आज के राष्ट्रीय जीवन में बहुत जरूरत है । बिखरा हुआ भारत न कभी महान था न आगे हो सकता है । ऐसा कालिदास की कविता का सन्देश है ।[1]

निष्कर्ष–

* कालिदास भारत का सर्व युगीन राष्ट्र कवि है ।
* उसकी सभी कृतियों में आसेतु आहिमालय भारत दिखायी देता है ।
* रघुवंश की पुष्पक यात्रा, रघु की दिग्विजय यात्रा और मेघ की अलका यात्रा अखण्ड भारत का चित्र प्रदान करती है ।
* कालिदास हमारे राष्ट्रीय साहित्य का प्रेरणा स्रोत है ।

---

1. शिव कुमार भारद्वाज : अखण्ड और महान भारत : कालिदास की कविता से उद्धृत ।

# चतुर्थ अध्याय

## संस्कृत गीति परम्परा

### गीतिकाव्य का स्वरूप–

सामान्यतः काव्य या कविता को विषय प्रधान और विषयी प्रधान नायक दो भागों में बाँटा जाता है तथा विषय प्रधान कविता के जिसका स्त्रोत मनुष्य की कर्मशीलता को मानते है । महाकाव्य और खण्डकाव्य नामक कुछ भेद उपभेद किये जाते है तथा उसमें समस्त देश अथवा जाति का प्रतिबिम्ब अंकित किया जाता है । विषयी प्रधान अथवा भाव प्रधान कविता में व्यक्तिगत अनुभूतियाँ, भावनाओं और आदर्शों की ही प्रधानता रहती है तथा उसका स्त्रोत नायक से उत्कृष्ट मनोवेगों को माना जाता है ।[1]

जीवन के ये मनोवेग जब घनीभूत हो शब्द आदर्श में परिणत होते हैं तब गीति काव्य का जन्म होता है । गीतिकाव्य इन अव्यक्त मनोवेगों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है । वह रसाप्लावित हुई कवि के आत्मा को कण्ठ दे देता है । यही उसकी वृत्ति है, इसी में उसकी कलात्मकता है, और यही उसकी उपयोगिता है ।

गीत या गीति का अर्थ केवल गाना ही न समझना चाहिए । पाश्चात्य आलोचक अर्नेस्ट राइस के अनुसार वास्तविक गीत वही है जो भाव का, भावात्मक विचारों का भाषा में स्वाभाविक विस्फोट हो । महादेवी वर्मा के शब्दों में सुख दुख की भाषा वेशमयी अवस्था का विशेष गिने–चुने शब्दों में स्वर साधना के द्वारा उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है ।[2]

---

1. डॉ0 राज किशोर सिंह, : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 104
2. डॉ0 जयकिशन खण्डेलवाल, संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ0 104

भारतीय साहित्य में प्रारम्भ काल से ही गीत या गीति तत्व को महत्ता दी जाती रही है । संगीत में भी गीत को महत्व दिया जाता रहा है । संगीत रत्नाकर के अनुसार गीत, वाद्य और नृत्य तीनों मिलकर संगीत कहलाते है :

'गीत वाद्य तथा नृत्य त्रयं संगीत मुच्यते ।[1]

नाटकों में गीत के नाम पर भावमयी छन्दोबद्ध रचनाओं का सन्निवेश हुआ । छन्दशास्त्र में गीत एक विशेष वृन्त का नाम भी है । नाट्यशास्त्र में गीति एक विशेष गान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य में गीति शब्द का प्रयोग बहुत ही प्राचीन काल से हो रहा है । यह भी बहुत ही स्पष्ट है कि उसी काव्य रचना को गीत कहा गया है जिसे वाद्य और नृत्य की संगति से संगीत में ढाला जा सकता है । आधुनिक काल में जिसे गीति काव्य कहते हैं । उसमें व्यक्तिपरक, गये एवं स्वतः स्फुरित सहज अनुभूत्यात्मक रचनाएं आती है । ऐसी कुछ रचनाएं तो हमें ऋग्वेद से ही मिलने लगती है किन्तु प्राचीन भारतीय गीति साहित्य में रस निर्भरता प्रमुख तत्व है । स्त्रोत साहित्य में आत्म निवेदन की गम्भीर एवं तीव्र अनुभूति की कमी नहीं है ।[2]

संस्कृत के आचार्यों में गीत शब्द का प्रयोग किया था । भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में इसका प्रयोग मिलता है । अमर कोश में इसकी परिभाषा की गयी कि गीतं गान मिये समें । रस्किन ने गीति काव्य की परिभाषा देते हुये कहा है कि गीति काव्य कवि की निजी भावनाओं का प्रकाश होता है । सहज शुद्ध भाव, स्वच्छन्द, कल्पना, तर्कवाद और न्याय मूलकता से मुक्त विचार में ही गीति काव्य की वास्तविक विशेषताएं है ।[3]

---

1. दामोदर पंडित : संगीत दर्पण, 3
2. जय किशन खण्डेलवाल : संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ0 109
3. उद्धृत, रमेश चन्द्र लवानिया : साहित्य विविधा पृ0 33

गीत तथा लीरिक :

आधुनिक भारतीय भाषाओं में जहाँ तक गीत रचनाओं का सम्बन्ध है, लोगों में एक सामान्य धारणा यह बन गयी है कि गीत रचनाएं अँगरेजी साहित्य की 'लीरिक' रचनाओं के प्रभाव से जन्मी है । उदाहरण के लिए हिन्दी के उद्‌बोधन गीतों, सम्बोधन गीतों तथा आत्म निवेदन परक गीतों को अँग्रेजी लीरिक साहित्य की देन समझा जाता है । हम समझते हैं कि अँगरेजी साहित्य का हमारे साहित्य पर प्रभाव तो स्वाभाविक रूप से कुछ न कुछ पड़ना ही था । परन्तु जहाँ तक हिन्दी बंगला भाषा के गीतो का प्रश्न है उनके पास पहले से ही संस्कृत और प्राकृत तथा अपभ्रंश के गीतों की एक लम्बी और समृद्ध परम्परा उपलब्ध रही है । फिर भी इतना तो माना ही जा सकता है कि गीत तो सभी भाषाओं के पास किसी न किसी रूप में होता ही, भले ही वह लोक गीत ही क्यों न हो, परन्तु गीत के बारे में बहुत सी ऐसी भावधाराएं और शैलियाँ हो सकती हैं जो निश्चित आज के युगबोध और परिस्थितियों की ही देन कही जा सकती हैं । उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि आज के संस्कृत गीतों में गजल का प्रचलन आ गया है । यह साफ तौर पर उर्दू गजल का प्रभाव है । इस प्रभाव का सबसे बड़ा कारण गजल की गेयता, अपील और मन को छू लेने वाली भाव प्रवणता है । इसने उसे लोकप्रिय बनाया है । गीत की ऐसी लोकप्रियता का प्रभाव संस्कृत गीतकारों पर पड़ना स्वाभाविक ही है । ऐसा ही अँगरेजी लीरिक का माना जा सकता है । वैसे हम यह नहीं भुला सकते कि अँगरेजी कवि शैले की स्काइलार्क को सम्बोधन जैसी गीतिकाएं हम कालिदास के विक्रमोवंशीय में देख सकते हैं, कालिदास का मेघ काव्य भी पूरे का पूरा मेघ को सम्बोधित ही है और पूरी तरह से आत्मानुभूति और आत्माभिव्यक्ति का गीत है । इतना अवश्य है यह अँगरेजी लीरिक की तरह कुछ ही क्षणों में गा दिया जाने वाला गीत अवश्य नहीं है ।

अँगरेजी का लीरिक जिसे आज गीत का पर्याय माना जाता है, उसकी उत्पत्ति गीत के साथ 'लायर' वाद्य की संगति के कारण बतायी जाती है । इसका तात्पर्यार्थ केवल यह निकलता है कि वे कविता

रचनाएं जिन्हें सरलता के साथ वाद्य का सहयोग दिया जा सकता है वह लीरिक अथवा गीत कहलाने की अधिकारी हो जाती है । यह एक प्रकार से कविता का संगीत से मैत्री बना लेना है ।

गेयता गीत का प्रथम तत्त्व है । यह गेयता स्वयं ही वाद्य मैत्री का आमन्त्रण करने लगती है । हम यह देखते हैं कि जब भी कोई व्यक्ति गीत गाता है तो वह स्वयं और उसके श्रोता तक तबला आदि वाद्य की ध्वनियाँ पैदा करने लगते हैं और कभी कभी उस गीत की लय को अव्यक्त रूप में गुनगुनाने लगते हैं । वह गीत के साथ लय की यह गुनगुनाहट वास्तव में तन्त्री वाद्य की पूर्ति करती है । इसलिए यदि अँगरेजी का लीरिक 'लायर' की संगति चाहता है तो हमारी संस्कृत और हिन्दी भाषा का गीत भी वीणा जैसे तन्त्री वाद्य की संगति चाहता है । गीत की भाषा सरस होती है, वह सच्चे अर्थ में सरस्वती होती है । सरस्वती के लिए वीणा एक अपरिहार्य संगति वाद्य है, इसे हमारे कवि और गीतकार बहुत पहले से जानते हैं । गीत का यही मर्म है जो गीतकार निराला से गीत के नए से नए स्वर के लिए 'वीणावादिनी' का गान कराता है : वर दे, वीणावादिनि, वर दे ।

अच्छा छन्द और अच्छा गीत तो वही कहा जा सकता है जिसकी लय में ही तन्त्री बज उठे । छन्द और गीत की यह विशेषता हम आदि कवि वाल्मीकि की वाणी में ही देख सकते हैं । तमसा तट पर प्यार में डूबे क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से बहेलिए के तीर से नर का वध देख करूणा में डूबे आदि कवि के मुख से अनायास यह छन्द निकला पड़ा ।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।[1]

---

1. वा०रा० 1.2.15

इस छन्द का निकलना था कि छन्द का गायक कवि स्वयं चौंक पडा । वह अपने शिष्य को बताने लगा, प्रियवर ! मेरे शोकार्त्त हृदय से जो कुछ यह निकल पड़ा है, यह तो छन्द या गीत से भिन्न कुछ हो ही नहीं सकता । यह चार चरणों में बंधा है, चारों चरणों के अक्षर समान है अर्थात् उनका वजन एक जैसा है, इसे वीणा की लय पर गाया भी जा सकता है :

पारबद्धोऽक्षरसम स्तन्त्रीलयसमन्वितः ।
शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो में श्लोको भवतु नान्यथा ।।[1]

हमेंयह सोचना पड़ता है कि तमसातट के इस छन्द में 'तन्त्रीलयसमान्वित' की बात कैसे आ गयी । वहाँ तो कोई वीणा है नहीं ? इसका सरल सा आशय यही है कि जिस छन्द ने रचनाकार की गुनगुनाहट में वीणा की लय पा ली, तो समझ लेना चाहिए कि उसे वीणा की संगति मिल गयी । 'लायर' हो या वीणा सभी वाद्य हैं तो गायक की गुनगुनाहट का अनुनाद ही । असली बात तो लय और गूँज की है । वह है तो फिर छन्द गीत हो जाता है ।

मधुर कण्ठतन्त्री और वीणा की तन्त्री दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । दोनों की संगति से गीत और मनमोहक गीत लगने लगता है । वह संगीत हो जाता है । परन्तु गीत की रचना के क्षण में ही उसे तन्त्री वाद्य की बाह्य संगति नहीं मिलती है । गीत की उत्पत्ति के समय तो रचनाकार के हृदय की तन्त्री ही संगति करती है । उसकी गूँज लेकर ही गीत गेय हो पाता है । गीत के बारे में कालिदास की दृष्टि कुछ इसी रूप में मिलती है :

---

1. वा0 रा0 1.2.18

स्च्न्दनाम्बुन्यजनोद्भवानिलैः सहारयाष्ट स्तनमण्डलार्पणैः ।

सवल्लकीकाकलिगीतनिस्वनै विबोध्यते सुप्त इवाद्य मन्मथः ।।

वीणा की संगति पाए मधुर कण्ठतन्त्री के स्वर हृदय में सुप्त पड़े प्रेम को जगा देते हैं ।[1]

गीत की कथ्यगत विशेषताएं:

गेयता और तन्त्री की संगति तो गीत की मौलिक प्रकृति है । इससे भिन्न भी गीत की कुछ अन्य विशेषताएं होती हैं जो उसे कविता के दूसरे रूपों से विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती हैं । वे विशेषताएं कुछ इन रूपों में मिलती हैं ।

वैयक्तिकता की निश्छल अभिव्यक्ति :-

गीत रचनाकार की किसी मार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति होता है । गीत में रचनाकार किसी और के सुख-दुःख नहीं गता वह अपने ही वैयक्तिक सुख और दुख की साधारणीकृत अभिव्यञ्जना करता है । कविता के दूसरे रूपों में यह बात इस रूप में नहीं होती ।[2]

वस्तु प्रधान कविता में कवि की वैयक्तिकता बहुत कुछ छिपी रहती है । वह किसी विशेष क्षण में ही अपना कुछ कह पाती है । गीत में रचनाकार की वैयक्तिकता पूरी तरह मुक्त रहती है । वह यदि कहीं अपने गीत में अपनी भावनाएं दूसरे काल्पनिक पात्रों के मुँह में डाल कर प्रकट करता है तो भी वह

---

1. ऋतु0 1.8
2. विमला गुप्ता : आधुनिक हिन्दी प्रगीत, पृ0 29

होती उसकी वैयक्तिक भावना ही है । कालिदास का ऋतुसंहार और मेघदूत दोनों ही इसके अच्छे उदाहरण हैं । पहले गीतिकाव्य में तो कोई किसी प्रकार का पर्दा है ही नहीं । वहाँ रचनाकार और उसकी प्रेयसी के अलावा किसी पात्र का चर्चा ही नहीं है । इसलिए आत्मानुभूति और वैयक्तिक भावनाओं को किसी अन्य के माध्यम से कहने की आत ही नहीं है । ऐसी गीत रचनाएं कवि की वैयक्तिकता को निश्छल रूप में प्रकट करती हैं । ऐसे गीतों से रचनाकार के व्यक्तित्व और उसके मनोविज्ञान की सबसे अधिक ईमानदार तस्वीर उसके पाठकों को मिल जाती है । कालिदास का पाठक अच्छी तरह पहचान सकता है कि जो कालिदास ऋतुसंहार का है वही कालिदास उसकी सभी रचनाओं में जहाँ कहीं मिलता है, वहीं मौलिक है और सब तो आवरण होता है । मौलिक कालिदास प्यार का गायक है । उसका यह रूप उसके महाकाव्यों और नाटकों में जहाँ है वह उसका असली रूप है । कालिदास का सारा सौन्दर्य–बोध और उसकी काव्यकला का यह मौलिक रूप ही प्राणतत्त्व है । दूसरी ओर उसका मेघदूत है । इस गीतिकाव्य में हम देखते हैं कि कवि ने अपनी विरहानुभूतियों और प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुभूतियों को यक्ष के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है । परन्तु यह तो किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसे कल्पना लोक के पात्र का क्या अस्तित्व हो सकता है । कान्ताविरही वह 'कश्चित् यक्ष' कौन हो सकता है ? गीतकार के अलावा कोई नहीं । यह गीत रचना की शैली ऋतुसंहार से भिन्न है । यहाँ गीतों में रचनाकार प्रिया को सीधे नहीं बोल रहा है । किन्तु 'कामार्न' का गीत चाहे जो माध्यम चुन ले, होता वह उसका वैयक्तिक ही है ।

## रागतत्त्व

वैसे तो कविता ही मनुष्य की रागात्मक वृत्ति से पैदा होती है । परन्तु गीत के साथ यह रागात्मकता कुछ अधिक लागू होती है । रचनाकार जब तक किसी वस्तु, व्यक्ति

या प्राकृतिक परिदृश्य के बारे में पूरी तरह भावलीन नहीं हो जाता, गीत कभी पैदा नहीं होता 'कवि में व्यक्तिगत प्रत्यक्षानुभूति से जिन भावों की स्फुरणा होती है उन्हें ही जब वह बिना किसी आवरण के ज्यों का ज्यों व्यन्क्त कर देता है, तभी गीत का सृजन होता है । इस तरह की गीत रचना में अनेक बार श्लील और अश्लील भी कुछ नहीं रह पाता । कालिदास के गीतों रागात्मकता का यह रूप अच्छी तरह देखा जा सकता है ।

कल्पना का लालित्य:

गीत रचनाकार के मनोजगत् की अभिव्यक्ति होता है । वह जो कुछ अपनी अनुभूतियों में पाता है उसे वैसी ही तीव्र अभिव्यक्ति देने के लिए वह बाहर के उपकरण पकड़ता है । यह उपकरण अगर सहज नहीं मिल पाते तो वह कल्पना से लाता है । इस प्रकार गीत कविता के अन्य रूपों से अधिक रोमांटिक हो जाता है ।

संगीतात्मकता:

वैसे तो गेयता ही वह गुण है जिससे पद्य और गद्य का भेद होता है । परन्तु प्रत्येक पद्य को कोरी गेयता के आधार पर गीत नहीं कहा जा सकता । यह वास्तव में गीत की स्वर लहरी है जो उसे गीत बनाती है । इस स्वर लहरी का शास्त्रों में कटे स्वरों में बंधा होना जरूरी नहीं है, परन्तु उसके लय का होना जरूरी है । हम देखते हैं लोकगीतों में शास्त्रोन्क्त स्वर विधान नहीं होते परन्तु उनकी संगीतात्मकता बड़ी मोहक होती है । यही बात साहित्यिक गीत की है । शास्त्रीय स्वरों का समायोजन गीतकार का काम नहीं है, यह काम संगीतकार का है । संगीत को गीत के साथ अनुकूलन करना होता है ।[1]

---

1. विमला गुप्ता : हिन्दी प्रगीत, पृ0 32--33

## गीत की शिल्पगत विशेषताएं

वैसे देखा जाए तो गीत कविता का ही एक रूप है । परन्तु कविता होने के साथ–साथ गीत सर्वसाधारण कविता से बहुत भिन्न है । गीत की यह विशिष्टता कथ्य की दृष्टि से क्या होती है, इसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं । अब देखना यह है कि साधारण कविता और प्रबन्ध कविता से अलग गीत की शिल्पगत विशेषताएं क्या होती हैं ।

## इतिवृत्त का अभाव

प्रबन्ध कविता अथवा उसी प्रकार की किसी लम्बी कविता में कोई न कोई इतिवृत्त बना रहता है । ऐसी काव्य रचनाएं वर्ण्य वस्तु की प्रधानता रखती है । वहाँ कवितात्मक कथा चलती रहती है । स्पष्टतः ऐसी काव्य रचना में कवि की आत्मानुभूतियों का अवसर बहुत ही कम रहता है ।

गीत अथवा गीतिका में वर्ण्य कथा अथवा इतिवृत्त प्रायः नहीं होता । वह रचनाकार का क्षणविशेष का भावावेश होता है । गीत का कथ्य रचनाकार की अपने मन की दुनिया होती है । वह केवल अपनी अनुभूतियों के गीत गाता है ।

## ऐन्द्रियिकताः

गीत के शिल्प का एक अन्य वैशिष्ट्य उसके अन्दर ऐन्द्रियक उत्तेजनाओं का समावेश होना है । गीत रचना में अतीन्द्रिय संसार की बात नहीं की जाती । रचनाकार जो भोगता है और जो भोगना चाहता है, गीत में उसकी बात करता है वह गीत के अन्दर वह संसार देखना चाहता है जो उसके भाव जगत में भोगा जा रहा है ।

गीत के अन्दर ऐन्द्रियिकता लाने के लिए रचनाकार अपनी रोमांटिक कल्पना से वैसे ही भौतिक उपादानों का चयन करता है जो इन्द्रियों की संवेदनाओं को तृप्त करते हैं । प्राकृतिक परिदृश्य तथा बाहरी जीवन की प्रेम लीलाएं, गीत–संगीत, मधुपान, साज श्रृंगार यही सब गीत की ऐन्द्रियिकता का बढ़ाते है । गीत के शिल्प में इस प्रकार के उपादानों का बड़ा प्रभाव पड़ता है ।

**बिम्बविधान--**

गीत शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष उसका बिम्बविधान है । जैसा कि हमने अभी ऊपर कहा है कि गीत रचना के शिल्प में ऐन्द्रियिक उपादानों का बड़ा महत्त्व है । यह उपादान गीत रचना रचनाकार के बिम्ब कौशल से ही आते हैं । वह एक चित्रकार की तरह अपनी भाषा के जादू से ऐसे ऐसे प्रभावी बिम्ब उभारता है कि पाठकों की इन्द्रिय संवेदनाएं उनके सौन्दर्य में सराबोर हो जाती हैं । गीत के बिम्ब सौन्दर्य से वह सब कुछ पाठक वर्ग की अनुभूतियों में आने लगता है जो गीतकार की अनुभूतियों में छाया हुआ है ।

**प्रवाही भाषा:–**

गीत का वेग प्रबन्ध रचनाओं से बहुत ही अधिक तीव्र होता है । यहाँ वेग के अवरोध को सहन नहीं किया जा सकता । इसलिए गीत में मन्दन लाने वाली भाषा नहीं चल सकती । गीत रचना में टेढ़े–मेडे जटिल शब्दों का प्रयोग नहीं चल सकता है । यह समासों की बोझिलता. संयुक्त व्यञ्जनों की टकराहट और कठोर मूर्धन्य ध्वनियों का स्वागत नहीं किया जा सकता है ।

गीत एक सोम्य और कोमल प्रकृति की रचना होती है । अत: उसकी भाषा में

कोमल कान्त पदावलि ही अच्छा प्रभाव दे पाती है । ओष्ठ्य और दन्त्य ध्वनियाँ, अनुनासिक वर्णों की गूँज गीत की भाषा को प्रभावी बनाते हैं । गीत की भाषा के शिल्प पर विचार करते हुए एक गीत समीक्षक का विचार है कि प्रगति काव्य श्रव्य काव्य है किन्तु यदि प्रगीतों को सुनने वाले श्रोता भाषा के क्लिष्टत्व दोष के कारण भाषा को ही समझने में लगे रह गए तो वे प्रगीतों के भाव को भला क्या समझेंगे ? अतः भावों के साथ ही भाषा का सारल्य और प्रवाहमयी शैली का तारल्य प्रगीत काव्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । [1]

प्रभावी छन्द का चयन

गीत रचना में छन्द चयन का बड़ा महत्त्व है । हमारे संस्कृत के पिंगल शास्त्र में प्रतिपादित छन्द रचनाएं कविता के भावावेगों के अनुरूप ही विकसित हुई हैं । बहुत से छन्द अपने विन्यास और गान की शैली में अत्यन्त सरल होते हैं, ऐसे छन्द गीत रचना के लिए वरणीय होते हैं । कुछ छन्द बड़े और जटिल होते हैं । उनकी ध्वनियों में भी संघर्षण होता है । ऐसे छन्द गीत के अनुकुल नहीं होते । संस्कृत के शास्त्रीय छन्दों में उपजाति, वंशस्थ वसन्ततिलका, मालिनी जैसे कोमल और प्रवाही छन्द प्रेम गीतों के अनुकूल होते हैं । शार्दूलविक्रीडित जैसे छन्द अनुकूल नहीं कहे जा सकते । बिरहगीतों के लिए मन्दाक्रान्ता बहुत अच्छा छन्द होता है ।

गीत की विविध भावप्रवृन्तियों के कारण एक–दो प्रकार के शास्त्रीय छन्द पर्याप्त नहीं होते अतः आज कल गीत का छन्द मुक्त होकर गीतकार की अपनी लय के रूप में ही स्वीकार्य हो गया है ।

---

1. विमला गुप्ता : आधुनिक हिन्दी प्रगीत, पृ0 31

## संस्कृत गीति परम्परा

संस्कृत भाषा का साहित्य हमारे देश का प्राचीनतम साहित्य है । उपलब्ध साहित्य में इसका आरंभिक सोपान ऋग्वेद माना जाता है । वैसे तो ऋग्वेद यज्ञ, दर्शन और इतिहास आदि विद्याओं के भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व मिलते हैं परन्तु उसका सबसे प्रधान जो रूप है वह प्रकृति के विविध रूपों की छटाओं की सुन्दरता का गान करना ही है । प्रकृति के सुन्दर रूपों को ऋग्वेद में देवता नाम दिया गया है । अग्नि, सूर्य, चन्द्र, समुद्र, नदियाँ, पर्वत, विद्युत, द्यु, पृथिवी, उषा आदि सभी प्राकृतिक शक्तियाँ ऋग्वेद के काव्य में देवता है । इन देवताओं का ऋग्वेद में मानवीकरण हुआ है । प्रवृत्ति सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि को प्रकृति के निर्जीव चित्रों के रूप में ग्रहण नहीं किया है । उन्होंने इनके अन्दर मनुष्य जीवन की तरह ही एक सजीवता और चेतनता का अनुभव किया है । उनके आकार–प्रकार और क्रियाकलापों में मानवजीवन जैसे आकार–प्रकार, हावभाव और क्रियाव्यापार वर्णित किए हैं । प्रकृति के यह सभी रूप विस्तार में मनुष्य से बहुत बढ़े चढ़े है और उसके नियन्त्रण से बाहर है; वे सर्वत्र हैं और उनकी प्रसन्नता में मनुष्य का भला और उग्रता में मनुष्य की क्षति निर्भर करती है, अतः हमारे ऋषियों ने उन्हें देवता कहा है । इस प्रकार ऋग्वेद का जो काव्य सामान्यतः देवकाव्य समझा जाता है, वह वास्तव में प्रकृति का काव्य ही है । प्रकृति की देवशक्तियों का गान होने से ऋग्वेद की ऋचाओं को स्तुति या स्तोत्र कहते हैं जो कविता की दृष्टि से प्रकृति के गीत ही हैं ।

यहाँ एक विशेष बात यह ध्यान देने योग्य है कि वैदिक युग में ही हमारे यहाँ गद्य पद्य और गीत का भेद स्पष्ट हो चुका था । सामान्य रूप से भाषा की रचना के दो

मुख्य रूप समझे गए पद्य और गद्य । पद्य के भी दो भेद हो गए थे कविता और गीति । गद्य रचना में काव्य में वर्णों अथवा मात्राओं की संख्या का संतुलन आवश्यक नहीं था । कविता रचना में यह आवश्यक था । कविता की ऐसी बन्दिश या बन्ध के कारण ही उसे छन्द नाम दिया गया । (रीतिवि.) छन्द में संतुलन के कारण एक प्रकार की रहक अथवा गेयता आ जाती थी । ऋग्वेद की ऋचाओं में ऐसा मिलता है । कुछ ऋचाओं में तो लोकगीतों जैसी टेक भी मिलती है । उदाहरण के लिए मेधातिथि के लिए आमन्त्रण देने वाली ऋचाओं को लिया जा सकता है ।

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे मरुद्‌भिरिन्द्र आ गहि ।

इस् मन्त्र गीत का तीसरा आगे के सभी मन्त्रों में टेक की तरह आता है जो पूरे सूक्त को एक गीत की लय दे देता है ।[1]

ऐसी ही टेक हम इन्द्र का आह्वान करने वाली स्वराज्य ऋचाओं में पाते है और वैसी ही टेक हम हिरण्यस्तूप के सोम गीत में पाते हैं । इस सोमगीत में 'अथा नो वस्यस्कृधि' टेक पूरे सूक्त में चलती है-- सोम ! हमारा यश बढ़ाओ ।[2]

टेक की यही पद्धति हमें हिरण्यगर्भ की ऋचाओं में मिलती है । वहाँ प्रत्येक ऋचा का अन्तिम चरण 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' के रूप में ही मिलता है ।[3]

---

1. ऋक्0 मं0 1.19.1

2. वही. 9.4

3. वही. 10.121

गान की इस प्रकार की प्रवृत्ति जहाँ–तहाँ मिलने पर ऋग्वेद की ऋचाएं तब तक छन्द या कविता ही अधिक रही जब तक संगीतज्ञ ऋषियों ने उन्हें मधुर गायन के स्वरों में नहीं ढाला । जब वे ऋचाएं संगीत के स्वरों में बाँध ली गयी तो उन्हें 'साम'– यह नया नाम दिया गया । साम 'गीति' का ही नाम है– गीतिषु साम आख्या । साम का आविर्भाव छन्द में गीत तत्त्व का अधिक समावेश कर देता है । गीत की इस अवस्था में तन्त्रीवाद्य और मृदंगवादन का सहयोग भी लिया जा सकता है । तब गीत ही संगीत हो जाता है । अधिक समावेश कर देता है । गीत की इस अवस्था में गायन के साथ तन्त्रीवाद्य और मृदंगवादन का सहयोग भी लिया जा सकता । तब गीत ही संगीत हो जाता है ।

वैदिक युग के बाद जब हम रामायण महाभारत और पुराणों के युग में आते हैं तो हम वैदिक छन्दों की मुक्तक और लघु कविता के स्थान पर प्रबन्ध काव्य और बड़ी रचनाएं पाते हैं । प्रश्न उठता है कि यह प्रबन्ध कविता गीत है अथवा नहीं । इसका एक उत्तर तो यह है कि वह भी गेय है अतः गीत है । रामायण में वाल्मीकि के प्रथम छन्द की प्रशंसा में उसे तन्त्रीलय समन्वित कहा गया है ।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रबन्ध काव्य की कतिवा को भी वीणा आदि तन्त्रीवाद्य के साथ संगीतात्मकता दी जा सकती थी ।

महाभारत काव्य मुख्यतः युद्ध काव्य है । परन्तु छन्दों में बंधी कविता होने के कारण उसे भी गाया जा सकता है । पुराण रचनाएं भी काव्य तो हैं ही, उनमें कुछ कविताएं तो बहुत सुन्दर गीत भी कहे जा सकते हैं । पुराणों में भारत भूमि के सुन्दर गीत मिलते हैं ।

भागवत पुराण में रास पञ्चाध्यायी के गीत मिलते हैं । यह गीत कृष्ण–गोपी प्रेम लीला के गीत हैं । यह इतने भावात्मक हैं कि इन्हें पढ़ते हुए भागवतपुराण की प्रबन्धकथा भी भुला दी जाती है । यह बात भी इन गीतों के बारे में ध्यान देने की है कि इन गीतों की लोकप्रियता कृष्ण और गोपियों के प्रेमगीतों का आगे जाकर संस्कृत ही नहीं अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में नए रूप में विकास हुआ । कृष्ण प्रेम के इन गीतों का एक प्रकार से सम्प्रदाय ही चल पड़ा । इस सम्प्रदाय के गीतों में भक्ति और श्रृंगार का मिश्रित रूप मिलता है । संस्कृत में जयदेव का गीत गोविन्द और चिरविल्वाचार्य का कृष्णकर्णामृतम् इसी प्रकार की कृष्ण–प्रेम की रचनाएं हैं ।

रामायण, महाभारत और पुराण जैसे महा प्रबन्ध काव्यों से आख्यान ले लेकर जो महाकाव्य रचनाएं अश्वघोष और कालिदास से आरंभ होती हैं उनमें भी कविता के अन्दर गीत तन्त्व का पर्याप्त समावेश मिलता है । इन महाकाव्यों में मुख्यतः गीत की प्रवृन्ति विरह के प्रसंगों तथा ऋतुवर्णनों में मिलती है । ऐसे प्रसंगों में कथावस्तु का भार बहुत हल्का हो जाता है और कवि मुक्त होकर अपनी सौन्दर्य अनुभूतियों को अच्छे गीतों में ढालने में सफल हो जाता है । कालिदास के कुमारसंभव में वसन्तगीत और शिवपार्वती प्रेम के गीत अच्छे गीत माने जा सकते हैं । रति विलाप के गीत शोकगीत कहे जा सकते हैं । ऐसे ही अश्वघोष के बुद्धचरित में यशोधरा के विरहगीत तथा सौन्दरानन्द में सुन्दरी के विरहगीत अच्छे विप्रलम्भ गीत माने जा सकते हैं ।

प्रबन्ध काव्य में हमने कविता और गीत के बीच कुछ अन्तर करने का जो ऊपर प्रयास किया है उसका आधार केवल यह है कि कविता तो कथावस्तु की वर्णना को प्रमुखता देकर भी कविता बनी रह सकती है परन्तु गीत अधिक मुक्तता चाहता है । सीधे शब्दों में कहें तो कहना होगा कि गीत कवि की भावुकताओं के कुछ क्षणों को गाता है और कविता लम्बे समय तक चलने वाली कथा की वर्णना करती है । वैसे कविता और गीत साहित्य मार्ग के एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

प्रबन्ध काव्यों की रचना में संस्कृत के कुछ कवियों ने गीत की स्वच्छन्दता पर पड़ने वाले कथावस्तु के दबाबों को पहचान लिया था । इसीलिए आगे चलकर ऐसे गीतिकाव्यों की रचनाएं की गयी जिनमें कथावस्तु नाम की सामान्यता कोई चीज़ नहीं मानी जा सकती । उन्हें केवल कवि मन की भावुकताओं का संगीत ही कहा जा सकता है । इन गीतिकाव्यों में कवि अपनी भावुकताओं किन्हीं प्रेमी पउत्रों में डालकर अपने गीत गुनगुनाने लगता है । यह वास्तव में प्रेमवासनाओं के गीतों में आत्मगोपन से अधिक कुछ नहीं लगता ।

कभी कभी गीतिकाव्य का लेखक स्वयं प्रेमी के रूप में बोलता है और उसके गीतों का संबोधन सीधे-सीधे अपनी प्रिया को होता है ।

संयोग की बात है कि कालिदास अपने गीतिकाव्यों में दोनों रीतियों का प्रयोग किया है । मेघदूत में कवि के विरहभाव और प्रेम की उन्तेजनाएं विरही यक्ष और यक्षिणी

के माध्यम से मुखरित हुई हैं और ऋतुसंहार में सीधे प्रेमिका को संबोधित हैं । कालिदास के इन दोनों गीतिकाव्यों ने संस्कृत साहित्य में ही नहीं भारत की अन्य आधुनिक भाषाओं में भी सन्देश काव्य और ऋतु गीत काव्यों की परम्परा का प्रवर्तन किया । संस्कृत में धोमी कवि का 'पवनदूत' मेघदूत की शैली से गाया गया गीति काव्य है । हिन्दी में हरिऔध के 'प्रियप्रवास', में राधा का सन्देश भी 'पवन दूत' जैसा ही है । 1000ई0 के पश्चात् संस्कृत का उत्कर्ष बहुत कम हो गया परन्तु फिर भी कुछ न कुछ संस्कृत काव्य रचनाएं चलती ही रही । संस्कृत का गीतिकाव्य इधर कुछ भक्ति काव्य अधिक हो गया पाँच–छः सौ वर्षो से अधिक फैले इस युग में यों तो बहुत–बहुत अच्छी गीति रचनाएं हुई किन्तु मुख्य स्वर भक्ति का ही रहा । संस्कृत के लहरी काव्य अच्छी गीति रचनाएं हैं । आचार्य शंकर की आनन्द लहरी और श्रीलहरी तथा पण्डितराज जगन्नाथ की गंगालहरी सरस गीति रचनाएं हैं ।

आधुनिक युग में संस्कृत का गीति काव्य दूसरे आधुनिक साहित्यों के प्रभाव से बहुत कुछ नव प्रयोगवादी हो गया है । संस्कृत के आधुनिक गीतकारों ने परम्परागत छन्दों के बन्धन तोड़ डाले हैं, लोक गीतों से लय और धुनें पकड़ी हैं, हिन्दी–उर्दू जैसी भाषाओं के नए गीति छन्द अपना लिये हैं यहाँ तक कि छन्दमुक्त होकर आत्मगत लय से ही गीत रचनाएं आरम्भ कर दी हैं । इन गीतकारों में अभिराज राजेन्द्र मिश्र जगन्नाथ पाठक, रमाकान्त शुक्ल, श्रीनिवास रथ, राधाबल्लभ त्रिपाठी, व्योमशेखर जैसे अनेक गीतकार हैं ।

इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से हमने यह उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है कि संस्कृत गीतिकाव्य की यात्रा बहुत पुरानी है । वह ऋग्वेद की ऋचाओं से आरम्भ होकर आज के नए गीतों तक पहुँची है । इस लम्बी यात्रा में उसके कथ्य और शिल्प में भी लगातार परिवर्तन आते रहे है ।

कथ्य की दृष्टि से विचार करने पर संस्कृत की गीति रचनाओं के प्रायः निम्न प्रकार के मिलते हैं :

1. देवस्तुति गीतिकाएं
2. प्राकृतिक सुषमा की गीतिकाएं
3. ऋतु सौन्दर्य की गीतिकाएं
4. मिलन गीतिकाए
5. विरह गीतिकाएं
6. क्षणिकाएं और मुक्तक गीतिकाएं
7. लहरी गीत रचनाएं
8. प्रयोगवादी आधुनिक गीत रचनाएं

संस्कृत के समृद्ध और मनोरम गीतिकाव्य के बारे में यह बात तो निर्विवाद ही है कि उसने आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए एक ऐसा प्रेरणादायी प्रभाव छोड़ा है जो आधुनिक भाषाओं के गीतिकाव्यों पर भी देखा जा सकता है । कालिदास के मेघदूत और जय शंकर प्रसाद के आँसू एक ही गीति परम्परा की कड़िया है ।

सम्प्रति हम संस्कृत गीतिकाव्य की उपर्युक्त धाराओं का संक्षिप्त सा सर्वेक्षण कर लेना आवश्यक समझते हैं ताकि हम कालिदास के गीतिकाव्यों की विशिष्ट प्रकृति को समझ सकें ।

देवस्तुति गीतिकाव्य:

इस कोटि के संस्कृत गीति काव्य का आरम्भ ऋग्वेद की मन्त्र रचनाओं से ही आरम्भ हो गया था । इन स्तुतिगीतों की विशेषता यह है कि इनके स्तुत्य या वर्ण्य देवता प्रकृति की अग्नि, सूर्य, इन्द्र, सोम, वरूण और पर्जन्य आदि शक्तियाँ हैं । इस प्रकार से यह देवगीतियाँ अंशत: प्रकृति के ही गीत हैं ।

आगे जाकर संस्कृत का स्तुति गीतिकाव्य मानव और मानवी के रूप में अवतरित देवशक्तियों का गीतिकाव्य हो जाता है । इस तरह का गीतिकाव्य विकीर्ण रूप से हमें रामायण, महाभारत और पुराणों में मिलना आरम्भ हो जाता है । इस तरह के गीतों में हम भागवत पुराण के वेणुगीतों को अच्छी तरह जानते है ।

श्रीमद् भागवत का वेणुगीत एक उत्कृष्ट गीतिकाव्य माना जाता है । भागवत के दशम स्कन्ध का 21 वाँ अध्याय वेणुगीत कहलाता है । उसमें कुल बीस श्लोक है पर एक उत्कृष्ट गीतिकाव्य का सृजन इन श्लोकों में हुआ है । क्या भाव, क्या कला, क्या अलंकार, क्या रस सृष्टि सभी दृष्टि से बेजोड़ है । गोपिकायें आपस में कहती है-- हे सखि जब सायंकाल होता है गाये बृज में आने लगती है, उनके पीछे--पीछे ग्वाल--बालों के साथ बाँसुरी बजाते हुए जब वे श्री कृष्ण बलराम के साथ वृन्दावन में प्रवेश करते है तब उनकी प्रेम भरी चितवन का जो रस लेता है उसी का जीवन सफल है, उसी की आँखे धन्य

है । हमने तो आँख वालों के जीवन की ओर उनकी आँखों की बस इतनी ही सफलता समझी है ।[1]

आगे गोपिकायें कहती है-- "अरी सखी सखि, जब प्राण वल्लभ श्रीकृष्ण विचित्र वेष धारण करके बाँसुरी बजाते है, तब मूढ़ बुद्धी वाली ये हरिनियाँ भी वंशी की पान सुनकर अपने पति कृष्ण सार मृगों के साथ नन्दनन्दन के पास चली आती है, अपनी प्रेम भरी बड़ी बड़ी आँखों से निरखने लगती है । निरखती क्या हैं अपनी कमल के समान बड़ी-बड़ी आँखे श्रीकृष्ण के चरणों पर निछावर कर देती है और श्रीकृष्ण की प्रेम भरी चितवन के द्वारा किया हुआ अपना सत्कार स्वीकार करती है । वास्तव गें उनका जीवन धन्य है ।[2]

भागवत पुराण तथा अन्य पुराणों की भक्ति धारा के प्रभुत्व से संस्कृत भाषा में विपुल स्तोत्र साहित्य भक्ति गीतों के रूप में मिलता है । यह भक्ति गीत राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, दुर्गा तथा अन्य कितने ही वैदिक और पौराणिक देवी-देवताओं को लेकर मिलते है । इन गीतों के बारे में हम इस बात को नहीं भुला सकते कि इनमें गेयता भरपूर होने पर भी यह एक परोक्ष शक्ति पर आधारित होते हैं । इनमें गीत का वह चरित्र नहीं होता जो हमारी इन्द्रिय संवेदनाओं को तृप्त कर देता है । परन्तु इस सच्चाई को भी ओझल नहीं किया जा सकता कि इस तरह के भक्ति और प्रेम से मिश्रित गीतों ने शुद्ध प्रेम के गीतों की दिशाएं प्रशस्त की ।

---

1. भागवत, 10.21.7

2 वही. 10.21.11

देवगीतों की परम्परा ने संस्कृत के कलात्मक महाकाव्यों पर भी प्रभाव डाला है । वहाँ भी संकट काल में किसी देवता का प्रसंग आने पर स्तुति गीत मिल जाते हैं । कालिदास के 'कुमारसंभव' में ब्रह्मा का स्तुति गीत मिलता है ।[1] साथ ही शिव का स्तुति गीत भी इस महाकाव्य में मिलता है ।[2]

प्राकृतिक सुषमा का गीतिकाव्य–

भारत की सुन्दर प्रकृति ने संस्कृत के इस गीत काव्य को जन्म दिया है । यहाँ की उषा, यहाँ के चन्द्र--सूर्य, नदी, पर्वत, पशु--पक्षी सभी ने अपनी सुन्दरता के गीत गाने की प्रेरणा हमारे आदि कवियों को दी । इसका आरम्भ भी हम ऋग्वेद से ही पाते हैं ।

ऋग्वेद के उषा गीत प्रकृति सुषमा के सुन्दर गीत हैं । बलदेव उपाध्याय ने वैदिक ऋषियों की ऊषा को काव्य की दृष्टि से नितान्त सरस, सहज तथा भव्य भावना मण्डित बताया है । उन्होंने लिखा है--''कि वैदिक ऋषि उषा के स्वरूप की भावना को तीव्र रूप से प्रकट करने के लिये नाना अलंकारों का विधान प्रस्तुत करता है । उषा अपने शुभ उज्जवल रूप को धारण करती हुयी स्नान करने वाली सुन्दरी की भाँति आकाश में प्रकट होती है तो कभी वह भ्रातृविहीन भागिनी के समान अपने दाय भाग को लेने के लिए पितृ स्थानीय सूर्य के पास आती है । कभी वह सुन्दर वस्त्र पहन पति को अपने प्रेमपाश में बाँधने के लिए मचलती सुन्दरी के समान अपने प्रिय के सामने सुन्दर रूप प्रकट करती है ।

---

1. कुमार0 2.14–15

2. वही. 6.15–23

<u>ऋतु सौन्दर्य का गीति काव्य</u>--

इस कोटि के गीति काव्य का आरम्भ भी अंशतः ऋग्वेद से हो जाता है । ऋग्वेद 'पर्जन्य सूक्त में भारत की वर्षा ऋतु के काव्य के बीज बो दिए गए हैं । ऐसा ही मण्डूक सूक्त के बारे में माना जा सकता है ।

इससे आगे जाकर ऋतु गीत रामायण और महाभारत में मिलते हैं । पुराणों में भी यत्र तत्र इसके उल्लेख हैं । परन्तु रामायण में तो ग्रीष्म, शरद्, वसन्त और शिशिर के गीत बहुत ही सुन्दर मिलते हैं । इन गीतों के बारे में ध्यान देने की बात यह है कि यह गीत रामायण में काव्य की प्रबन्धात्मकता में दब कर रह गए हैं ।

ऋतु गीतों की परम्परा का निर्वाह तो आगे के सभी महाकाव्यकारों ने किया है किन्तु इन गीतों को स्वतन्त्र व्यक्तित्व कालिदास के 'ऋतुसंहार' में ही मिल सका है ।

गीत गोविन्द के ऋतुगीत भी गोपी और कृष्ण के प्रेम तथा भक्ति का ही अंश बनकर रह गए हैं, हरिरिह विहरति सरस बसन्ते ।

<u>मिलन के प्रेम गीत</u>--

ऋग्वेद के पुरुरवा उर्वशी और यम-यमी सूक्त से इस तरह की गीति रचनाओं का आरम्भ होता है । आगे चल कर रामायण और महाभारत के प्रेम प्रसंगों में तथा पुराण साहित्य में भी ऐसे गीत मिल जाते है । किन्तु वहाँ इनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं उभर सका है । पुरुरवा उर्वशी का प्रेम गीत कभी नहीं भुलाया जा सका है । रामायण, महाभारत और पुराणों में भी यह बना रहा है । इससे इस प्रेम गीत की मौलिकता प्रकट होती है । कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीय' में इस गीत ने नया प्रभाव पाया है । सच

तो यह है कि इसने महाकवि को एक श्रेष्ठ गीति नाट्य रचने का गौरव प्रदान किया है ।

स्वतन्त्र रूप से प्रेम या संभोग के गीत का आरम्भ भी हम कालिदास के ऋतुगीतों में ही पाते हैं । यहाँ प्रिय और प्रेयसी के संभोग प्रेम के ऋतुगीत हैं ।

जयदेव के गीत गोविन्द में भी इस तरह के प्रेम गीत मिलते हैं । आधुनिक संस्कृत गीतों में कुछ नयी प्रवृन्ति के प्रेम गीत रचे जाने लगे हैं ।

<u>विरह गीत</u>–

पुरुरवा और उर्वशी के विरह ने ऋग्वेद में ही विरह गीतों का जन्म कर दिया था । रामायण और पुराणों में भी प्रासंगिक रूप से विरह गीत आ जाते हैं । भागवत पुराण गोपी–कृष्ण विरह के गीत मानवीय भावनाओं के बहुत निकट हैं । इन गीतों ने गोपी–कृष्ण विरह के गीतों की एक परम्परा ही डाल दी । यह परम्परा आज तक चल रही है । इसने ही सूर के विरह गीतों और जगन्नाथ घनानन्द, विद्यापति तथा जगन्नाथ रत्नाकर के गीतों का मार्ग प्रशस्त किया है । संस्कृत के प्रबन्ध काव्यों में भी विरहगीत मिलते है परन्तु वे स्वतन्त्र गीत नहीं माने जा सकते । विरह गीत को सर्वोत्तम उदाहरण पैदा करने का श्रेय भी कालिदास को जाता है । उसका मेघदूत विरहगीत का विश्व साहित्य में अनूठा उदाहरण है । बिल्हण की रति पंचाशिका और धोयी कवि का 'पवन दूत' भी ऐसी ही रचनाएं है ।

आधुनिक युग में भी विरह गीत लिखे जा रहे हैं । संस्कृत के नए गीतकार कहीं इन्हें लोकगीत, कहीं गजल आदि के रूप में लिख रहे हैं । इससे संस्कृत गीतों की एक नयी परम्परा आगे आ रही है ।

**क्षेपिकाएँ और मुक्तक–**

गीतों की यह विधा भी संस्कृत साहित्य के लिए अपरिचित नहीं है । इसका सबसे अच्छा उदाहरण भर्तृहरि के शतकत्रय– श्रृंगार शतक, नीतिशतक और वैराग्य शतक को माना जा सकता है । अमरूशतक भी इसी वर्ग का गीतिकाव्य है ।

उपर्युक्त के अलावा संस्कृत के मुक्तक गीत कितने ही सुभाषितों के रूप में मिलते हैं ।

**लहरी गीत रचनाएं–**

संस्कृत के कुछ मध्य कालीन कवियों ने किसी देवता या प्राकृतिक शक्ति को लेकर शिखरिणी छन्द में गीतिकाएं लिखीं । इस तरह के गीति काव्य में आचार्य शंकर की आनन्द लहरी, पीयूष लहरी और पण्डितराज जगन्नाथ की गंगा लहरी जैसी रचनाएं आती हैं ।

ऐसी रचनाओं से प्रेरणा पाकर आधुनिक गीति रचनाएं भी हो रही हैं । व्योम शेखर की 'अहं राष्ट्री' ऐसी ही अभिनव गीति रचना है ।

संस्कृत के पुराने गीतकारों की परम्परा बहुत लम्बी है । इसे संक्षेप में जानने के लिए हम यह सूची देख सकते हैं ।

**संस्कृत के प्रमुख गीति काव्य**

1. गीति काव्य एवं रचनाकार

1. ऋतुसंहार एवं मेघदूत कालिदास

2. घटकर्परकाव्य घटकर्पर

3. नीतिशतक, श्रृंगारशतक; वैराग्यशतक– भर्तहरि

4. अमरूक शतक अमरू

5. भल्लट शतक भल्लट

6. चन्द्रदूत, जिनशतक जम्बूकवि

7. चौरपञ्चाशिका– बिल्हण:

8. पीयूष लहरी, सुधालहरी करूणा लहरी पं0 जगन्नाथ भामिनीविलास

9. पवनदूत कविराज धोयी

10. आर्यासप्तशती गोवर्धनाचार्य

11. नेमिदूत विक्रम

12. श्रृंगारशतकम् धनराज

13. रामकृष्ण विलोम काव्य– दैवज्ञसूर्यकवि

14. दानलीला माधवभट्ट

15. हंसदूत रूप गोस्वामी

16. लक्ष्मीसहस्त्र वेकटाहवारि

17. भिक्षाटन काव्य शिवभक्तदास

18. शुकदूत नन्द किशोर चन्द्र गोस्वामी

**आधुनिक गीत रचनाएं**

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद रचना की दृष्टि से संसकृत साहित्य का भी नया युग आरम्भ हुआ है । संस्कृत के वे गीतकार जो नए युग बोध और दूसरी भाषाओं के साहित्य से अभिज्ञ हैं, नए प्रकार की प्रयोगवादी रचनाएं कर रहे हैं । इस तरह की

रचनाएं कविता संग्रहों के रूप में प्रकाश में आ रही है । कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टि से इनमें नया पन है । इनमें गजल, लोकगीत, फिल्मीगीत, मुक्त गीत सभी के प्रयोग सामने आ रहे हैं ।

हममें गीति काव्य की परम्परा की जो चर्चा इस अध्याय में की है, उससे निष्कर्ष अर्थ यह मिलता है कि वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक संस्कृत में गीति काव्यों की परम्परा का प्रवाह सतत् बना रहा है । गीति काव्य परम्परा की यह धारा विलुप्त नहीं हुयी, वह आज भी अनेक विधाओं में संस्कृत जगत में चल रही है । नये गीति कवियों में एक स्वतन्त्र विद्या के दर्शन होते हैं । जिनको हम मुक्त वृन्त कह सकते है । डॉ0 विशन लाल गौड़ 'व्योम शेखर' की 'अग्निजा' गीतिकार एवं प्रो0 श्रीनिवास रथ की अधिकांश कविताएं इसी शैली में है । डॉ0 कैलाश नाथ द्विवेदी ने भी अपनी 'शाकुन्तलीयम्' कृति में यत्र तत्र मुक्त वृन्तों का प्रयोग किया है । गीतिकाव्यों की नवीन धारा छन्दोबद्ध गीतों की है किनतु उनके छन्द लय और ताल से प्रतिबद्ध स्वयं कल्पित है । डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, डा0 भास्कर्णाचार्य त्रिपाठी आदि के गीत इसी शैली में लिखे गये है ।

इस तरह हम देखते है कि गीति परम्परा का भविष्य उज्जवल है । चाहे वह मुन्तक रूप में हो या गीति के रूप में, सन्देश काव्य के रूप में हो या उपदेश काव्य के रूप में स्वतन्त्र गीति शैली के रूप में हो या राग काव्य के रूप में हो संस्कृत गीति परम्परा की धारा अक्षुण्य है । संस्कृत की गीति परमपरा और उसके सन्दर्भ में गीत के स्वरूप तथा शिल्प का हमारा विवेचन हमें इन निष्कर्षो पर पहुँचाता है:

* गीत अथवा गीति कविता का सबसे अधिक भावोत्तेजक और सबसे अधिक गेय रूप है ।
* गीत रचना में वाद्य संगति की सबसे अधिक योग्यता होती है ।
* अँगरेजी का लीरिक और संस्कृत– हिन्दी गीत प्रकृतित : मिलते–जुलते हैं ।
* गीत का भाव संसार वैयक्तिक होता है अतः प्रत्यक्ष अनुभूति प्रधान होता है ।
* गीत रचना भाव प्रधान होती है, वस्तु प्रधान नहीं ।
* गीत रचना में इतिवृत्त नहीं होता ।
* गीत की भाषा कोमल कान्त और सरल होती है ।
* गीत का छन्द प्रवाही और लय प्रधान होता है ।
* संस्कृत गीतों की परम्परा ऋग्वेद, रामायण-- महाभारत, पुराण काव्यों, महाकाव्यों तथा मुक्तक गीत काव्यों में विकसित होती हुई आज के गीतों तक पहुँची है ।
* संस्कृत गीति काव्यों में मिलन गीत, विरह गीत, प्रकृति गीत, ऋतुगीत और स्तुति गीत जैसे प्रमुख भेद मिलते हैं ।
* कालिदास का ऋतुसंहार और मेघदूत विशिष्ट प्रकार के गीतिकाव्य हैं जिन्होंने अपने प्रकार की गीति–परम्परा की प्रवर्तन किया है ।

पञ्चम अध्याय

## कालिदास के गीतिकाव्य

### ऋतुसंहार प्रथम गीतिकाव्यः

काव्य शिल्प की दृष्टि से नामतः गीतिकाव्य कालिदास की दो ही कृतियाँ कही जा सकती हैं-- ऋतुसंहार तथा मेघदूत । यह दोनों ही गीतिकाव्य काव्यशास्त्रीय भाषा में श्रृंगार रस की रचनाएं है । आधुनिक समीक्षा की भाषा में यह प्रेम के गीत हैं । प्रेम के जीवन सामान्यतः दो ही स्थितियाँ होती हैं । प्रेम पात्रों के मिलन के सुखद क्षण प्रेम की पहली स्थिति है । इस स्थिति में प्रेम संयोग के आनन्ददायी रूपों का आस्वाद लेता है । प्रेम की इस स्थिति में प्रकृति की सभी सुन्दर वस्तुएं, प्रकृति के सभी सुन्दर दृश्य प्रेमी जन को प्यार और केवल प्यार के संयोग की प्रेरणा देते अनुभव होते हैं । युवा कालिदास ने अपने ऋतुसंहार में प्रेम की इस संभोग स्थिति के ही गीत गाए हैं । संभोग श्रृंगार के इन गीतों की विशेषता यह है कि यह प्रेम गीत किन्हीं दो प्राण विशेषों के संभोग सुख का गान नहीं करते हैं बल्कि सम्पूर्ण प्रकृति के जीवन में चल रहे प्रिय और प्रिया के प्यार के गीत गाते है । इन प्रेम गीतों को पढ़कर हमारे मन पर यही प्रभाव होता है कि सृष्टि का सारा जीवन काम अर्थात् प्रेम के धागों से गुंथा हुआ है, प्रेम का का अवलम्बन पाकर ही वह सुखमय बना हुआ है । अदलती-बदलती ऋतुएं अपने अलग-अलग रूपों और रंगों से मानव जीवन के संभोग प्रेम को किस तरह से नए-नए रूप और रंग प्रदान कर देती हैं, कैसे प्रेम में एक नयी स्फूर्ति और ताजगी ला देती है, यही सब वास्तव में ऋतुसंहार के कवि के गीतों का स्वर है । उस गीति काव्य में ऋतुओं का सौन्दर्य चित्रण और मानव जीवन का संभोग सुख एक मिले-जुले संगीत में बदल गया है ।

प्रेमी पात्रों के वियोग के क्षण प्रेम की दूसरी स्थिति है । इन क्षणों में संभोग के सुख की सभी संभावनाएं प्रेमी जन के हाथ से दूर जा पड़ती है । वे एक–दूसरे से मिलन के लिए तड़पते रहते हैं । वियोग की यह तड़पन ही विप्रलम्भ श्रृंगार के गीतों को जन्म देती है । वियोग के यह गीत वास्तव में संभोग का मादक सुख अनुभव कर चुके दो प्राणों की प्रेम स्मृतियों के गीत होते हैं । यह गीत हृदय की टीस से जन्म लेते हैं इसलिए संभोग प्रेम के गीतों से बहुत अधिक हृदयस्पर्शी लगते हैं । मेघदूत में कालिदास ने विरह की वेदना से संतप्त प्रेम के ही गीत गाए हैं । ऋतुओं के प्रभाव जिस प्रकार कामीजन की संभोग भावनाओं का उद्दीपन करता है ठीक उसी प्रकार वह वियोग की वेदनाओं का उद्दीपन भी करता है । परन्तु प्रेम की इन विपरीत स्थितियों में ऋतुओं के उद्दीपनों की भाव धारा पूरी तरह विपरीत हो जाती है । मिलन और संभोग के क्षणों में जो ऋतुओं के रूप और रंग, सुन्दर–सुन्दर परिदृश्य प्रेमी जन के हृदय को अधिक भाते हैं, उसे मतवाला बना देते हैं, ऋतुओं के वे ही रूप–रंग विरही जन को सताने वाले बन जाते हैं । कालिदास ने अपने ऋतुसंहार तथा मेघदूत की गीति रचनाओं में मानव के मनोजगत् की इन विपरीत स्थितियों तथा प्राकृतिक जीवन के साथ होने वाली मानसिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का मार्मिक चित्रण किया है । इन दोनों गीतिकाव्यों का अपना विशिष्ट प्रकार का स्वरूप और रचनाविधान है जिसकी चर्चा हम अनुपद क्रमशः कर रहे हैं ।

**ऋतुसंहार का स्वरूप और रचना विधान:**

हमारे देश का वर्ष भर का ऋतुचक्र छः ऋतुओं से बना है । यह छः ऋतुएं ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और बसन्त नाम से जानी जाती हैं । कालिदास अपने 'ऋतुसंहार' में इन्हीं छः ऋतुओं के गीत गाए हैं । प्रत्येक ऋतु के परिदृश्यों को तथा मानव

जीवन और पशु–पक्षी आदि के जीवन पर होने वाली उनकी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को कवि ने अपने गीतों का विषय बनाया है । ऋतु सौन्दर्य से मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों में कवि ने जीवन के 'काम' तत्त्व को अधिक महत्त्व दिया है । सभी ऋतुओं के गीत प्रिय द्वारा प्रिया को संबोधित करके गाए जा रहे है और स्वरसतः प्रेम संभोग का उद्दीपन और आमन्त्रण करते हैं अतः यह ऋतुगीत एक विशेष प्रकार के प्रेमगीत प्रतीत होते हैं । उदाहरण के लिए हम ग्रीष्म गीत का और साथ ही 'ऋतुसंहार' का सबसे पहला छन्द देखें:

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः,

सदावगाहक्षतवारिसंचयः

दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो

निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये ।।

दिन में प्रचण्ड सूर्य तपता है । रात में मनभावन चाँदनी छिटकती है । सन्ध्याकाल बहुत ही रमणीय हो जाता है । जलाशयों में डुबकियाँ लगाते रहना बड़ा ही प्रिय लगता है । प्रिये देखो, यह गर्मी का मौसम प्रेम संभोग के वेग को कुछ कम सा कर देना चाहता है ।

ग्रीष्म गीत के इस प्रथम छन्द का ऊपरी अर्थ तो ऐसा लगता है जैसे प्रचण्ड सूर्य वाला निदाध काल सचमुच ही मन्मथ को उपशान्त कर रहा है । परन्तु वास्तविक अर्थ यह नहीं है । गीत का वास्तविक अर्थ तो यह निकलता है कि इस निदाधकाल ने भी हमें प्रेम संभोग के लिए मनोरम चाँदनी, जलकेलियाँ और हाथ में हाथ डालकर घूमने योग्य सन्ध्या के मधुर क्षण दे रखे हैं, आओ, हम उन क्षणों का रमण सुख भोगें ।

ऋतुगीतों के वे छन्द भी जिनमें काम के संभोग की उद्दीपनाएं नहीं भी हैं केवल प्रकृति के विविध और यथार्थ रूपों के सौन्दर्य बिम्ब ही वर्णित हैं । उन्हें भी जब हम पूरे ऋतुगीत के आद्योपान्त चल रहे मूल स्वर के सन्दर्भ में देखते हैं तो उनकी परिणति भी प्रेम

संभोग के आमन्त्रण में ही हो जाती है । अतः कालिदास के सभी ऋतुगीत प्रकृति सौन्दर्य के गीत होने के साथ–साथ प्रिय और प्रेयसी के मधुर क्षणों का संगीत बन गए हैं ।

कालिदास ने 'ऋतुसंहार' गीतिकाव्य के ऋतुगीतों का विभाजन और उपनिबन्धन सर्गों में किया है । प्रत्येक ऋतु के गीत के लिए कवि ने एक स्वतन्त्र सर्ग रखा है । इस प्रकार ऋतुसंहार के कुल सर्गों की संख्या छः है । प्रत्येक ऋतुगीत में छन्दों की संख्या में समानता नहीं है । ऐसा करना कवि के लिए किसी भी प्रकार से आवश्यक भी नहीं था । ऐसा करने से एक प्रकार की अशोभन यान्त्रिकता ही अधिक प्रतीत होती । जिस ऋतु के हृदयस्पर्शी सौन्दर्य चित्रों ने कवि हृदय को जितना और जिस रूप में छुआ बस उतनी ही संख्या के छन्दों उस ऋतु का गीत पूरा हो गया । यही कारण है कि ऋतुसंहार के सर्गों के छन्दों की संख्या में न तो कोई समानता है और न किसी प्रकार की कोई आनुपातिकता ही है । प्रथम सर्ग में ग्रीष्म ऋतुगीत के छन्दों की संख्या 28; द्वितीय सर्ग में वर्षा ऋतुगीत के छन्दों की संख्या 29, तृतीय सर्ग में शरद् ऋतुगीत के छन्दों की संख्या 28, चतुर्थ सर्ग में हेमन्त ऋतुगीत के छन्दों की संख्या 19, पञ्चम सर्ग में शिशिर ऋतुगीत के छन्दों की संख्या 16 तथा षष्ठ सर्ग में बसन्त ऋतुगीत के छन्दों की संख्या 38 है । सबसे अधिक छन्द 'बसन्तगीत' के हैं तथा सबसे कम छन्द "शिशिर" गीत के हैं । हमारे देश की जलवायु के अनुसार ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और बसन्त अधिक प्रभावी ऋतुएं हैं । इनमें बसन्त की कुछ अपनी विशिष्ट बहार है । यह ऋतु शीतता और उष्णता की दृष्टि से समशीतोष्ण है । प्राकृतिक छटा की की दृष्टि से यह सस्यसम्पदा और लतापुष्पों से भरपूर होती है । प्राकृतिक सुन्दरता की इस

अपार समृद्धि के कारण बसन्त को सब ऋतुओं में सुन्दर अर्थात् 'ऋतुराज' कहा जाता है । यह अनन्त प्रकार के अभिनव लता–पादप किसलयों और फूलों का मौसम है अतएव इसे 'कुसुमाकर' कहते हैं । संस्कृत काव्यों में 'बसन्त' को प्रेम के देवता कामदेव का सहज मित्र माना गया है । ऋतुसंहार के कवि कालिदास ने भी बसन्त को इसी रूप में लिया है :

मधुश्च ते मन्मथ साहचर्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव ।[1]

कालिदास स्वयं ही संस्कृत काव्य का बसन्त सा लगता है । उसके कवि मन पर इस ऋतु के सौन्दर्य का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है । केवल ऋतुसंहार में ही नहीं कालिदास के कुमारसम्भव और रघुवंश में विस्तार के साथ बसन्त ऋतु के सौन्दर्य का गान किया गया है ।[2] अतः स्वाभाविक ही है कि अन्य ऋतुगीतों की तुलना में बसन्तगीत के छन्दों की संख्या कुछ अधिक है ।

अन्य ऋतुगीतों से बसन्तगीत का अधिक विस्तार होने पर भी ऋतुसंहार के सहृदय पाठक कुछ न अतृप्त ही रह जाते हैं । वे सोचते हैं कि कालिदास को 'ऋतुराज' का वर्णन तो कुछ और अधिक विस्तार और सजीवता से करना चाहिए था । इस तरह का विचार रखने वाले कोई हमारे जैसे साधारण पाठक नहीं न ही कोई परम्परागत टीका टिप्पणी करने वाले व्याख्याकार हैं बल्कि प्राच्य और पाश्चात्य काव्यबोध से सम्पन्न अरविन्द घोष जैसे

---

1. कुमार0 3.21

2. देखिए कुमार0 सर्ग 3 तथा रघु0 सर्ग 9.24–48

महान् दार्शनिक कवि है । इस बारे में उन्होंने लिखा है, "बसन्त तो भारतीय वर्ष का 'ऋतुराज' है । इसे तो कालिदास के जन्मजात रूपरंग के प्यार, मधुरता और समरसता में विशिष्ट स्थान मिलना चाहिए था । बसन्त का अन्तिम सर्ग तो इस काव्य का मुकुटमणि होना चाहिए था । परन्तु कवि का अभिशंप उसका पीछा नहीं छोड़ सका है । यद्यपि हम देखते है कि कवि इस बात के लिए विशेष प्रयत्नशील है कि हेमन्त और शिशिर के वर्णन में मादकता और गीत का सामरस्य क्षीण हो गया है, उसे बसन्त वर्णन में फिर से प्राप्त किया जाए । परन्तु ऐसा संभव हो नहीं सका है ।"[1]

हम समझतें हैं कालिदास के बसन्त गीत को लेकर अरविन्द घोष की यह प्रतिक्रिया सौन्दर्य की एक अतिरिक्त प्यास ही अधिक सूचित करती है । वैसे कालिदास के गीतकार ने ऋतुराज के मधुर सौन्दर्य बिम्बों कों चित्रित करने के लिए एक गीत में जितनी सीमा तक संभावनाएं हो सकती थीं , वहाँ तक भरपूर किया है ।

## ऋतुसंहारः गीतिकाव्य या महाकाव्य ?

संस्कृत कविता के वे पाठक जो साहित्यदपर्ण की 'सर्गबद्धं महाकाव्यम्' उक्ति के साथ ही महाकाव्य की पहचान निधारित करते हैं उन्हें निश्चित ही ऋतुसंहार के बारे में महाकाव्य होने का भ्रम हो सकता है । परन्तु इस भ्रम का कोई ठोस आधार नहीं है ।

---

1. अरविन्द घोसः कालिदास, पृष्ठ 27

सर्गों में किसी काव्य रचना का विभाजन कर देने मात्र से वह महाकाव्य नहीं हो जाती । सर्गबद्धता को किसी भी दशा में महाकाव्य का मौलिक लक्ष्य नहीं माना जा सकता । महाकाव्य का मौलिक लक्ष्य तो इस बात पर निर्भर करता है कि काव्य रचना ने जीवन का अधिक से अधिक कितना व्यापक फलक अपनाया है । उसमें कोई प्रबन्धात्मक इतिवृत्त है अथवा नहीं । उसमें घटनाओं और वर्णनाओं की विविधता है अथवा नहीं ? यदि यह सब है तो काव्य रचना निश्चित ही महाकाव्य बन जाएगी । वह वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी महाकाव्य होगी तथा आकार में बड़ी होगी । वर्ण्य विषयों तथा घटनाओं की विविधता के कारण सर्गों में विभक्त किया जाना भी उसकी प्रबन्धात्मक आवश्यकता होगी ।

उपर्युक्त दृष्टि से विचार करते ही यह बात सरलता से समझी जा सकती है कि ऋतुसंहार में न कोई इतिवृत्त है, घटनाओं की कोई विविधता है । विविधता की बात क्या करना वहाँ घटना नाम की कोई वस्तु ही नहीं । केवल ऋतुओं के सौन्दर्य चित्र और उनसे उद्दीप्त होने वाले काम के मोहक क्षण ही वर्ण्य विषय हैं । अतः व्यापक फलक ,वाला महाकाव्य हो सकने की तो यहाँ कोई सम्भावना ही नहीं है । रही सर्गों में विभक्त होने की बात तो वह स्वाभाविक ही है । प्रत्येक ऋतु के सौन्दर्य की गीतकाओं का एक–एक लम्बा ऋतुगीत है । उस लम्बे ऋतुगीत को एक सर्ग या एक कड़ी मान लेना कुछ अनुचित नहीं है । प्रतीत यह होता है कि इस तरह गीतिकाव्यों की कड़ियों के विभाजन के लिए कालिदास के युग तक अन्य कोई नाम प्रकाश में नहीं आ सका था अतः कवि में प्रचलित नाम 'सर्ग' को ही ग्रहण कर लिया । ऐसा करने से उसकी रचना के गीतिकाव्य होने के स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है ।

## ऋतुसंहार: ऋतुसौन्दर्य और यौवन का गीत

ऋतुसंहार गीतिकाव्य युवा कवि कालिदास की कविता का गीतात्मक प्रथम उन्मोलन है । यह कालिदास के यौवन का गीत है । इस बात का जानने के लिए हमें बाहरी प्रणामों की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । स्वयं हमारा कवि ही ऋतुओं के सौन्दर्य चित्र खींचते हुए उस सौन्दर्य के द्वारा युवा मन के संमोहन की बात पदे--पदे अपनी गीतियों में करता है । तरुणाई की अठखेलियों के मुक्त चित्र हम उसके ऋतुसंहार में पाते हैं । उदाहरण के लिए शरद् काएक प्रमाचत्र देखिए :

करकमलमनोज्ञाः कान्तसंसक्तहस्ता
वदनविजितचन्द्राः काश्चिदन्यास्तरुण्यः
रचितकुसुमगन्धि प्रायशो यान्ति वेश्म
प्रबलमदन हेतोस्त्यक्त संगीत रागाः ।[2]

यौवन की कामवासनाओं को ऋतुओं के कौन--कौन से उद्दीपन झकझोर डालते हैं। इसे एक युवा कवि का हृदय ही अच्छी तरह अनुभव कर सकता है । कालिदास का युवा कवि देखता है वसन्त ऋतु में तोतों की चोंच जैसे चमकीले लाल--लाल किंशुकों को, चटकीले रंग वाले कर्णिकार पुष्पों को तो उसके अन्दर प्रेम की कोई आग सी फल उठती है । उसके मतवाले

---

1. ऋतुसंहार 1.3,4,7, 2.18,25, 3.5,6, 4.13,16, 5.9, 10,
2. वही 3.23

यौवन को लगता है कि यह पागल कोयल बसन्त पुष्पों से प्रेम में पागल बने युवा हृदय को और क्यों अधिक चोट दिए जा रहा है :

किं किंशुकैः शुकमुखच्छविभिर्न भिन्नम्
किं कर्णिकारकुसुमैर्न कृतं नु दग्धम्
यत्कोकिलः पुनरयं मधुरैर्वचोभिः
यूनां मनः सुवदनानिहितं निहन्ति ।[1]

कालिदास का ऋतुसंहार युवा कवि के गीतिकाव्य का उदय है यह बात हम इस तथ्य से भी जान सकते हैं कि उसकी इस रचना में वियोग भावों का प्रासंगिक उल्लेख तो मिलता है किन्तु वियोग की गहरी अनुभूतियाँ इसमें अभिव्यक्त नहीं हुई हैं । इससे हम यही निष्कर्ष निकाल पाते हैं कि प्रेम के संसार में अभी हमारा कवि एक भावुक युवा की तरह प्रवेश ही पा रहा है । अभी उसकी संवेदनाओं में कोई वियोगी नहीं उतरा है ।

एक तीसरी बात और भी है जो यह बताती है कि कालिदास के ऋतुगीत कवि की तरुण मानसिकता के गीत हैं । सभी ऋतुओं के गीतों में हम देखते हैं कि गीतों का सारा भाव संसार सीधे-सीधे कवि की ऐन्द्रियिक अनुभूतियों का संसार है । कही भी परोक्ष अनुभूति जैसी अथवा शास्त्रीय ज्ञान से मिली भावना जैसी कोई भावाभिव्यक्ति नहीं है । तरुण मन में परोक्ष संवेदनाओं को तब तक स्वभावतः कोई स्थान नहीं मिल पाता जब तक कि तरुणाई को दुर्भाग्य से किन्हीं असामान्य स्थितियों में फँसना न पड़ जाए ।

---

1. ऋतु० 6.22

एक चौथी बात यह भी कहीं जा सकती है कि कालिदास के ऋतुगीतों पर सबसे अधिक प्रभाव यदि माना जा सकता है तो मल्हार और बारहमासा जैसे लोकगीतों का ही माना जा सकता है । दूसरे काव्यों का प्रभाव बिल्कुल नहीं है यह कहना तो कठिन है क्योंकि बाल्मीकि रामायण के ऋतुचित्रण की कुछ छाप कालिदास के गीतों पर अवश्य प्रतीत होती है परन्तु वह बहुत अधिक प्रभावी नहीं है । उसके लोकगीत उसके भावुक युवा मन की ही मौलिक देन हैं ।

ऋतुसंहार की प्रामाणिकता--

कालिदास का कोई भी गंभीर पाठक जब एक ओर उसके अत्यन्त कलात्मक और उच्चकोटि के प्रौढ़ ज्ञान से युक्त अभिव्यक्तियों वाले कुमारसंभव और रघुवंश जैसे महाकाव्यों को देखता है, अभिज्ञान शाकुन्तलम् जैसी असाधारण नाटचकृतियों को देखता है, और देखता है मेघदूत जैसे मर्मस्पर्शी गीतिकाव्य को तो एक बारगी उसे यह विश्वास कर पाना कठिन हो सकता है कि 'ऋतुसंहार' जैसी सरल और सपाट गीतिकाव्य रचना भी कालिदास की हो सकती है । ऋतुसंहार की प्रामाणिकता के बारे में इस प्रकार का अविश्वास और सन्देह उठ खड़ा होना स्वाभाविक तो माना जा सकता है किन्तु तर्क संगत नहीं । ऐसा सन्देह तर्कसंगत इसलिए नहीं माना जा सकता है क्योंकि यहॉ इस वास्तविकता को ओझल किया जा रहा है कि महान से महान लेखक और कवि का भी एक आरंभबिन्दु होता है । इस आरंभबिन्दु पर उसका नौसिखिया कवि अपनी सारी नैसर्गिक प्रतिभा और जन्मजात संवेदनशीलता रखते हुए भी प्रौढ़ शैली की रचनाएं नहीं कर सकता । उसमें भावावेग तीव्र हो सकते है परन्तु आवेगों के अनुसार अभिव्यक्तियॉ नहीं

भी हो सकती हैं । अनेक बार वह अपने आवेगों में आवृत्तियों का पात्र बन सकता है । कहीं कहीं उसकी अभिव्यक्तियों में वह सामंजस्य और समन्विति नहीं भी हो सकती है जो एक प्रौढ कवि में मिलती है । किसी भी नवोदित कवि में चाहे वह प्रतिभा का धनी कालिदास हो या कोई अन्य इस प्रकार की न्यूनताएं स्वभावतः मिल सकती है । प्रत्येक तेज धावक अपने बचपन में घुटनों के बल ही चलता है । आगे जाकर जब लोग उसकी चमत्कारी दौड़े देखते हैं तो उन्हें यह सोच पाना भी कठिन हो जाता है कि कभी वह भी रेंग-रेंग कर चलने वाला बालक रहा होगा । ऋतुसंहार गीतिकाव्य के तरूण कालिदास और बाद की रचनाओं के प्रौढ कालिदास के बीच इस प्राकृतिक अन्तर को पहचान कर ही उसकी किसी रचना की प्रामाणिकता पर विचार करना उचित होगा । ऋतुसंहार कालिदास की ही कृति है अथवा नहीं, इस सन्देह का निवारण बाहरी प्रमाणों के अभाव में कालिदास के रचनाकार की निजता ही कर सकती है । यह निजता या व्यक्तित्व प्रत्येक रचनाकार का एक ऐसा स्थिरांक होता है जो उसकी रचनाओं में आदि से अन्त तक अवश्य बना रहता है । आधुनिक शैली विज्ञान की भाषा में कवि की निजता (इंडिविजुअलिटी) के ऐसे स्थिरांक को ही शैलीचिह्नक अथवा स्टाइलमार्कर कहते हैं । कवि के व्यक्तित्व का स्थिरांक बन चुके ऐसे शैलीचिह्नकों को पकड़ने के लिए हमें उसके नाम से चर्चित रचनाओं के ऐसे सन्दर्भों का समीक्षण करना होता है जिनका वर्ण्य विजय एक ही प्रकार का होता है । इस तरह के सन्दर्भों को पढ़कर हम यह बात ताड़ सकते हैं कि वहीं रचनाकार किसी एक विशेष बिन्दु पर अपने को सभी रचनाओं में लगभग-लगभग एक ही रूप में दोहराता है । हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ विशेष प्रकार के बिम्ब और कुछ विशेष प्रकार

की अभिव्यक्तियाँ कवि मन को उसके उदयकाल से इतने गहरे में स्पर्श किए रहती हैं कि जब भी उसकी रचना में जहाँ कहीं उनका संदर्भ आता है, वे स्वयं प्रकट हो जाती है । रचनाकार के रोके वे रूक नहीं सकतीं । कालिदास के व्यक्तिन्त्व से जुड़े स्थिरांकों को हम उसकी कृतियों में किए गए बसन्त वर्णनों में बड़ी सरलता से पकड़ सकते हैं । उदाहरण के लिए हम कालिदास के मानस में बहुत गहरे पैठे कुछ बसन्त बिम्बों को लें । पहला बिम्ब 'फूल के प्यारे में सह मधुपान करते मधुकर और मधुकरी का है । हम देखते हैं कि यह बासन्ती बिम्ब ऋतुसंहार, कुमारसम्भव के बसन्तवर्णनों में प्रायः एक प्रकार की भाषायी अभिव्यक्ति से आवृन्ति पाता है । इससे तीनों कृतियों के बसन्तवर्णन का रचनाकार एक व्यक्ति है यह विश्वास करने का आधार मिलता है । दूसरा बिम्ब आमूल पल्लवित अशोक का है । कालिदास का यह प्रिय बिम्ब ऋतुसंहार और कुमारसंभव में समान रूप से मिलता है । यह बिम्ब कालिदास की कृतियों में उपर्युक्त स्थिरांकों को समझने के लिए हम उनका प्रत्यक्ष अवलोकन कर लें तो अधिक उचित होगाः

<u>प्रथम मधुपानबिम्ब</u>

पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः ।
कूजद्द्विरे फोऽप्ययमम्बुजस्थः प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाटु ।।

ऋतु0 6.16

मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पयौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।

कुमार0 3.36

**द्वितीय कोकिल का चूतरसासवपानबिम्ब–**

यह बिम्ब ऋतुसंहार के 6.16 में ऊपर दर्शाया जा चुका है । यही बिम्ब कुमारसंभव में इस रूप में आता है:

चूतांकुरास्वादकबाद कण्ठः पुस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज ।

**तृतीय आमूलपल्लवित अशोक का बिम्ब–**

यह बिम्ब जिस रूप में ऋतुसंहार में मिलता है ठीक उसी रूप में कुमारसम्भव के बसन्त वर्णन में मिलता है:

आमूलतो विद्रुमरागताम्रं सपल्लवा पुष्पचयं दधानाः ।

ऋतु0 6.18

असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि ।

कुमार0 3.26

अशोक पल्लवों के सौन्दर्य का यह बिम्ब प्रकारान्तर से रघुवंश बसन्तवर्णन में आवृत्ति पाता है ।

कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् ।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः ।।

रघु0 9.28

प्रकृति के ऋतु सौन्दर्य में डूबे ऋतुसंहार के वरूण की संवेदनाओं में छाए बिम्ब

उसकी प्रौढ़ रचनाओं में भी जब आवृत्ति पाते हैं तो वे स्वयं सूचित कर देते हैं कि उनका रचनाकार एक ही कवि व्यक्तित्व है । रही कलात्मक प्रौढि और अप्रौढि की बात, यह भी कोई विशेष अन्तर नहीं बताती । काम तत्त्व कालिदास के कवि व्यक्तित्व का स्थिरांक है वह उसकी सभी कृतियों में एक जैसी मधुरता से छाया है । ऋतुसंहार में भी वही छाया हुआ है । अतः इस ऋतुकाव्य को कालिदास से भिन्न कवि का तो सोचा भी नहीं जा सकता ।

**ऋतुसंहार की प्रामाणिकता पर अरविन्द घोष**

ऋतुसंहार की मोहकता का अनुमान हम इतने से ही कह सकते हैं कि इस गीतिकाव्य ने अरविन्द घोष सरीखे मनीषी कवि का मन मोह लिया था । उन्होंने अपने 'कालिदास' नाम के एक प्रलेख में महाकवि के अन्य प्रौढ काव्यों में न जाकर केवल उसके ऋतुकाव्य से जुड़े महत्त्वपूर्ण पक्षों पर विचार किया है । उनके विचार का एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु ऋतुसंहार की प्रामाणिकता भी है । इस बारे में उनका बहुत ही स्पष्ट विचार मिलता है कि जब कभी किसी कृति के रचनाकार के बारे में कोई सन्देह उठे और कोई बाहरी प्रमाण हमारा साथ न दे सकें तो हमें उस रचना के बारे में संभावित और चर्चित रचनाकार के व्यक्तित्व की पहचान करनी चाहिए । रचनाकार का यह व्यक्तित्व ही एक ऐसा तत्त्व है जो उसकी सभी रचनाओं में एक जैसी अभिव्यक्ति पाता है । ऋतुसंहार कालिदास की ही कृति है अथवा किसी अन्य रचनाकार की इसका उत्तर अन्य कृतियों में अभिव्यक्त हुए कालिदास के व्यक्तित्व की समझ से ही मिल सकता है ।

उपर्युक्त सन्देहमूलक बिन्दु पर अरविन्द घोष लिखते हैं: ऋतुसंहार कालिदास महान की उन आरंभिक कृतियों में से एक है जिनमें कालिदास के पाठक अपने कवि का विकास जानने के लिए उसकी प्रौढ़ कृतियों की अपेक्षा अधिक रुचि रखते हैं । इन आरंभिक कृतियों में हम कृतित्व की अपरिपक्वता और अनिश्यात्मकता का स्पर्श होने पर भी हम कवि की विशिष्ट प्रतिभा को भांप सकते हैं; कुछ दुर्बलताओं के होने पर भी हम उसके व्यक्तित्व के नैरन्तर्य को ताड़ सकते हैं । ऋतुसंहार के कालिदासकृत होने में एक स्थिति में सन्देह उठ खड़ा होना बहुत स्वाभाविक और अपरिहार्य है । जब हम महाकवि की प्रौढ रचनाएं पहले पढ़कर उसकी एक कच्ची रचना की ओर लौटते हैं तो हम यह चींख उठने के लिए उतावले से हो उठते है कि यह कृति उन्हीं हाथों की नहीं हो सकती । परन्तु इस तरह की भावुक धारणाएं सदा तर्कसंगत ही नहीं मानी जा सकती ।[1]

अपने मन्तव्य को आगे बढ़ाते हुए अरविन्द ने कहा है कि 'कवि पैदा होता है बनता नहीं है । यह बात इतने अर्थ में सत्य है कि कवित्व प्रतिभा बाल मस्तिष्क में होती है और यह बात उतनी सच्चाई के साथ मानव प्रजाति की किसी भी प्रकार की प्रतिभा के बारे में चाहे वह विचारक, दार्शनिक, राजनेता अथवा शिल्पी आदि कोई भी हो, कहीं जा सकती है । किन्तु क्योंकि कवि किन्तु कवि प्रतिभा बहुत दुर्लभ होती है । इसका प्रभाव बहुत व्यापक और स्थायी होता है अन्य किसी भी प्रकार की प्रतिभा की अपेक्षा । कवि प्रतिभा को ऐसा वरदान मिला होता है कि वह सत्य के बहुत से पक्षों में से किसी एक

---

1. अरविन्द घोष : कालिदास, पृ0 18

पक्ष को तेजी से ग्रहण कर लेता है और वह किसी दोष को भी एक अच्छी प्रोक्ति के रूप में पारदर्शी बना देता है । जन्मजात प्रतिभा के न होने पर भी एक आदमी अभ्यास और प्रशिक्षण के बल पर अच्छा वक्ता बन सकता है । किन्तु कवि प्रतिभा तो सबसे अधिक अनुभव और आत्मसंयम की अपेक्षा रखती है । यद्यपि एकाध कोई लघु रचना तो कभी असाधारण पूर्णता के साथ आरंभिक चरण में भी संभव हो जाती है परन्तु शेक्सपीयर और कालिदास जैसे जटिल मस्तिष्क एक परिपक्व अवस्था से पूर्वा कदाचित् ही संभव हो सकते हों । उनकी आरंभिक कृतियों यद्यपि निश्चयतः उनकी कवित्व शक्ति, संभावना और प्रतिभा से भरपूर हो सकती हैं परन्तु वे कहीं न कहीं च्युतिपूर्ण, असन्तुलित और अनुकरणात्मक भी हो सकती हैं । यह होना बहुत ही स्वाभाविक है क्योंकि अन्तश्चेतता को बाह्य अभिव्यक्ति प्रदान करने में पर्याप्त कठिनाई आती है । इन दोनों के बीच सामञ्जस्य लाने में समय और प्रयत्न दोनों की अपेक्षा होती है । इस बीज जो भी रचनाएं होंगी वे कहीं अवरोध और कहीं असामञ्जस्य से युक्त अवश्य होंगी क्योंकि अन्तर्भावना और अभिव्यक्ति के बीच सामञ्जस्य पूर्ण नहीं हो सकता है ।[1]

अरविन्द घोष का आग्रह है कि कालिदास जैसे बहुमुखी प्रतिभा के कवि की कृति की प्रामाणिकता जानने के लिए हमें कृति के अन्दर कालिदास की स्वता के होने या न होने का निर्णय करना होगा ।[2]

अरविन्द घोष का यह विचार सारतः वही है जो हम कृति की प्रामाणिकता पहचानने के लिए रचनाकार की निजता और उसके रचनाकार व्यक्तित्व के स्थिरांक

---

1. अरविन्द घोष : कालिदास पृ0 19

2. वही., पृ0 20

पहचानने के रूप में पहले ही कह चुके हैं ।

अस्तु, ऋतुसंहार की प्रामाणिकता के बारे में अरविन्द घोष के विचार सभी सन्देहों से परे हैं । उनका स्पष्ट मत है कि ऋतुसंहार में कालिदास के व्यक्तित्व की विशिष्टता प्रत्यक्षतः भासित होती है, साथ ही उसकी अपनी विशेषताएं, उसकी दृश्य शक्ति, उसकी शैली का शिल्प, उसकी अतिशयित ऐन्द्रियिकता, उपमाओं का अपना विभव, उसकी कल्पना का लालित्य और उसकी विशिष्ट वर्णना चातुरी इस कृति में सुतरां परिलक्षित होते हैं ।[3]

## कालिदास से पूर्व ऋतु काव्य परम्परा

**वैदिक ऋतु:**

यह तो सच है कि महाकवि कालिदास के ऋतुसंहार की तरह भारत की छः ऋतुओं को लेकर कोई काव्य रचना नहीं की गयी । इस तरह से उसका ऋतुसंहार एक युग अद्वितीय ऋतुगीत काव्य है । परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि कालिदास से पूर्व संस्कृत में कोई काव्य रचना अथवा गीत रचना प्रणीत ही नहीं हुई थी । भारत जैसे ऋतुओं की विविधता वाले देश में यह कैसे हो सकता था कि संवेदनशील लोग ऋतुओं की सुन्दरता के बारे लोक गीत या साहित्य गीतों की रचनाएं नहीं करते । वास्तविकता तो यह है कि ऋतुओं की अलग-अलग पहचान, गुणानुसार उनका नामकरण, वर्ष के पञ्चांग के साथ उनका कालचक्र तथा उनके प्राकृतिक वैभव को वैदिक युग में ही जान लिया गया था । संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों ऋतुओं की चर्चा के अनेक उल्लेख मिलते है ।[2]

---

1. अरविन्द घोष, पृ0 20-21
2. देखिए अमलधारी सिंह : कालिदास, पृ0 19

जहाँ तक ऋतु काव्य की बात है ऋग्वेद के पर्जन्य सूक्त और मण्डूक सूक्त में वर्षा ऋतु का सजीव गान किया गया है । इससे भारत की वर्षा का यथार्थ चित्र सामने आ जाता है । वेदगान करने वाले दायों से वर्षा में कर्णभेदी, टर्र-टर्र करने वाले मेंढ़कों की जो उपमा तुलसीदास ने रामचरित मानस में दी है, उसका जन्म ऋग्वेद में ही हुआ है । अथर्ववेद में भी वर्षा का सोलह छन्दों में सजीव चित्रण हुआ है ।[1]

रामायण का ऋतुकाव्य--

वाल्मीकि रामायण में ऋतुकाव्य विस्तार के साथ मिलता है । इसमें आदि कवि ने चार ऋतुओं का वर्णन किया है-- वर्षा[1], शरद[2], हेमन्त[3] और बसन्त[4] । ग्रीष्म तथा शिशिर का वर्ण नहीं हुआ है । रामायण का ऋतु वर्णन इतना सजीव है कि उसने कालिदास के ऋतुगीतों तक पर अपना प्रभाव डाला है ।[6] वाल्मीकि का ऋतुचित्रण प्रकृति का तटस्थ चित्रण नहीं है । आदि कवि ने उनका वर्णन मानव की चित्रवृत्तियों के सापेक्ष ही किया है । एक अर्थ में तो वाल्मीकि का ऋतुवर्णन कालिदास के ऋतुकाव्य से भिन्न भी है । कालिदास ने तो ऋतुसंहार में ऋतुओं को प्रेम के संभोग पक्ष का उद्दीपन बनाया है, जबकि वाल्मीकि के यहाँ वह प्रधानतः विरह की पीड़ा का उद्दीपन करते हैं ।

महाभारत और पुराणों का ऋतु काव्य--

महाभारत में छहों ऋतुओं का वर्णन मिलता है । वर्षा और शरद ऋतु के सजीव

---

1. ऋतु 7.103.1 तथा रामचरितमानस किष्किन्धा0 15.1
2. रामा0 2.63.14--19; 4.28.2-58
3. वही. 4.30
4. वही. 3.16.4.16
5. वही. 4.61

चित्रण किए गए हैं । पुराणों में भी छः ऋतुओं के वर्णन हैं किन्तु उनमें वर्षा, शरद और बसन्त के वर्णन मुख्य हैं ।[1]

<u>संस्कृत ऋतु काव्य में ऋतुसंहार का स्थान–</u>

कालिदास से पूर्व का साहित्य परम्परा ऋतु काव्य तो मिलता है परन्तु वह ऋतुसंहार की तरह स्वतन्त्र और स्वयं पूर्ण काव्य नहीं है । वह प्रबन्ध काव्य का एक भाग है । इस बारे में कालिदास साहित्य का समालोचन करने वालशे एक विद्वान का कथन है कि हम ऋग्वेद से लेकर महाकाव्यों तक ऋतु काव्य की परम्परा देखते हैं परन्तु इस लम्बी परम्परा में कहीं भी हमें भारत की छहों ऋतुओं का स्वतन्त्र वर्णन कालिदास से पूर्व कहीं नहीं मिलता । कालिदास से पूर्व के संस्कृत साहित्य में ऋतुओं के पूर्ण क्रमिक और स्वतन्त्र काव्य रचता है । उसने ऋतुओं को उनके प्राकृतिक रूप में चित्रित किया है । उसका ऋतुसंहार इस दिशा में सबसे प्रथम प्रयास है । कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा का प्रथम पुष्प प्रकृति अभिनन्दन में चढ़ाया है । यह उसकी जन्मजात प्रतिभा और तरूण हृदय की भावना है जो गीत बन गयी है ।

<u>ऋतुसंहार का साहित्यिक प्रभाव–</u>

कालिदास से भिन्न भारत के किसी अन्य कवि ने भी कोई दूसरा ऋतुसंहार लिखा हो, हम नहीं जानते । परन्तु कालिदास के इस ऋतुकाव्य से प्रेरणा लेकर परवर्ती कवियों ने अपनी प्रबन्ध रचनाओं में श्रेष्ठ ऋतु वर्णन किए हैं । हिन्दी साहित्य में कितने ही वसन्त गीत और वर्षागीत लिखे गए है ।

---

1. अमलधारी सिंह : कालिदास, पृ0 21

अरविन्द घोष ने कालिदास के ऋतुसहार का कोई समांतर तो अँगरेजी साहित्य में भी नहीं माना है । इस बारे में अरविन्द ने लिखा है:

कालिदास का ऋतुसंहार किसी भी साहित्य में प्रकृति सौन्दर्य के एकमात्र उद्देश्य से रची गयी संभवतः सबसे पहली रचना है । यह रचना अपने उद्देश्य की दृष्टि से 18वीं शतीं के अँगरेजी कवि थामसन के असफल ऋतुकाव्य जैसी है । दोनों के नाम मिलते हैं, आकृन्तियाँ भी मिलती हैं, दोनों काव्यों में प्रत्येक ऋतु के लिए एक एक सर्ग दिया गया है और रीति भी कम से कम इस अंश में एक सी है कि दोनों कवियों ने प्रत्येक ऋतु की विशेष प्रकार की प्राकृतिक छटा को अपना वर्ण्य विषय बनाया है । किन्तु सारी समानान्तरता इतने में समाप्त हो जाती है । दोनों काव्यों के बीच दूरी भी बहुत है । एक ओर ऋतु संहार है जो असाधारण प्रतिभा वाले विश्व के महान कवि की रचना है और दूसरी ओर अठारहवीं शती के एक दक्ष पद्यकार की कृति है । एक में बटोरी हुई शक्ति है तो दूसरी में निहित शक्ति है; एक में असाधारण समरसता और प्राचीन भारतीय कविता की सुन्दरता है तो दूसरी में अठारहवीं शती की घोर कृत्रिमता है ।[1]

अरविन्द के उपर्युक्त वक्तव्य का सार यह है कि कालिदास के ऋतुगीतों में जो सहज प्राकृतिक सौन्दर्य है वह आधुनिक युग का थामसन या कोई भी अन्य कवि ला ही नहीं सकता है । कृत्रिमता प्रधान आज के युग में ऐसी सहज प्राकृतिक सौन्दर्य चेतना संभव ही नहीं रह गयी है ।

---

1. अरविन्द घोष : कालिदास पृ0 23

<u>मेघदूत : द्वितीय गीतिकाव्य</u>

जब हम कालिदास के दूसरे गीतिकाव्य मेघदूत का अवलोकन करते हैं तो स्थिति बहुत कुछ बदल जाती है । कालिदास का यह गीतिकाव्य वैसे तो ऋतु विशेष का ही गीत है । किन्तु वर्षा के मौसम का यह गीत युवा कवि की इन्द्रिय संवेदनाओं को उत्तेजित कर देने वाले ऋतुचित्रों तक सीमित नहीं है । यह हृदय की गहरी अनुभूतियों को गीत के स्वर देने वाली रचना है । यह तरूण और अलहड़ या नौसिखिए कवि का गीत नहीं है । यह वास्तव में अत्यन्त प्रौढ और संयोग प्रेम के सुख से हटकर वियोग की आग में झुलसे संवेदनशील कवि की रचना है ।

मेघदूत युवा कालिदास की नहीं बल्कि प्रौढ कालिदास की गीति रचना है इस जानकारी के लिए भी हमें बाहरी प्रमाणों को जुटाने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती । स्वयं मेघदूत ही यह बताता है कि यह गीति रचना एक अत्यन्त अनुभव सम्पन्न प्रौढ कवि की काव्य रचना है ।

प्रथम बात तो ध्यान देने की यह है कि ऋतुसंहार में हम देखते हैं कि वहाँ प्रेम और श्रृंगार की उत्तेजनाएं प्रकृति के सुन्दर-सुन्दर उद्दीपन दृश्यों और कार्यव्यापारों के माध्यम से युवा मन को आन्दोलित करती हैं । मेघदूत में ऐसा नहीं है । वहाँ कामार्त्त हृदय में संचित प्रेम वासनाएं उत्तेजक प्रकृति रूपों में अपबीती झाँकती हैं । ऋतुसंहार प्रत्यक्ष दिखायी दे रही प्राकृतिक उद्दीपनाओं के गीत गाता है । मेघदूत पहले भोग लिए गए और बाद में खो गए प्रेम के गीत गाता है । ऋतुसंहार प्रकृति के उद्दीपनों से प्यार

के लिए उतावला हो उठने वाले तरूण मन की उत्कण्ठाओं का गीत है । मेघदूत प्रिय से दूर जा पड़े 'कामार्त्त' मन की यादों का गीत है । ऋतुसंहार तरूण मन के लिए प्रेम की अंगडाइयाँ लेना सिखाता है; मेघदूत प्यार के लिए आँसू बहाता है । दोनों गीति काव्यों की प्रवृत्ति का यह अन्तर यह बता देने के लिए पर्याप्त है कि पहला गीति काव्य काम व्यापारों का आरम्भ बिन्दु है और दूसरा प्रेम का चरम बिन्दु है । पहला तरूण है और दूसरा प्रौढ है । कालिदास के दोनों गीतिकाव्यों की तरूण और प्रौढ प्रवृत्ति को लेकर ऊपर जो कुछ हमने कहा है उसका सत्यापन हम ऋतुसंहार और मेघदूत की कुछेक गीति रचनाओं के अवलोकन द्वारा बड़ी सरलता से कर सकते हैं । ऋतुसंहार के तरूण कवि के मन को प्रत्येक ऋतु में प्रकृति के सुन्दर–सुन्दर उद्दीपन मथ डालते हैं । उसे किसी अजाने प्रेम व्यापार की और उत्सुक बनाते हैं, कहना चाहिए कि प्रेम का पहला पाठ पढ़ाते हैं । प्रकृति के उद्दीपन युवा मन को कैसे मथ डालते हैं यह ऋतुसंहार के इस ग्रीष्म गीत से जाना जा सकता है:

सचन्दनाम्बुव्यजनोद्भवानिलैः ।
सहारयष्टिस्तनमण्डलार्पणैः
सवल्लकीकाकलिगीतनिस्वनैः
विबोध्यते सुप्त इवाद्य मन्मथः ।[1]

सुगन्धित चन्दन जल में भिगाए पंखों की हवाएं, महकते फूलों की मालाओं से लसित उरोजों से मिलन, बीणा की सुरलहरी से संगति पाए मधुर कण्ठ गीत हृदय में सोए

---

1. ऋतु0 1.8

प्यार की नींद को झकझोर डाल रहे हैं ।

इसके विपरीत स्थिति हम मेघदूत के प्रेम की देखते हैं । वहाँ तो पहली गीतिका में ही जान लेते हैं कि यहाँ 'कान्ताविरहगुरू' शाप से अभिशप्त प्रेम की वेदना का गीत छिड़ने जा रहा है ।[1] यहाँ चन्दन जल से भीगी हवाएं और फूलमालाओं से महकते उरोज यादों की कहानी बन गए हैं । यहाँ सोया मन्मथ नहीं जा रहा बल्कि दूर जा पड़े प्रिय की कामवेदना जाग रही है । ऋतुसंहार के गीतों का प्रेम कामातुर तरूण है, मेघदूत के गीतों का प्रेम कामार्त्त प्रौढ़ हैं । यहाँ प्रकृति का उद्दीपन कामी मन को भोग के लिए उतावला नहीं कर रहा क्योंकि भोग का तो कोई आलम्बन ही यहाँ नहीं है । यहाँ तो प्रकृति का उद्दीपन 'कामार्त्त' व्यक्ति के मन को कुछ और से और ही कर रहा है । वह कुछ खोया-खोया और असामान्य सा हो उठता है । कालिदास का मेघगीत ऐसा ही बताता है:

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः ।
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किम्पुनर्दूरसंस्थे ।।[2]

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन गीत पंक्तियों में प्रौढ कवि का अनुभव बोल रहा है । इस तरह से प्रेम का मनोवैज्ञानिक दर्शन कोई युवा मन नहीं दे सकता ।

---

1. मेघ0 पू0 1
2. वही

प्रेम के मनोवैज्ञानिक दर्शन के बारे में हम कालिदास के प्रौढ़ मन की गहराइयाँ मेघदूत में अन्यत्र भी देख सकते हैं । मिलन प्रेम का एक सुखद पक्ष है एक मादक अनुभूति है । परन्तु यही मिलन का प्रेम यदि कहीं दुर्भाग्य से विरह की चपेट में आ जाए तो ? तब क्या यह हाथ से निकल जाता है या विनष्ट हो जाता है ? इसका उत्तर मेघदूत का प्रौढ़ कवि देता है, नहीं । वियोग में तपकर यही प्रेम का अम्बार बन जाता है:

स्नेहानाहु: किमपि विरहे ध्वंसिनस्तेत्वभोगात् ।
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ।।[1]

प्रेम के मनोवैज्ञानिक पक्षों के बारे में अर्थान्तरशैली से किए गए ऐसे सूत्रात्मक कथन कवि के अनुभवों की प्रौढ़ता के बिना संभव नहीं हो सकते । ऋतुसंहार के गीतों में ऐसा कोई सूत्रात्मक कथन कदाचित् ही उपलब्ध हो सके ।

**मेघदूत का स्वरूप और रचनाविधान:**

कालिदास ने अपने इस गीतिकाव्य अपनी कमनीय कल्पना से उपजाए किसी यक्ष के विरह गीतों को 121 गीतिकाओं में गाया है । कवि ने अभिशप्त विरही को विंध्य की 'रामगिरि' नाम की एक पहाड़ी पर एकान्त बसेरा में डाल दिया और उसकी प्रिया को हिमालय के कैलास शिखर की कल्पना नगरी अलका में रख दिया है । विरह की बेबसी और दोनों के बीच की यह लम्बी दूरी ! कवि की अद्भुत कलात्मक योजना है ।

विरह के इस गीतिकाव्य में कालिदास ने बडी चतुराई से दो उद्देश्य पूरे किए हैं।

---

2. वही. उ0 55

मुख्यतः तो विरह वेदना के गीत गाना है और दूसरा प्यार के गीतों के साथ अपने देश के उन सुन्दर–सुन्दर प्राकृतिक और नागरिक परिदृश्यों का सौन्दर्य चित्रण करना है जिसने उसने स्वयं कभी देखा है । इस तरह से यह गीतिकाव्य प्रिया के विरह और देश की माटी दोनों का गीत बन जाता है ।

अपने दोहरे मन्तव्य के अनुकूल ही कवि ने मेघदूत की गीतिकाओं को दो भागों में बाँटा है : पूर्व मेघ तथा उत्तर मेघ ।

पूर्व मेघ वाले भाग में वे सब गीतिकाएं आ जाती है जिनमें मेघ मार्ग में आने वाले माल देश, आमुकूट, नर्मदा प्रदेश, दशार्ण देश, तेजवती, उज्जयिनी, देवगिरि, चर्मण्वली, ब्रह्मावर्त आदि का सौन्दर्य वर्णन हो जाता है । उत्तर मेघ का वर्ण्य हिमालय का रोमांटिक सौन्दर्य, विरहिणी के मनोमोहक चित्र, प्यार का सन्देश, आत्म पीड़ा और बेबसी का वर्णन करने वाली गीतिकाएं हैं ।

अपनी इस योजना को कालिदास ने बड़ी चतुराई से विरही यक्ष के मुख से आरम्भ में कह डाला है :

मार्ग तावच्छ्रणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपम्,
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य ।।

पहले उत्तर भारत की रमणीय पर्वतों और नदियों का सौन्दर्य गान, उसके बाद प्यार का सन्देश ।

योजना के अनुसार रामगिरि से कनखल में उत्तरी गंगा तक 67 गीतियों में मार्ग के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण और उसके हिमालय के शिखरों की उड़ान, अलका सौन्दर्य, विरहिणी के भाव चित्र और संदेश 54 गीतियों में, बस इतना ही इस गीतिकाव्य का आकार है ।

**प्रबन्ध नहीं गीति काव्य–**

मेघदूत में वैयक्तिक हर्ष शोक की अभिव्यंञ्जना में आधार रूप में आख्यान का आग्रह रहते हुये भी, गीति तत्व की प्रचुर मात्रा है । संगीतात्मकता, आ0 आत्माभिव्यञ्जना रसानुभव, सौन्दर्यकल्पना, प्रेम वर्णन, प्रकृति चित्रण, जीवन चित्र, भाषा सौष्ठव अल्प माधुर्य आदि गीति काव्य के प्रधान तत्व सभी मेघदूत में पाये जाते है ।

मेघदूत के प्रत्येक गीत में काव्य तत्व और संगीत एक स्तर पर स्थित है । सर्वत्र संगीतात्मकता के आधार पर अन्तः दर्शन, आत्मनिश्चयता, आत्मानुभूति, आत्माभिव्यक्तिता और भावानुकूलता का आग्रह वर्धनमान है । वियोग श्रृंगार की पुष्टि के लिये [illegible] अनुकूल मन्दाक्रान्ता छन्द की व्यवस्था की है । जो विरह वर्णन के लिये एक रूप चलने वाली गति के कारण अद्वितीय है । सजीव भाषा द्वारा वैयक्तिक अन्तभावों की सूक्ष्म अभिव्यञ्जना, संगीतात्मकता के आग्रह के साथ जिसमें होती है वो गीतिकाव्य है गीतिकाव्य में संगीत बाह्य आरोप नहीं, अन्तर्निहित प्रवाह है । मेघदूत में हम देखते है कि उसके प्रत्येक गीति में शुष्क कल्पना की ऊँची उड़ान नहीं छन्द और अलंकार का कृत्रिम आग्रह नहीं बल्कि सरल शब्दों में अन्तर्दशा की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति है । मेघदूत की पंक्तियों का संक्षेप में मन ही मन पढ़ते समय ही संगीतात्मकता का आवेश बना ही

रहता है । इस अर्न्तनिहित संगीत की समन्वित अनुभूति मेघदूत में इसलिए होती है कि कवि में शब्दों के पारस्परिक संघ और मेल में चमत्कारिक काव्य विधान से काम लिया है, जिसमें संगीत तत्व [illegible] लयात्मक अनुभूति समाहित प्रवाह एवं भावना प्रसाद की अद्भुत उपयुक्तता आ गइ है अतएव कालिदास ने मेघगीत गीतात्मकता के अधिक समीप है । कारण इसका स्पष्ट है, कथावस्तु गौण भावगीत मुख्य है ।

**मेघदूत का उत्स:**

मेघदूत की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त शब्दों में प्रस्तुत की जा सकती है । कहानी केवल यह कि कोई अभिशप्त यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी की अस्वस्थ्य हेतु मेघ के द्वारा संदेश प्रेषित करता है । यद्यपि इस कथानक की टोह में अनेक विद्वानों ने भरसक प्रयत्न किये है । किन्ही ने पुराणों के पृष्ठ पलटे तो औरों ने लोकवृन्त का सहारा लिया । कतिपय विद्वान ने यह अनुमान लगाया कि यह कृति वाल्मीकि रामायण के मारूत की लंका यात्रा से अनुप्रेरित होकर निर्मित हुयी है । इसके समर्थन में ऐसे महान भाव "इत्यारव्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा"[1] इस पंक्ति को भी प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते है । कतिपय विद्वानों का यह अनुमान है कि यक्ष का स्पष्ट नाम न देकर सामान्य कश्चित् शब्द का प्रयो कपि के द्वारा किया जाना रहस्य गर्भित है और इस तरह वह यक्ष दम्पत्ति के ब्याज से अपना ही वैयक्तिक विरह वेदना व्यक्त कर रहे है ।

कुछ विद्वान वैवर्तपुराण के यक्ष की मेघदूत के यक्ष के साथ एक रूपता प्रमाणित

---

1. पू0मे0 1

करते हैं । श्री जखभोला न इसका खण्डन किया है । वे महाकवि कालिदास के और ब्रह्मवैवर्तपुराण के यक्ष के सन्दर्भ में लिखते हैं कि यह यक्ष गढ़वाल से बाहर नहीं गया । मेघदूत का यक्षनासिक से सन्देश भेजता है । (ध्यातव्य है कि विद्वान लेखक श्री जखमोला रामगिरि को नासिक में मानते है । [1]

अस्तु कथा सूत्र की प्रेरणा और पात्र चाहे जहाँ से लिए हों, मेघदूत की कथावस्तु कवि की स्वयं कल्पना की उपज है । अलका और रामगिरि कवि का सारा का सारा मेघदूत उत्तर भारत का मानचित्र है । लगता तो ऐसा है कि किसी कारणवश महाकवि ने दो स्थानों को रहस्यमय ही रखा हो । रामगिरि और अलका न आजकल कवि समुख वर्णित अलका के दर्शन होते है और न ही अभी तक निर्णयात्मक रूप से रामगिरि की ही सही खोज हो सकी । विद्वानों ने रामगिरि को लेकर वैमव्य है डॉ0 मिराशी, वासुदेवशरण अग्रवाल आदि अनेक विद्वान रामगिरि दक्षिण भारत स्थित रामटेक को मानते है तो आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि सर्वभुजा की पहाड़ियों में उसकी टोह करते है । कालिदास की कृतियों के टीकाकार श्री मल्लिनाथ एवं आचार्य सीताराम चतुर्वेदी रामगिरि चित्रकूट (उत्तर प्रदेश) को उल्लिखित करते है । कुछ भी हो हमारा कहना यह है कि कवि ने इन दोनों स्थानों को जानबूझकर रहस्य गर्भित रखा है । अन्यथा महाकवि का भौगोलिक ज्ञान भी अद्वितीय था ।

<u>सन्देशवाह का अभिनव प्रयोग</u>–

कृति में अन्तः साक्ष्य से कथा सूत्र से यह अवश्यक हस्तगत होता है कि मेघदूत

---

1 सदानन्द जखमोला, महाकवि कालिदास, पृ0 85

की कथानायक को एक वर्ष का शाप उसके स्वामी से मिला था जिससे एक वर्ष पर्यन्त उसको प्रवासी बनना पड़ा ।[1] एवमेव उत्तरमेघ के एक श्लोक से यह भी अवगत होता है कि उसका शापान्त देवोत्थायनी एकादशी को होना था । इसी अन्तराल में वो अपने अभिशप्त का समय यापन करता है । किन्तु आषाढ़ के प्रथम दिन मेघ दर्शन से वो इतना उदीप्त हो जाता है कि उसको विरहोन्माद में यह तक नहीं सूझता कि उसकी विरह वेदना का सन्देश ले जाने में कौन समर्थ है । कालिदास स्वयं इसका उल्लेख करते है कि यह जानते समझते हुए भी कि मेघ घूम ज्योति जलवायु इनका समाहार ही मेघ है जो चेतना रहित है फिर उससे सन्देश प्रेषण का कार्य कैसे हो सकता है क्योंकि दूत कर्म तो किसी कुशल चेतन प्राणी के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है लेकिन विरह व्यथित यक्ष को यह समझने बूझने का समय कहाँ क्योंकि कार्मात् व्यक्ति चेतन और अचेतन का भेद ही नहीं कर पाता है ।

इस तरह हम देखते है कि अभिशप्त यक्ष मेघ को ही इव बनाकर अपना सन्देश अपनी प्रियतमा तक पहुँचाता है किन्तु इस कार्य में यक्ष की बुद्धि बहुत सावधान है । वह बड़ी बारीकी के साथ यक्ष को कार्य निर्देशन करता है कि किस मार्ग से वह अलका पहुँचेगा पूरे पूर्वमेघ में इसी कथानक का अंकन है एवं उत्तर मेघ में यक्ष द्वारा अपने भवन एवं पत्नी के प्रत्यायन के पश्चात् सन्देशद्रव्य कथ्य का अंकन है । यही है मेघदूत का कथानक जो कथानक की दृष्टि से साधारण किन्तु विरहोदगार की अभिव्यञ्जना में विश्व के विरह काव्यों में अद्वितीय बन पड़ा है । इस सन्दर्भ में डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल की निम्नलिखित

---

1. पूर्व मेघ 75

पंक्तियॉ अध्येतव्य है-- ''जब तक मानव उद्यान यौवन से धनी है, जब तक विधाता ने उसके प्राणों के संगीत को स्त्री नामक शक्ति की रहस्यमयी शक्ति के साथ संयुक्त कर रखा है जिसके कारण वह चक्रवाकी से विरहित चक्रवाक के समान केवल अपने में नहीं रमता, तब तक मेघदूत इस संगीत का माधुर्य अक्षुण्ण है उसकी व्याकुलता मानव हृदय को निजी टीस के रूप में प्रिय लगती रहेगी ।[1]

यद्यपि कालिदास का शाकुन्तल उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति घोषित है किन्तु मेघदूत में कवि जिस प्रकार अपने अर्न्तमन में निगूढ़ भावों को शब्दों के द्वारा रूपायित किया है । वो बेजोड़ है । मेघदूत के सन्दर्भ में विश्वकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर की निम्नांकित पंक्तियॉ कितनी सटीक है-- कविवर !

कब, कौन, विस्मृत वर्ष था,
आषाढ़ का कौन सा प्रथम पवित्र दिन
जब तुमने मेघदूत लिखा था;
विश्व में जितने भी विरही है;
उन सब के शोक को,
तुम्हारे मेघमन्द्र लोक में
सघब संगति में पूँजीभूत करके
अपनी अँधेरी तहों में छिपा रखा है ।[2]

---

1. डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल, मेघदूत एक अध्ययन, पृ0 06
2. रवीन्द्रनाथ की कविताएँ, पृ0 32

<u>कालिदास प्राकृतितः गीताकार–</u>

कालिदास एक महान् नाटककार है क्योंकि उसने श्रेष्ठ नाटक रचनाएं की हैं । कालिदास के नाटक रम्य हैं क्योंकि नाटककार ने उनमें रमणीय गीतों की योजना की है ।

कालिदास एक अद्वितीय महाकाव्यकार हैं क्योंकि उसने रसपेशल प्रबन्धात्मक महाकाव्यों की रचना की है । उसके प्रबन्धकाव्य रमणीय हैं क्योंकि उनमें कवि ने अवसर मिलते ही रमणीय गीतों की योजना की है ।

कालिदास एक अद्भुत गीतिकाव्यकार है क्योंकि वह मूलतः एक गीतकार है ।

कालिदास के बारे में ऊपर जो कथन किए गए हैं वे कालिदास के काव्य सौन्दर्य के प्रशंसक टीकाकारों, व्याख्याकारों अथवा अनुवर्ती साहित्यकारों के उद्धरण नहीं हैं वे कालिदास के कवित्व की मूल प्रवृत्ति पर आधारित कथन हैं ।

कालिदास के काव्य के मर्म को पहचानने वाले कवि और समीक्षक भी उसके काव्य की जिन विशेषताओं को सर्वाधिक महत्व देते रहे हैं, वे विशेषताएं भी हमारे इस महान कवि को मूलतः एक गीतकार ही सूचित करती है । कालिदास के जिस श्रृंगार लालित्य की बाण जैसे कवि कहीं कोई तुलना नहीं देखते श्रृंगार का वह लालित्य एक गीतकार की कविता में ही होता है । कहने को तो गीत–रचनाएं देवी–देवताओं की स्तुतियाँ भी हो सकती हैं, वे चारणों के गीत भी हो सकते हैं और वे शोकगीत भी हो सकते हैं । परन्तु गीतकार की आत्मा के असली तार जिन गीत रचनाओं में बजते हैं वे गीत ललित श्रृंगार के ही होते हैं । मानव जीवन का काम तन्त्व अर्थात् मनुष्य की प्रेमवासना ही गीत की उत्पन्ति भूमि है ।

प्रेमवासना के आवेग से ही मिलन गीत पैदा होते हैं और प्रेम के आलम्बन के वियोग से ही विरह–गीत पैदा होते हैं । दोनों ही प्रकार के गीतों का प्राण–श्रृंगार का लालित्य है ।

गीत रचनाओं में जिन्हें हम शोकगीत कहते हैं, उनमें भी यदि हम गहराई से विचार करें तो श्रृंगार का स्वर अन्दर ही अन्दर बहता मिलता है । इस तरह के शोकगीत ही सबसे अधिक मर्मस्पर्शी होते हैं । इसका अभिप्राय यह नहीं समझ लेना चाहिए कि कामवासना का जो आलम्बन है उसके नष्ट हो जाने पर ही शोकगीत निकलते हैं, शोकगीत वात्सल्य आदि के आलम्बन के नष्ट हो जाने पर भी पैदा हो सकते हैं परन्तु गीत के रूप में उनका प्रभाव वैसा गहरा नहीं हो सकता जैसा कि प्रेमालंबन के वियोग से उत्पन्न गीतों का होता है । कालिदास के शोकगीतों का यही जादू है कि उनके शोक में अन्दर ही अन्दर रति भाव बहता है जो गीत के पाठक या श्रोता को मोह लेता है । कालिदास के इस तरह के शोक गीतों के रूप में हम कुमार–संभव के रतिविलाप और रघुवंश के अजविलाप को ले सकते हैं ।

कालिदास के काव्य की एक अन्य असाधारण विशेषता कवि की उपमाओं का चयन माना जाता है–– उपमा कालिदासस्य । उपमा को यहाँ केवल एक अलंकार नहीं बल्कि सादृश्यविधान के सभी प्रकारों के रूप में समझना होगा । कुछ कविगण सादृश्य विधान को एक यान्त्रिक रीति से अपनाते हैं । उनकी उपमाएं और अप्रस्तुत बलात् थोपे से प्रतीत होते हैं । वे वास्तव में कविता में कोई रमणीयता और ताजगी नहीं ला पाते । इस तरह के उपमाविधान से काव्यार्थ में कोई चमक नहीं आती और उसकी गति मन्द पड़ जाती है । पाठक का मन ऐसे काव्य से ऊब जाता है । माघ और भारवि की कविता में ऐसा दोष पाया जाता है । कालिदास के रहस्य विधान में यह दोष नहीं है ।

कालिदास का उपमा विधान गतिशील है, बिम्बों की ताजगी से भरा है । इसीलिए मन को मोह लेता है । उपमाओं के प्रति ऐसी भावुकता एक अच्छे गीतकार में ही होती है । जिस तरह से उसका गीत आवेगी होता है, उसी तरह उसके गीत की भाषा आवेगी होती है । उस भाषा में ठहरे हुए उपमानों को और गति की मन्दता कोई स्थान नहीं दिया जा सकता । कालिदास के काव्य में मन्दता का कोई स्थान नहीं है । उसके प्रबन्ध काव्यों में जहाँ पौराणिक आख्यान की वर्णना से मन्दता आती प्रतीत होती है वहीं कालिदास के अन्दर का गीतकार छटपटाने लगता है । वह अपनी कल्पना से ऐसा कथ्य सृजन करता है जहाँ कल्पना की कमनीयता और अनुभूतियों की मुक्तता उसकी कविता को गीत का प्रभाव दे देती है । इससे सारा काव्य रसपेशल प्रतीत होने लगता है ।

कालिदास के अन्दर का गीतकार यह बात अच्छी तरह जानता है कि कविता में गेयता और भावों की तरलता जितनी अधिक होती है, उतनी ही अधिक वह कविता मनोहारी होती है । यह बात जितनी मुक्तक और गीत के बारे में सच है उतनी ही प्रबन्धकाव्य के बारे में भी सच है । संस्कृत कविता की तो बात ही कुछ और है, यह सच्चाई लोक भाषाओं के काव्य पर भी लागू होती है । हम आज की नयी कविता को देख सकते हैं । इस नयी कविता का स्वरूप मुक्तक जैसा है । यहाँ तक कि उसमें छन्द का भी कोई बन्धन नहीं है । फिर भी आज की नयी कविता पाठकों के गले का हार नहीं बन पा रही है । ऐसा केवल इसीलिए है क्योंकि इस नयी कविता में गीत का कोई सौन्दर्य नहीं है । न इसके पास कोई छन्द है, न कोई लय और न कोई धुन । कोई एक विचार होता है जो

भावना और अनुभूति की गहराई भी नहीं रखता है । इस तरह से यह एक विचार की कुछ असामान्य शैली की अभिव्यक्ति भर होकर रह जाती है ।

इसके विपरीत स्थिति हम कालिदास के काव्य में देखते हैं । वहाँ प्रबन्ध काव्य में भी हमारा यह महान गीतकार गीत का जादू नहीं भुलाता । उसके कुमार संभव के हिमालय वर्णन में हम देखते हैं कि वहाँ भी गीत की तरलता है । उसका हिमालय कन्दराओं के मुख से बहने वाले समीरण से छिद्रों वाले बासों की बंशी बजाकर किन्नर सुन्दरियों के संगीत की तान संगति करता है:

य: पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्‌गास्यतामिच्छति किन्नराणांमनंग लेखक्रियययोपयोगम् ।।[1]

अपने प्रबन्धकाव्य के पौराणिक इतिवृत्त की नीरसता से उभरने के लिए बसन्त गीतों की रचना करता है । उसके बसन्त गीतों के बिम्ब और मादक अनुभूतियाँ अच्छे से अच्छे हिन्दी गीतों को मात देने वाले है । उसके बसन्त गीत में मधुप अपनी प्रिया के साथ एक ही पुष्प की प्याले में मधुपान करता है और काल हिरन प्रेम में खिंचा अपनी प्रेयसी को गुदगुदाता है:

प्रेम वासना के ऐसे ही गहरे चित्र हम शिव की दीवानी पार्वती की साधना में पाते हैं । वहाँ भी कालिदास की कविता प्रबन्ध वर्णना न होकर गीत बन जाती है :

---

1. कुमार0 1.8

**उपान्तवर्षे** चरिते पिनाकिनः सबाष्पकण्ठैः स्खलितैः पदैरियम् ।

अनेकशः किन्नरराजकन्यका वनान्तसंगीतसखीररोदयत् ।।[1]

कविता का कोई भी सहृदय पाठक जान सकता है कि कालिदास के इस छन्द में गीत पोर-पोर से गूँज रहा है ।

रघुवंश यद्यपि प्रौढ़ मानसिकता वाले कालिदास की रचना है; इसमें गीतों की उतनी अधिक ताजगी नहीं है, परन्तु इस प्रबन्ध काव्य में कालिदास के गीतकार का मन पूरी तरह सूखा नहीं । इस महाकाव्य में भी उसकी कमनीय कल्पना का लालित्य, इन्द्रिय संवेदनों को तृप्त करने वाले बिम्बों की योजना और मधुर ध्वनियों के प्रयोग अनेक स्थलों पर महाकवि की कविता में गीत का आस्वाद पैदा कर देते हैं । रघुवंश के द्वितीय सर्ग में नन्दिनी की गोचर यात्रा, नवम् सर्ग में वसन्त सुषमा तथा त्रयोदश सर्ग में पुष्पक की व्योमयात्रा में हम सुन्दर गीतों का आनन्द ले सकते हैं । रघुवंश के वसन्तगान में कालिदास ने ध्वनियों के यमक से जैसा संगीत पैदा किया है, वह देखते ही बनता है ।

कालिदास के प्रबन्धकाव्यों में हुए गीत प्रयोगों से हटकर जब हम उसके नाटकों की ओर बढ़ते हैं तो पाते हैं कि वहाँ भी कालिदास का गीतकार नाटकों में अद्भुत रमणीयता भर गया है । नाटक वैसे तो गद्य रचना ही होती है परन्तु जहाँ कहीं पात्रों की भावुकताभरी मानसिकता होती है वहाँ नाटककार गीतों का प्रयोग करके अपनी रचना को प्रभावी बनाता है नाटकों में गीतों के महत्त्व को हम आज की फिल्मों में हो रहे गीतों के प्रयोग से पहचान

---

1. कुमार0 5.56

सकते हैं । आज फिल्म का संवाद लेखक कोई है, गीत लेखक कोई है और उसका गान करने वाला अन्य कोई हैं । यह सब गीत के असाधारण सौन्दर्य के कारण होता है ।

नाटक में तो गीत ही नहीं पूरी संगीत योजना होती है । वहाँ गीत के अनुसार ही बाद्य और नृत्य भी होते हैं । यह तीनों अंग मिलकर ही संगीत कहे जाते हैं--

गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यहे ।

कालिदास का गीत और संगीत कितना प्रिय है यह तो उसके मालविकाग्निमित्रम् नाटक में आयोजित मधुर नृत्य-संगीत प्रतियोगिता से समझ सकते हैं ।

जब हम विक्रमोर्वशीय नाटक को देखते हैं तो वह नाटक तो गीतों के प्रभाव की दृष्टि से बेजोड़ लगता है । उसमें उर्वशी के लिए भटकते पुरुरवा के गीत तो अनुपम प्रणयगीत हैं ही, उनसे भी बढ़कर एकाकी भटकते पुरुरवा के जो भावचित्र पार्श्वगान से उभारे गए हैं, वे तो गीत साहित्य की अमर थाती कहे जा सकते हैं । वीणा की संगति मिल जाने पर तो उन गीतों में चार चाँद लग सकते हैं ।

अभिज्ञान शाकुन्तल के चमत्कारी प्रभाव में कालिदास की गीतियों का सबसे अधिक योगदान है । नाटक में सुन्दर गीत का प्रयोग श्रोताओं का मन कैसे चुरा लेता है, यह बात शाकुन्तलम का नाटककार स्वयं नाटक के आरम्भ में ही बता देता है :

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसंभ हृतः ।

शाकुन्तल में कालिदास के गीत सबसे अधिक हृदयस्पर्शी दो रूपों में मिलते हैं । प्रथम रूप तो उन प्रेम गीतों का है जहाँ प्रिय और प्रेयसी एक दूसरे के प्रथम मिलन के

उत्कण्ठा के क्षणों को भोग रहे है । इन प्रेमी दुष्यन्त के गीत भावनाओं के स्तर पर और ध्वनियों के माधुर्य में आज के श्रेष्ठ कोटि के फिल्म गीतों से कम प्रभावी नहीं है ।

शाकुन्तला के प्रेमलेख तो किसी प्रेम गज़ल का एक छोटा सा शेर ही प्रतीत होताह

तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रिमपि ।
निर्घृर्ण तपति बलीयस्त्वयि वृन्तमनोरथान्यंगानि ।।

तुम्हारा दिल मैं नहीं जानती लेकिन तुम्हारे प्यार में काम मुझे रात दिन जला रहा है ।

शाकुन्तला में प्रेम गीत का एक दूसरा रूप विप्रलम्भ गीत का है । वह गीत भी शाकुन्तला के प्रेमगीत के सदृश्य ही लघु किन्तु वैसा ही प्रभावी है । यह गीत राजमहिषी वसुमती का है ।

अभिनव मधुलोलुपो भवांस्तथा परिचुम्बय चूतमंजरीम् ।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ।।

मधुलोलुप भौंरे तुम चूतमञ्जरी का बार--बार चुम्बन रस पीकर कमल पांखुरियों में जा रम गए । कैसे निर्दय हो ? इसे भूल गए ।

शाकुन्तल में ही कालिदास के गीतों का हम एक अन्य प्रभावी रूप भी पाते हैं । वे गीत विदा होती बेटी के वियोग ताप क गीत है । कालिदास के इन गीतों की धरती भारतीय जीवन के लोकगीतों की धरती है । प्रायः प्रायः वहीं मर्मस्पर्शी कथ्य और वैसा ही मर्मस्पर्शी शिल्प । इस बवसर के लोकगीत आज भी वैसा ही स्वर अपनाए हुए है ।

बेटी की विदा पर वे ही सीख और वे ही आँख । कालिदास के अन्दर का गीतकार इन सबसे गहरे जुड़ा और उन्हें अपने गीतों में भर लिया ।

<u>निष्कर्ष</u> :-

कालिदास के समग्र कवित्व हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि कालिदास वास्तव में गीतकार पहले है प्रबन्धकार और नाटककार बाद में । इस महान कवि की सम्पूर्ण काव्य साधना का सबसे अधिक प्रभावी पक्ष उसका गीतिकाव्य ही है । ऋतुओं ने उसके गीतों को रूप रंग रस गन्ध स्पर्श सब कुछ दिए, गीत और संगीत दिए और उसके कवि मन को असाधारण रूप से तरल बना दिया । अनुभूतियों की इस तरलता ने उसके गीतों की वाणी को भी तरल बना दिया । भाव और भाषा की तरलता ने ही कालिदास को महान गीतिकार बना दिया जिसके ऋतुसंहार और मेघदूत जैसे प्रिय गीतिकाव्य रचने का गौरव प्राप्त किया ।

---

## षष्ठ अध्याय

## ऋतुसंहार: कथ्य एवं शिल्प

ऋतुसंहार कालिदास का ऋतु गीतियों का मधुर काव्य है ।इस गीतिकाव्य में भारत की छः ऋतुओं के सुरम्य सौन्दर्य चित्र अंकित हुए है । यह गीति काव्य छः सर्गो में उप निबद्ध है ।

ऋतु वर्णन करने की अभिप्रेरणा कवि को कैसे प्राप्त हुई कवि के अन्र्तमन में किसी विशिष्ट कथानक के बिना ही माता ऋतुओं के प्राकृतिक सौन्दर्य को रूपाहित करना क्यों अभिप्रेत हुआ , इस विषय में कुछ विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है । यह तो कालिदास प्रत्ये पाठक जानता है कि हमारा यह कवि प्रकृति का उन्मुक्त गायक है अपनी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यंजना के लिये उन्होंने अपनी प्रत्येक कृति में देश की प्रकृति के सौन्दर्य चित्रों को मनोहारी माध्यम बनाया है ।यही नहीं मानव जीवन और प्रकृति की सामरस्य को भी उसने इसी व्यापक दृष्टि से ग्रहण किया है ।ऋतुसंहार में भी कवि की इसी प्राकृतिक चेतना का परिचय मिलता है ।सच तो यह है कि कालिदास की कवि चेतना भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा से अभिभूत है । प्रकृति के सौन्दर्य चित्रों में वह भारत भूमि के रंगीन चित्र इन्द्र धनुषी चित्र देखता है और आह्लादित होता है । हम यह देखते हैं कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति का भी यह स्वभाव पाया जाता है कि वह किसी सुन्दर वस्तु या व्यक्ति विशेष को देखकर प्रसन्न ही नहीं होता प्रत्युत उसके हृदय से उसके सौन्दर्य को प्रंशसा के उद्‌गार भी निःसृत होने लगते हैं । इतना ही नहीं वह सौन्दर्य में स्वयं अवगाहित हो । दूसरों

को भी अवगाहन हेतु आमन्त्रित करता है । युवा कवि कालिदास भी भारत की ऋतु सुष्मा से अनुप्रणित एवं अभिप्रेरित होकर यदि ऋतु गीत गाने बैठ गया, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं । कालिदास का ऋतुसंहार वस्तुतः प्रकृति वर्णन का सूत्र ग्रन्थ है और उनकी अन्य कृतियाँ इसका भाष्य हैं ।

ऋतुसंहार का कथ्य

कालिदास ने अपने ऋतुसंहार में ग्रीष्म ऋतु से आरम्भ कर बसन्त तक छः ऋतुओं का वर्णन किया है । इसके ऋतु गीतों में प्रकृति के सौन्दर्य का उद्दीपक रूप ही एकमात्र कथ्य है । उसमें किसी कथावस्तु की कोई इतिवृतात्मक टोह करना अनावश्यक है । ग्रीष्म आदि ऋतुओं के स्वरूप उनके स्वभाव तथा मानव जीवन पर पड़ने वाले उनके उद्दीपन प्रभाव को ही इस गीतिकाव्य का परम काव्यार्थ कहा जा सकता है । गीतिकार प्रथम सर्ग के ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में गीतिकार अपनी प्रियतमा को प्यार भरा सम्बोधन कर कहता है प्रिये देखो, यह घोर गर्मी का मौसम है । इस ऋतु में सूर्य बहुत ही प्रचण्ड हो जाता है, चन्द्र किरणें सुहानी लगती हैं, जल में स्नान करना भला लगता है । सांयकाल बड़ा रमणीय हो जाता है क्योंकि उस समय सूर्य का ताप नहीं सताता । काम भावना भी प्रायः शिथिल पड़ जाता है ।[1] संभवतः इस सन्दर्भ में युवा कवि की यह सूचना रही हो कि ऋतु राज बसन्त में कामोद्रेक द्विगुणित हो जाता है । अतएव बसन्त की परिसमाप्ति और निदाघ के

---

1 ऋतुसंहार 1.11

आरम्भ में काम शैथिल्य स्वाभाविक है ।

वसन्ते द्विगुणः कामः ।[1]

गर्मी की रात में चन्द्र किरणों से रात्रि की कालिमा क्षीण हो जाने से चाँदनी राते बहुत ही सुहावनी लगती है । ऐसे ही उष्णकाल में जिन भवनों में जल यन्त्र (फब्बारे) लगे रहते हैं, वे भी अति मनोरम लगते हैं । ठण्डक देने वाले चन्द्रकान्त मणि और सरस चन्दन का सेवन अति सुखकर लगता है ।[2]

ग्रीष्म की चाँदनी रातों में धवल भवनों की छतों पर सुख से सोई ललनाओं के मुखों की कांति को देखकर चन्द्रमा बहुत ही उत्कण्ठित हो जाता है और रात्रि समाप्ति की वेला में उनकी सुन्दरता से लजा कर फीका पड़ जाता है ।[3]

ग्रीष्म ऋतु में मयूर, सूर्य के आतप से इतने परितप्त हो जाते है कि अपने पंखों की छाया में धूप निवारण के लिए आ छिपे साँपों को भी नहीं खाते, जबकि यह सर्प उनके भक्ष्य है ।[4]

जंगल में फैली हुयी दावाग्नि का भी सरस चित्रण कवि करता है । पर्वत की गुफाओं में हवा का जोर पकड़कर दवानल बढ़ रहा है । सूखे बाँसों में चर–चर की आवाज आ रही है क्योंकि जलने से ये शब्द करते है । जो अभी दूर थी वही दावाग्नि सूखे तिनकों में फैलकर बढ़ती ही जाती है । इसी तरह से इधर–उधर घूमने वाले हरिणों को व्याकुल कर

---

1. ऋतुसंहार चन्द्रिका टीका पृ0 2
2. ऋतुसंहार 1.2
3. वही. 1.9
4. वही. 1.13

देती है ।[1] इस तरह से कवि ने प्रथम सर्ग में ग्रीष्म ऋतु का हृदयहारी वर्णन किया है ।

द्वितीय सर्ग में कवि वर्षा ऋतु का वर्णन करता है । कवि कहता है कि वर्षा का मौसम कामी जनों को प्रिय होता है । वर्षा का मौसम एक राजसी ठाठ-बाट से आता प्रतीत होता है । राजा का वाहन यदि हाथी होता है तो वर्षाकाल का वाहन मेघ है । राजा के आगे-आगे ध्वज-पताकायें फहराती हैं तो यहाँ बिजली की पताकाएं फहराती है । राजा की यात्रा में नगाड़े बजते हैं तो यहाँ वज्रपात के शब्द नगाड़े का काम करते हैं ।[2]

वर्षा ऋतु का पवन जो कदम्ब, सर्ज, अर्जुन, केतकी वृक्षों को झकझोरता है । वन उनके पुष्पों के सौरभ से सुगन्धित है । मेघों के सीकरों से शीतल है । वह किसे सुहावना नहीं लगता ।[3]

अन्त में कवि कहता है वर्षा काल अनेक गुणों से चिताकर्षक होता है । अंगनाओं में चित का हरण करने वाला है । वृक्ष लता वल्लरी, वृक्ष आदि का मित्र है और प्रेमियों का जैसे प्राण ही है ।

तृतीय सर्ग में शरद् ऋतु का चित्रण है । गीतकार शरद् को नववधू की तरह चित्रित करता है । वह कहता है, प्रिये, देखो, अपने रूप सौन्दर्य से रमणीय नववधू की तरह यह शरद आ गई । फूले हुए कांस के फूल ही इसकी साड़ी है । सरोवर में खिले हुये कमल

---

1. ऋतुसंहार 1.25

2. ऋतुसंहार 2.1

3. वही. 2.17

इसका सुन्दर मुख है, और हँसों की आवाजें ही इसके नुपूरों की रूनझुना है । पके हुए धन के पौधे के तरह यह गोरी है, और लचकदार शरीर वाली है ।[1]

प्यारी इस ऋतु में कांस पुष्पों से पूरी पृथ्वी सफेद दिख रही है, रातें चन्द्र किरणों से धवल कान्ति वाली हैं, हँसों के द्वारा सरिताओं का जल उज्जवल है, सरोवर प्रफुल्ल कुमुद के फूलों से श्वेताभ दिख रहे है । वनभाग सप्तच्छद के फूलों से और उपवन मालती पुष्पों से श्वेतता लिए हुए है ।[2]

वर्षाकाल चला गया है । मयूरों का नृत्य अब नहीं दिखाई पड़ता, उसके स्थान पर अब हंसावलि शोभित हो रही है । वर्षा में फूलने वाले कदम्ब, कुटज आदि तरूओं की शोभा अब क्षीण प्राय है । अब उसके स्थान पर सप्तच्छद वृक्षों में पुष्प सौन्दर्य बिखर रहा है ।[3]

चतुर्थ सर्ग में हेमन्त वर्णन है । गीतकार ऋतु के नये-नये चित्र प्रस्तुत करता है । वह बोलता है, प्रिये, हेमन्त काल में ठण्डक की वजह से विलासिनी स्त्रियाँ अपने बाहुओं में केयूर और बलय आदि आभूषण नहीं धारण करती, नितम्बों में नवीन वस्त्र एवं पयोघरों पर सूक्ष्म रेशमी वस्त्र धारण नहीं करती ।[4]

प्रियंगु लता ठण्ड से पक गई है । वह ठण्डी हवा से काँप रही है और उत्तरोत्तर पीली पड़ती जा रही है । यह बेचारी अब विरहणी स्त्री सी पीली हो रही है ।[5]

---

1. ऋतुसंहार, 3.1
2. वही. 3.2
3. वही. 3.13
4. वही. 4.13
5. वही. 4.16

पञ्चम सर्ग में कवि शिशिर का हृदयहारी वर्णन करता है । वह कहता है प्रिये जाड़े की ऋतु में चन्दन, जो चन्द्र किरणों की तरह शीतल होता है बिल्कुल अच्छा नहीं लगता । भवनों की छत ठण्डक के कारण सुहावनी नहीं प्रतीत होती । जाड़े की बर्फीली हवा भी नहीं सुहाती ।[1]

इस शिशिर काल में मीठा भोजन अच्छा लगता है । स्वादिष्ट भात, ईख का रस भी सुखकर होता है । इस काल में बिलासिनी की रमणेच्छा बलवती हो जाती है । जिनके पति बाहर हैं ऐसी युवतियों के चित्त को शिशिर काल व्यथित कर देता है ।[2]

षष्ठ सर्ग में गीतकार वसन्त को एक आक्रामक योद्धा की तरह चित्रित करता है । बोलता है, प्रियतमे ! देखों यह वसन्त योद्धा कामी जनों के मन को बेधने के लिए आ गया इस वसन्त योद्धा के वाण आम के बौर है और उनमें घूमती हुयी भ्रमर पंक्ति ही घनुष की डोरी है ।[3]

प्रिये, यह बसन्त ऋतुराज है । यहाँ सब सुन्दर ही सुन्दर है । तरू कुसुमों से लदे हैं । जलाशय कमल पुष्पों से सुशोभित हैं, ललनाएँ कामातुर हैं, पवन सुगन्धित है । सुबह से शाम तक सारा दिन रमणीय लगता है ।[4]

प्रिये, बसन्त में वसुन्धरा नई बहू की तरह प्रतीत होती है । इस समय धरती

---

1. ऋतुसंहार, 5.3
2. वही 5.16
3. वही. 6.1
4. वही. 6.2

अँगारे की तरह लाल–लाल पलाश के कुसुमों से छायी है । उसे देखकर लगता है कि वह कोई नव वधू लाल चूनर ओढ़ आयी है ।

इस तरह हम देखते है कि प्रस्तुत गीतिकाव्य में कवि ने प्रत्येक ऋतु के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए प्रकृति के रंगीन चित्र प्रस्तुत किये हैं । यहाँ हमने विस्तार भय से प्रत्येक ऋतुओं का कुछ ही चित्र चित्रित किये है ।

ऋतुसंहार का वस्तुतः प्रकृति वर्णन बहुत ही रमणीय और हृदयावर्धक है । इसमें कथानक की अल्पता किन्तु चित्रण की बहुलता है ।

**ऋतुसंहार का गीति शिल्पः काव्य शास्त्रीय दृष्टि**

**गीतियों का भाषा शिल्पः** कालिदास के काव्यों में शब्दों की योजना का यही रहस्य है कि उनके कृतियों के शब्द अपरिहार्य है; अपरिवर्तनीय हैं । जो शब्द जहाँ पर प्रयुक्त किया गया है, उसके स्थान पर अन्य पर्याय शब्द रखने से यदि छेदोभंग न भी हो तो भी भावभंग और रसभंग तो अवश्य होगा । राजशेखर ने इस भाषागत 'निष्कम्पता' को 'पाक' कहा है । उनका कथन है कि सतत अभ्यासरत सुकवि का वाक्य 'वाक' को प्राप्त हो जाता है । 'निष्कम्पता' का अर्थ है शब्द की स्थिरता अथवा अपरिवर्तनशीलता । जब किसी शब्द विशेष के परिवर्तन करने से 'रसभंग' होने की संभावना हो जाये तब वह शब्द की निष्कम्पता की स्थिति होती है ।

राजशेखर ने आगे कहा है कि सौन्दर्यानुकूल पद का निवेश हुआ है अथवा नहीं । जब तक कवि का मन इस प्रकार के संशय में झूलता रहता है तब तक शब्द प्रयोग की निष्कम्पता

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा,

सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या ।

आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः

प्राप्ता शरन्नवधूरिव रूप रम्या ।।[1]

इसी प्रकार वर्षा का यह शब्दचित्र जिसमें लगता है सारा वन खिल-खिलाकर हँस उठा है :

"मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पैः समन्तात्

पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव ।

हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनाम्

नवसलिलनिषेकाच्छिन्नतापोवनान्तः ।"[2]

गीत की भाषा का यही जादू है कि जो गाया जाए वह आँखों से खेल जाए ।

<u>गीतियों का रीति शिल्प</u>–

कविवर कालिदास की सभी रचनाएँ वैदर्भी रीति में निबद्ध हैं । आचार्य वामन ने रीति का स्वरूप बतलाते हुए कहा है, "विशिष्टपदरचना रीतिः..... विशेषो गुणात्मा" विशेष ढंग की पद योजना को रीति कहा गया है । रीति गुणो पर आश्रित होती है ।

---

1. ऋतुसंहार, 3.1

2. वही. 2.24

यह रसभावादि की उपकारक होती है । कालिदास की पदयोजना सदैव प्रसंगानुसार ओज, प्रसाद एवं माधुर्यगुणोपेत है । उनकी पदों की यह संघटना निश्चित रूप से रसभावादि की अभिव्यक्ति में पूर्ण सहायक हुयी है ।

**ऋतुसंहार की गीतियों में गुण योजना–**

काव्य के माधुर्य, प्रसाद और ओज गुण रस के नियत एवं स्थिर धर्म कहे गये हैं । ये गुण प्रतिपादित रस के उत्कर्ष के हेतु होते हैं––

ये रसस्योगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।।[1]

मम्मट की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि गुणों की पदवी अलंकारों से ऊपर है । अलंकार तो काव्य के अस्थिर और अनियत धर्म है । अलंकार के बिना भी काव्य की सत्ता सम्भव है, किन्तु गुण तो रस के नियत अथवा स्थिर धर्म हैं जो काव्य रस के उत्कर्ष के हेतु हैं ।

**गीतियों का गुण शिल्प–**

**माधुर्य–** काव्य में आचार्य मम्मट ने माधुर्य, ओज एवं प्रसाद तीन गुणों को माना है । 'माधुर्य' आह्लादमय अथवा आनन्दस्वरूप है । संयोग श्रृंगाररस के आस्वाद का आनन्द जिसने सहृदय का मन द्रवीभूत होता सा प्रतीत होता है । इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि

---

1. काव्यप्रकाश, 8.66

उसमें अलौकिक कोमलता व्याप्त हो गयी है । माधुर्य गुण का यही स्वरूप आनन्दबर्धन ने भी बतलाया है । उन्होंने श्रृंगार को परम आह्यादमय रस कहा है और वे इसी श्रृंगार रस में माधुर्य को प्रतिष्ठित मानते है । श्रृंगार रस के आस्वाद में जो सर्वसाधारण की आधेकाधिक तन्मयता देती जाती है वही श्रृंगार का माधुर्य है । संभोग श्रृंगार में जो माधुर्य उसकी अपेक्षा आधेक माधुर्य करूण रस में है । करूण रस के माधुर्य से बढकर माधुर्य विप्रलम्भ श्रृंगार में और शान्त रस में जो माधुर्य है वह विप्रलम्भ श्रृंगार से भी बढ़ा चढ़ा है ।[1]

कालिदास श्रृंगार रस के सिद्ध कवि है । माधुर्य गुण उनकी श्रृंगारिक कविता का आभूषण है । माधुर्य गुण उनकी श्रृंगारिक कविता का आभूषण है ।

माधुर्य व्यंजक सुकोमल वर्णो पदों के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है–

चञ्चन्मनोज्ञ शफरीरसनाकलापाः
पर्यन्तसंस्थितासिताण्ऽजपङ्.क्तिहाराः ।
नद्यो विशाल पुलिनान्तनितम्ब बिम्बा
मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य ।।[2]

यहाँ कोमल पदों की विशेष योजना उद्दीपन विभावों को पुष्ट करते हुए असाधारण आनन्द की जननी बनी है ।

---

1. काव्य प्रकाश, 8.68
2. ऋतुसंहार 3.3

हारैः सचन्दनरसैः स्तनमण्डलानि,

श्रोणितटं सुविपुलं रसनाकलापैः ।

पादाम्बुजानि कलनूपुर शेखरैश्च

नार्यः प्रहृष्टमन सोऽद्य विभूषयन्ति ।[1]

शरद् ऋतु में स्त्रियों के क्रियात्मक बिम्बो में माधुर्य गुण प्रस्फुटित हुआ है । हेमन्त ऋतु में स्त्रियों के सौन्दर्य अभिव्यक्ति में माधुर्य गुण प्रधान शब्दों से इस प्रकार प्रस्फुटित हुआ है :-

काञ्चीगुणैः काञ्चनरत्नचित्रैर्नो भूषयन्ति प्रमदा नितम्बान् ।

न नूपुरैर्हंसरूतं भजद्भि पादाम्बुजान्यम्बुजकान्तिभाञ्जि ।।[2]

दीर्घ समास के द्वारा कालिदास ने माधुर्य गुण को इस प्रकार स्पष्ट किया है-

प्रियंगुकालीयककुंकुमाक्तं स्तनेषु गौरेषु बिलासि नीभिः ।

आलिप्यते चन्दनमंगनाभिर्मदालसाभिर्मृगनाभियुक्तम् ।।[3]

कवि ने विभिन्न ऋतु वर्णन में स्त्रियों के हाव-भाव, कार्यो में स्त्रियों में नख-शिख वर्णन में श्रृंगार रस को पुष्ट करने के लिए माधुर्य व्यञ्जक ध्वनियों का प्रयोग किया है ।

---

1. ऋतुसंहार, 3.20
2. वही. 4.4
3. वही. 6.14

<u>प्रसाद</u>--

प्रसाद, वह गुण है जो सभी रसों का एक ऐसा धर्म है जिससे सहृदय सामाजिक इस प्रकार विभोर हो उठता है जिस प्रकार अग्नि के द्वारा सूखा इंधन अथवा जल के द्वारा वस्त्र । चिन्त में शीघ्रता से व्याप्त हो जाय, वह 'प्रसाद गुण' है । प्रसाद गुण सभी रसों तथा सभी रसमयी पद रचनाओं में निवास कर सकता है । श्रवण मात्र से जिन शब्दों का अर्थबोध हो जाय ऐसे सरल और ललित शब्द प्रसाद के व्यञ्जक कहे गये है--

''श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ।।''[1]

ऋतुसंहार की भावभूमि ऋतुएं ही है कालिदास ने ऋतुओं का उद्दीपन रूप में वर्णन किया है । इसमें प्रसाद गुण की बहुलता है । कवि ने प्रवास में रहने वाले प्रियतम की एवं उनकी प्रियतमा के विरह अनुभूति का कोमल रूप में वर्णन किया है जिसमें प्रसाद गुण देख जा सकता है ।

ग्रीष्म वर्णन का अत्यन्त सरल और स्वाभाविक रूप में चित्रण हुआ हे । प्रसाद गुण का उत्कृष्ट उदाहरण दृष्टव्य है--

सितेषु हर्म्येषु निशासु योषितां सुखप्रसुप्तानि मुखानि चन्द्रमाः ।
विलोक्य नूनं भृशयुत्सुकश्चिरं निशाक्षये यातिहियेवपाण्डुताम् ।।[2]

---

1. काव्यप्रकाश 8.76
2. ऋतुसंहार, 1.9

ग्रीष्म ऋतु में रात में अपने भवन की छतों पर सुख से सोती हुई रमणियों के मुखों को उत्सुकता पूर्वक बहुत देर तक देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रमा लज्जा के कारण सवेरे के समय पाण्डु वर्ण का हो जाता है ।

इसी तरह अत्यन्त स्वाभाविक और शब्दों में सरल शब्दों में वर्षा ऋतु का सुन्दर चित्रांकन किया है :

बहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति व्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्रमन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रिया विहीनाः शिखिनः प्लवंगाः ।।[1]

शरद् ऋतु में लताओं की शाखाओं की सुन्दरता रमणियों के अनेक आभूषणों से सुशोभित बाहों की सुन्दरता को हर लेती है– इसका चित्रण कवि ने प्रसाद गुण से किया है–

श्यामालताः कुसुमभारनतप्रवालाः
स्त्रीणां हरन्ति घृतभूषण बाहुकान्तिम् ।
दन्तावभास विशद स्मित चन्द्रकान्तिं
केकेलिपुष्प रूचिरा नवमालती च ।[2]

शरद् ऋतु में स्त्रियों के क्रियाकलापों के बिम्बो का वर्णन प्रसाद गुण से हुआ है–

---

1. ऋतु0 2.19

2. ऋतु0 3/18

हारैः सचन्दनरसै स्तनमण्डलानि,

श्रोणीतटं सुविपुलं रसनाकलापैः ।

पादाम्बुजानि कलनूपुरशेखरैश्च्

नार्यः प्रहष्टमनसोऽद्य विभूषयन्ति ।।[1]

अन्या प्रियेण परिभुक्तमवेक्ष्यगात्रं, हर्षान्विता विरचिताधरचारूशोभा कूर्पासकं परिदधाति नखक्षतांगी व्यालम्बिनीललालेतालक कुञ्चिताक्षी ।[2]

इसी प्रकार शिशिर एवं वसन्त ऋतु वर्णन में भी प्रसादगुण वाली अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं :

न चन्दनं चन्द्रमरीयिशीतलं

न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दु निर्मलम् ।

न वायवः सान्द्रतुषारशीतला

जनस्य पित्तं रमयन्ति सांप्रतम् ।[3]

वसन्त ऋतु के सौन्दर्य चित्रण में प्रसाद गुण युक्त रीति दर्शनीय है :

---

1. ऋतु0 3/20

2. ऋतु0 4/17

3. ऋतु0 5/3

दुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं,

स्त्रियः सकायाः पवनः सुगन्धिः ।

सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः,

सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते ।।[1]

''वापीजलानां मणिमेखलानां,

शशांकभासां प्रमदाजनानाम् ।

आभ्रद्रुयाणां कुसुमान्वितानां

ददाति सौभाग्यमयं बसन्तः ।।[2]

**ओज–**

ओज वह गुण है जिसे सामाजिक के हृदय का विस्तार अथवा चिन्त का प्रज्वलन धधक उठना कहा जा सकता है जो वीर रस में स्वभावतः हुआ करता है और उससे ऐसा प्रतीत होता है. जैसे चिन्त की सारी शीतलता अकस्मात् नष्ट हो गयी और उसके स्थान पर चिन्त उद्दीप्त हो उठा । वीर रस तो ओजस्वी है ही, किन्तु उससे अधिक ओजस्वी है वीभत्स रस और बीभत्स रस से भी अधिक ओजस्वी रस है रौद्र रस । इन तीनों रसों में उन्तरोन्तर बढ़ती हुई ओजास्विता का कारण यह है कि इसी क्रम से इन तीनों रसों से सहृदय का चिन्त अधिक उद्दीप्त हो उठता है । ऋतुसंहार में माधुर्य एवं प्रसाद गुण के पश्चात ओज गुण भी झलकता सा प्रतीत होता है कतिपय ओजगुण के उदाहरण दृष्टव्य है––

---

1. ऋतु0 6/2

2. ऋतु0 6/4

ग्रीष्म ऋतु में वन में उठती हुयी दावाग्नि वायु से भड़क उठने पर उसकी लपटे समस्त पशुओं को जला डाल रही है सूखे बाँसों और घास को आगे बढ़कर पकड़ रही है । इसका चित्रण कवि ने ओज गुण में किया है, क्योंकि यहाँ निवाक का आक्रामक चित्र है:

ज्वलति पवनवृद्धः पर्वतानां दरीषु
स्फटति पटुनिनादः शुष्क वँशस्थालीषु
प्रसरति तृणमध्ये लब्धवृद्धिक्षणेन
ग्लपयन्ति मृगवर्ग प्रान्तलग्नो दवाग्निः ।।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास को रसाशित गुणों की अभिव्यंञ्जना में अभूतपूर्ण सफलता मिली है । ऋतुसंहार की शैलीगत विशेषताऐं सुगठित परन्तु सहज संक्षेप भृदु गांभीर्य और स्निग्ध उदारता, पद्यगत उच्चस्तरीय स्वर सामंजस्य परिष्कृत और प्रांजल सौन्दर्य और सबसे बढ़कर ऋतुगीतों के इन कतिपय निदर्शनों से यह जाना जा सकता है कि कालिदास के गीतों की भाषा वैदर्भी शैली की प्राञ्जल भाषा है । इसमें सर्वत्र गीतोचित माधुर्य है ।

## ऋतुसंहार का अलंकार शिल्प–

कविवर कालिदास ने अलंकारों के प्रयोग में सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया है । काव्य प्रकाशकार मम्मट ने अपने काव्य लक्षण में 'अनलंकृती पुनः क्वापि' कहा है; जो कालिदास पर पूर्णतः परिचतार्थ होता है । उनकी कविता में अलंकार बोझ स्वरूप नहीं दृष्टि गोचर होते है । उनकी भाषा में स्वभावतः आये अलंकार सहृदय पाठक की रसानुभूति में विशेष सहायक सिद्ध हुये है ।

---

1. ऋतु0 6

वैसे भी अलंकार कोई अलग अस्तित्त्व नहीं रखते । वे भी भाषा रचना की अलग–अलग पद्धतियाँ ही होते हैं । जिस पद्धति से कथन अधिक प्रभावी बन सकें वही पद्धति काव्योचित होती है । यही अलंकार प्रयोग की स्वाभाविकता होती है ।

उपमा अलंकार–

कालिदास उपमा के सम्राट माने जाते है । उनकी उपमाओं का जो सौन्दर्य उनके महाकाव्य नाटकों में दृष्टिगोचर होता है वैसी रमणीयता ऋतुसंहार में नहीं आ पायी है । फिर भी काव्य के भाव सौन्दर्य के पोषण में सहायक अवश्य सिद्ध हुये हैं-- यथा चन्द्रमा की चाँदनी से सुशोभित रात्रि की उपमा विलासिनी रमणियों से दी है जो अत्यन्त मनोहारिणी है :

"सविभ्रमैः सस्मितजिह्मवीक्षितैविलासवत्यो मनसि प्रवासिनाम् ।
अनंगसंदीपनमाशु कुर्वते यथा प्रदोषाः शशिचारूभूषणाः ।।"[1]

दवाग्नि की उपमा पूर्ण विकसित कुसुम्भी के लाल पुष्प व सिन्दूर से की गई है । जिसका स्पष्ट चित्र ही समक्ष उपस्थित होता प्रतीत होता है ।[2]

वर्षा ऋतु में बहता हुआ कीड़ों तथा कूड़ा व कवाड़ मुक्त जल की धारा में सर्प की उपमा कवि की कितनी यथार्थ कल्पना है :

---

1. ऋतु0 1/12
2. ऋतु0 1/24

विपाण्डुरं कीटरजस्तृणान्वितं भुजंगवद्धक्रगतिप्रसर्पितम् ।

ससाध्व सैर्भेकुकुलैनिरीक्षितं प्रयाति निम्नाभिमुखं नवोदकम् ।।[1]

शरद ऋतु में आकाश मण्डल ऐसे राजा के समान सुशोभित हो रहा है, जिस पर सैकड़ों चमर डुलाए जा रहे हो ।[2]

उत्प्रेक्षा अलंकार–

ऋतु संहार में उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य भी देखते ही बनता है :

ग्रीष्म ऋतु में रात में अपने भवनों की छतों पर सुख से सोती हुई रमणियों के मुखों को उत्सुकता से बहुत देर तक देखता हुआ चन्द्रमा ऐसा प्रतीत होता है कि वह लज्जा के कारण प्रातः काल पाण्डु वर्ण का हो गया है ।[3]

रवि की किरणों से अत्यन्त झुलसा हुआ यह जंगली सुअरों का झुण्ड अपने लम्बे–लम्बे थूथनों से नागरमोयो से भरे बिना कीचड़ वाले गडढो को खोदता हुआ ऐसा मालूम पडता है मानो धरती के भीतर ही घुस जाना चाहता है :

सुभद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं,

सरः खनन्नायतपोत्रमण्डलैः

रवेर्मयूरपैरभितापितो भृशं

वराह यूथो विशतीव भूतलम् ।[4]

---

1. ऋतु0 2/13
2. ऋतु0 3/4
3. ऋतु0 1/9
4. ऋतु0 1/17

वर्षा काल का वर्णन करते हुए कवि की कल्पना उत्प्रेक्षा अलंकार में अवलोकनीय है :

"मुदितं इव कदम्बैर्जातपुष्पैः समन्तात्पवन चलित शाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव ।
हसितमिव विधते सूचिभिः केतकीनांनव सलिल निषेकाच्छिन्नतपोवनान्तः ।।"[1]

ऋतु प्रभाव से अभिनवता वन में कितनी सजीवता उत्प्रेक्षाओं से गीतकार ने भर दी है ।

रूपक अलंकार–

शरद ऋतु का वर्णन करते हुए कविता कामिनी के विलास महाकवि कालिदास ने अपने ऋतुसंहार गीतिकाव्य में रजनी का वर्णन नयी नवेली दुल्हन के रूप में रूपक अलंकार में चित्रित किया है :

"तारागण प्रवर भूषणभुद्वहन्ती,
मेघावरोध परिमुक्त शशांक वक्ता ।
ज्योत्स्नादुकूलममलं रजनी दधाना,
वृद्धिं प्रयात्यमुदिनं प्रमदेव बाला ।।"[2]

भ्रान्तिमान अलंकार–

ऋतुसंहार में भ्रान्तिमान अलंकार का एक प्रयोग बहुत ही चारूतर मिलता है ।

---

1. ऋतु0 2/24

2. ऋतु0 3.7

<u>भ्रान्तिमान अलंकार</u>–

ऋतुसंहार में भ्रान्तिमान अलंकार का एक प्रयोग बहुत ही चारूतर मिलता है ।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रचण्ड धूप से अत्यन्त तपाए गए मृग, जिनके तालू अति प्यास के कारण सूख गये है, वे एक वन से दूसरे वन में अंजन के समान नीले नभ को जल समझ कर दौड़ रहे है :

मृगाः प्रचाण्डतपतापिता भृंश,  
तृषा महत्या परिशुष्क तालवः ।  
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता,  
निरीक्ष्य भिन्नाञ्जनसंनिभं नभः ।।[1]

<u>स्वभावोक्ति अलंकार</u>–

स्वाभावोक्ति अलंकार का प्रयोग ग्रीष्म ऋतु वर्णन प्रसंग में दृष्टव्य है :

ग्रीष्म की ताप से व्याकुल सिंह की दशा का कवि ने कितना स्वभाविक वर्णन किया है ।

तृषा महव्याहताविक्रमोद्यमः  
श्वसन्मुहुर्दूरविदारिताननः ।  
न हन्त्यदूरेऽपि गजान्मृगेश्वरा–  
बिलोलजिह्वश्चलिताग्रकेसरः ।।[2]

---

1. ऋतु0 1.11

2. वही. 1/14

ऐसे ग्रीष्म की ताप से जंगली भैसों की दशा का स्वाभाविक चित्रण किया है:-

सफेनलालावृतवक्त्रसंपुटविनिः सृतालोहितजिहमुन्मुखम् ।

तृषाकुलैनिः सृतमद्रिगहारादवेक्षमाणं महिषीकुलं जलम् ।।"[1]

ऋतुसंहार की गीतिकाओं में जहाँ एक ओर सादृश्यविधानमूलक अलंकारों का सौन्दर्य छलकता है वहीं दूसरी ओर ध्वनिमूलक अलंकारों से भी यथास्थान प्रभाव पैदा किया गया है । ऋतुसंहार के गीतों में अनुप्रास की छटा अनेकत्र बिखरी हुयी है-- अनुप्रास अलंकार का एक अतिशय सुन्दर प्रयोग वर्षा गीत में अवलोकनीय है :

बहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति

व्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्रयन्ति

नद्योघना मत्तगजा वनान्ताः

प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवंगा ।[2]

इस गीतिका में दन्त्य और अनुनासिक ध्वनि की निरन्तर आवृत्ति से वर्षा का एक सघन बिम्ब उभर कर पाठक के मन पर छा जाता है । वसन्त की शोभा के वर्णन के प्रसंग में भी अनुप्रास की छटा देखते ही बनती है :

---

1. ऋतु0 1/21
2. ऋतु0 2/16

आम्रीमञ्जुलमञ्जरी वरशरः सहिकंशुकं यद्धनु–

र्ज्यायस्यालिकुलं कलंक रहितं हत्रं सितांशु सितम्

मन्तेभो मलभानिलः परभृता यद्वन्दिनो लोकजि–

त्सोऽ वो वितरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः ।।[1]

इस वसन्त गीत म, न और अनुस्वार के बार बार प्रयोग से वसन्त का नर्तन सा हो उठता है । गीत मन में गूँजने लगता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋतुसंहार के प्राणभूत गीतों में अलंकार प्रभाव पैदा करने वाले है । वे गीतों के रस श्रृंगार के पोषक हैं, तथा प्रकृति के रमणीय स्वरूप को और अधिक उत्कर्षता प्रदान करते हैं । गीतों में उकेरा गया प्रकृति का मनमोहक स्वरूप सहृदय पाठक को आत्मविभोर कर देने में समर्थ है । आत्मविभोर कर देना ही गीत की सफलता है ।

<u>रसशिल्प</u>–

ऋतुसंहार का कवि सभी ऋतुओं में प्रकृति के उद्दीपन चित्रण से अपनी प्रेयसी के हृदय में रति भाव को जागृत करता हुआ सहृदय पाठक को श्रृंगार रस की विविध अनुभूतियाँ कराता है । प्रसाद गुण तथा वर्णो का मञ्जुल प्रयोग श्रृंगार के पोषण में विशेष सहायक सिद्ध हुआ है । ग्रीष्म वर्णन का यह गीत देखिए :

---

1. ऋतु0 6/38

नितम्बबिम्बैः सदुकूलमेखलैः स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः ।

शिरोरुहैः स्नानकषायवासितैः स्त्रियो निदाघंशमयन्ति कामिनाम् ।।[1]

सजी-धजी प्रेयसियों की सुन्दरता प्रेमियों के मन से गर्मी की तपन दूर कर देती हैं ।

वर्षा ऋतु के वर्णन में कवि प्रकृति के उद्दीपन स्वरूप को प्रस्तुत करते हुये गरजते हुए मेघों की शोभा से नाचते हुए मयूरों की सुन्दरता से श्रृंगार रस की अनुभूति कराता है :

सदा मनोज्ञं स्वमदुत्सवोत्सुकं विकीर्णविस्तीर्णकलापालोभितम् ।

ससंभ्रमालिंगन चुम्बनाकुलं प्रवृत्तनृत्यं कुलमद्य बर्हिणाम् ।।[2]

श्रृंगार रस में सराबोर कर देने वाला वर्षा ऋतु का एक यह गीत भी दृष्टव्य है:

दधाति वरकुचाग्रैरुन्नतैर्हारयष्टिं

प्रतनुसितदुकूलान्यायतैः श्रोणिबिम्बैः ।

नवजलकणसेकादुद्गतां रोमराणीं

ललितवलिविभंगैर्मध्यदेशैश्च नार्यः ।[3]

---

1. ऋतुसंहार 1/4
2. ऋतुसंहार 2/16
3. ऋतुसंहार 2.26

पारदर्शी साडियों से चमकता नारियों का शरीर सौन्दर्य । उस पर भी बरसात की बूँदों से कली सी रोमराजि प्यार में डुबो देती है ।

नववधू सी आ गयी शरद् किस भावुक मन को उद्वेलित नहीं करती ।

फूले हुए कांस के वस्त्राधारण किए हुए, मतवाले हंसों की सुहावनी बोली के बिछुए पहने, पके हुए धान सी लचीली, खिले हुए कमल के समान सुन्दर मतवाली यह शरद ऋतु नई-नई ब्याही बधू के समान आई है ।[1] शरद ऋतु में प्रमदा बाला की भाँति रजनी सहृदय ने कामी जनों के हृदयों को आकर्षित करने वाली अंगनाओं के सौन्दर्य को पराजित कर दिया है ।[2]

शरद ऋतु की सुन्दर शोभा चन्द्रमा की कान्ति को छोड़कर सुन्दर स्त्रियों के मुख में पुचें गयी है । हंसों की मधुर ध्वनि रत्न जड़ित नूपुरों में चली गई है और दोपहरिया पुष्पों की लालिमा को त्याग कर उनके मनोहर अधरों में बस गई है ।[3]

शिशिर ऋतु के वर्णन में प्रिय एवं प्रेयसी की काम के प्रति उत्कण्ठा को प्रदर्शित करते हुये श्रृंगार रस को पुष्ट करने का प्रयास किया है । वे सुन्दरियाँ जिनका मुख पुष्पों से बने आसव को पीने से सुगन्धित है आजकल पान खाकर इत्र फुलेल लगाकर मालाएँ पहनकर अगरू की धूप से खूब सुगन्धित अपने शयनगृहों में उत्सुकता से जा रही है ।[4]

---

1. ऋतु0 3/1
2. ऋतु0 3/17
3. वही0 3/27
4. वही0 5/5

वासन्ती वातावरण का मादक प्रभाव किस तरह स्नेही जनों को प्रभावित करता है । इसका वर्णन प्रमुखता से किया है । कालिदास ने वसन्त के मदनोद्दीपक स्वरूप का चित्रण इस प्रकार किया है :-

वृक्ष पुष्प मुक्त हो गये, सरोवरों की जलराशि कमलों से उत्कीर्ण हो उठा है ; पवन सुरभित हो गया है दिन सुरम्य बन गया है और संध्या सुहावनी हो उठी है । इसी कारण स्त्रियाँ सकाम हो गयी है :-

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं,
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः ।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः,
सर्वं प्रिये चारूतरं बसन्ते ।।[1]

वसन्त ऋतु के आगमन पर कामदेव स्त्रियों को इतना पीड़ित कर देता है कि उनका शरीर पीला पड़ जाता है । मद से अलसाई हुई बारम्बार जंभाई लेती है और फिर भी उनके सम्पूर्ण अंगों में सुन्दरता भर जाती है । कामदेव रमणियों के विभिन्न अंगों में अनेक रूप धारण करके निवास करता है :-

नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु,
गण्डेषु पाण्डुः कठिनः स्तनेषु ।
मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः
स्त्रीणामनंगो बहुधा स्थितोऽद्य ।।[2]

---

1. ऋतु0 6/2
2. वही 6/12

मनास्विनी स्त्रियों के मन भी इस बसन्त ऋतु में डिग जाते हैं :-

आकाम्पितानि हृदयामि मनस्विनीनां,

वातैः प्रफुल्ल सहकार कृताधिवासैः ।

उत्कूजितैः पर भृतस्य मदा कुलस्य,

श्रोत्र प्रिये मधुकरस्यं च गीत नादैः ।।[1]

कामदेव को बढ़ाने वाले रसायनों का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-- मन को खींच लेने वाली सन्ध्या, खिली हुई चाँदनी, कोकिल की मदमाती कूक, सुगन्धि से भरा हुआ पवन, मतवाले भ्रमरो की गुंजार एवं रात्रि के साथ समय मधुपान ये सब इस बसन्त ऋतु में कामदेव को उत्तेजित करने वाले रसायन है ।[2]

इस प्रकार प्रत्येक ऋतु में सहज प्राप्त बस्तुओं से विरही जनों की हृदय की भावनाओं को उद्वेलित कर रसानुभूति की जो क्षमता कालिदास द्वारा प्रदर्शित की गई है । वह अन्यत्र दुर्लभ है । रति विलास के मनोहारी प्रसंगों को प्रस्तुत करने के कारण ही कविवर कालिदास को 'श्रंगार दीक्षा गुरू' की उपाधि से विभूषित किया गया है ।

ऋतुसंहार का छन्दः शिल्प

गीत के लिए अन्य शिल्पों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण उसका छन्द होता है । लय पूर्ण छन्द ही गीत का सही छन्द होता है । कालिदास ने अपने कार्यो में छन्दों का प्रयोग विषय

---

1. ऋतु0 6/34

2. ऋतु0 6/35

के अनुरूप किया है ।

क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ सुवृन्त तिलक में कहा है :

काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च ।

कुर्वीत सर्ववृन्तानां विनियोग विभागवित् ।।[1]

काव्य में रस तथा वर्ण विषय के अनुसार छन्दों का विवेक पूर्ण विनियोग करना चाहिए ।

छन्दों की गति एवं लय, रस तथा भावादि की प्रेषणीयता के साथ पूरा तालमेल रखती है । कालिदास ने रस को सहृदय हृदय तक पहुँचाने के लिए नाद एवं गति के अनेक छन्दों रूप सूत्रों की रचना की है । वे विशेष प्रकार के रस की अभिव्यक्ति के लिए छन्द विशेष का आवाहन करते है ।[2]

'ऋतुसंहार' गीति काव्य में ऋतुओं की विभिन्नता को देखते हुये कालिदास ने अनेक रसोपयोगी छन्दों की योजना की है । ऋतुसंहार में कवि ने वंशस्थ मालिनी वसन्ततिलका, उपजाति और शार्दूलविक्रीडित इन पाँच छन्दों का प्रयोग किया है ।

कविवर कालिदास वंशस्थ छन्द के प्रयोग में अत्यन्त निपुण है । उन्होंने अपनी अनेक कृतियों में इस छन्द का कुशलता पूर्वक प्रयोग किया है । किन्तु 'ऋतुसंहार' में इस

---

1. डॉ0 शंकर दन्त ओझा, संस्कृत को रघुवंश की देन, पृ0 सं0 162

2. वही. पृ0 162

छन्द का कवि ने प्रचुर प्रयोग किया है । वंशस्थ के अतिरिक्त वसन्ततिलका, उपजाति, मालिनी का भी प्रयोग हुआ है । प्रत्येक ऋतु का वर्णन वे वंशस्थ छन्द से प्रारम्भ करते है और प्रत्येक ऋतु के वर्णन की समाप्ति प्रायः मालिनी छन्द से करते हैं । अतिरिक्त रूप से कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सभी छन्द सरल प्रकृति के हैं और गीति रचना के अनुकूल है । वंशस्थ तो लगता है बांसुरी की धुन देता है, मालिनी में बहाव होता है और वसन्त तिलका में बासन्ती नाग ।

गीतियों का प्रकृति चित्रण शिल्प –

कालिदास में प्रकृति का चित्रण करने में अपनी अलौकिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया है प्रकृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है । ऐसा वे मानते थे । उनका काव्य मानव जीवन की विशद व्याख्या के लिए समर्पित था ।

कवि ने प्रकृति चित्रण अवसर के अनुकूल चित्रित किया है । कथावस्तु के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न नहीं होता है । कालिदास ने अवसर के अनुकूल उद्दीपन आदि विभावों के सहारे प्रकृति के विविध उपादानों का चित्रण किया है । वह वर्णन की सीमा भी जानते है । उनके प्रकृति चित्रण में न कही अनावश्यक विस्तार है और न कहीं अपेक्षित चित्रण का ह्रास । उनका प्रकृति चित्रण मात्र प्रकृति चित्रण के लिए नहीं है । परिणाम यह है कि प्रकृति चित्रण ने न कभी पात्र का और न कथावस्तु का अतिक्रमण किया है । जो प्रकृति पदार्थ कथा के मार्ग में आया है वह उनकी लेखनी का विषय बनकर धन्य हो गया है ।

प्रकृति वर्णन में कालिदास ने सदैव रसगत, प्रसंगगत, एवं पात्रगत औचित्य का पूरा निर्वाह किया है । प्रकृति की बहुमुखी छटा को महाकवि ने व्यंजक प्रधान न्यूनतम शब्दावली में बड़ी कुशलतापूर्वक अंकित किया है, जैसे किसी चित्र की पृष्ठभूमि हो उनकी कविता प्रकृति में रमती हुयी भी मानव के जीवन का जय-पराजय असफलता सफलता को ही मुख्य रूप में प्रतिबिम्बित करती है । उनके काव्य में प्रकृति का यही प्रयोजन है ।[1]

कालिदास को अपने देश में होने वाली छहों ऋतुओं पर एक मात्र काव्य लिखने का श्रेय प्राप्त है । ये छहों ऋतुयें अन्य देशों में नहीं होती है । इससे यह प्रतीत होता है कि इस विशेषता को प्रकट करने के लिए कवि ने 'ऋतुसंहार' की रचना की है । कालिदास का प्रकृति प्रेम ऋतुसंहार गीति काव्य में अत्यन्त व्यापक एवं कमनीय रूप में चित्रित हुआ है । कालिदास ने ऋतुओं की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषताओं का वर्णन किया है । पशु, पक्षियों, पुष्पों, लताओं, वृक्षों, धरती, वायु एवं आकाश के मनोज्ञ रूपों का जैसा सजीव चित्रण कालिदास ने ऋतुसंहार में किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । प्रत्येक सर्ग में ऋतुओं का वातावरण का मनोरम चित्र परदे की भाँति एक के बाद दूसरा परिवर्तित हो जाता है ।

कवि ने प्रकृति का चित्रण अपनी, तूलिका से विभिन्न रूपों में किया है ।

उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण-

ऋतुसंहार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें प्रकृति के विविध उपादानों को उद्दीपन के रूप में ग्रहण किया गया है । कवि के समक्ष उद्दीपन के अतिरिक्त जैसे

---

1. डॉ0 शंकरदत्त ओझा, संस्कृत साहित्य को रघुवंश की देन, पृ0 166

प्रकृति का दूसरा विधान ही नहीं है । काव्य के प्रारम्भ में ग्रीष्म ऋतु वर्णन में प्रकृति का जीवन्त चित्रण किया है :

पटुतरदवदाहोच्छुष्कसस्य प्रोहाः,
परूष पवन वेगोत्क्षिप्त संशुष्कपर्णाः ।
दिनकर परिता पक्षीणतोयाः समन्ताद्
विदधति भयमुच्चै वीक्ष्यमाणा वनान्ताः।।[1]

आग उगलने वाले सूर्य की किरणों की ज्वाला में वन्य जीव जन्तुओं का जीवन दुःखमय है वे अपनी परस्पर शत्रुता भूल गये है । इस ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड दावाग्नि से जंगल के घास फूस जलकर नष्ट हो गये है । वृक्षों की शाखाये झुलस गई है । सूखे पत्ते तेज हवा में उड रहे है । जलाशय सूख गये है । सुनसान वन में चारों ओर देखने पर भय सा लगता है ।

कवि ने वर्षा के बादलों को अनेक रूपों में देखा है । उनकी मनोहर झाँकी इस काव्य में सजाई है । मृदंग के समान शब्द करते हुये बिजली की प्रत्यंचा से युक्त सात रंगों का इन्द्र धनुष चढ़ाये हुये बादल तीक्ष्ण धारा के पैने वाणों की वृष्टि करके, प्रवासी जनों के चित्त को कष्ट पहुँचाते है ।[2] जो प्रकृति प्रियतम सान्निध्य में सुखकारी होती है वहीं वियोग में दुःखदायी हो जाती है उसका एक-एक क्रिया कलाप कितना दुःखद प्रतीत होता है -

---

1. ऋतु0 1/23
2. वही. 2/4

नेत्रोत्सवों हृदय हारिमरीचिमालः,

प्रह्लादकः शिशिरसीकरवारिवर्षो ।

पत्युर्विप्रयोगविषदिग्धशरक्षतानां–

चन्द्रो दहत्यतितरां तनुभंगनानाम् ।।[1]

अन्न से लदी वालों के बोझ से झुके हुये धन के पौधों को कौपाता हुआ, पुष्पों से लदे झुके सुन्दर वृक्षों को नचाता हुआ और खिले हुय कमलों से व्याप्त कमलिनियों को हिलाता हुआ शीतल पवन नवयुवकों के मन को झकझोर डालता है ।[2]

प्रवासी लोग नीले कमल में कान्ति में प्रियतमा की आँखों की छवि देखते है, हँसों की मधुर ध्वनि में करघनी की रूनझुन सुनते है; दोपहरिया के पुष्पों में अधरों की लालिमा देखकर तो बेचारे रूदन करने लगते हैं :

असितनयलक्ष्मी लक्षयित्वोत्पलेषु,

क्वणित कनक काञ्ची मन्त हंस स्वनेषु ।

अधर रूचिरो शोभां बन्धु जीवे प्रियाणां

पाथिकजन इदानीं रोदति भ्रान्तचितः ।।[3]

---

1. ऋतु0 3/9
2. ऋतु0 3/10
3. ऋतु 3/26

<u>प्रकृति सजीव सत्ता के रूप में–</u>

कवि ने प्रकृति चित्रण सजीव सत्ता के रूप में किया है । वे वर्षा ऋतु को नायक के रूप में चित्रित करते है । वर्षा ऋतु में मानो प्रेमी नायक की भाँति अपनी प्रेमिका के सिर तथा मालती और मौलसिरी के कुसमों की माला को गूँथ रहा है । उनके कानों के लिए खिले हुये नूतन कदम्ब के पुष्पों का कर्णफूल बना रहा है ।[1] वन प्रदेश नये जल वृष्टि के सींचने के कारण उसका ताप नष्ट हो गया है ऐसा वन प्रदेश मानों खिल खिलाकर हँस रहा है ।[2]

शरदऋतु नई नवेली दुलहन के रूप में चित्रित है–– कांस के वस्त्रों को धारण किए हुए, मतवाले हंसों की मधुर बोली के विछुए पहने हुये, धन के मनोहर एवं झुके हुये शरीर धारण किए, खिले हुये कमल के मुखवाली नई नवेली व्याही हुयी सुन्दरी वधू के समान उसका आगमन हुआ हे ।[3]

शरद ऋतु में कवि ने नदियों का चित्रण कामिनी के रूप में किया है–– शरद ऋतु में नदियाँ उसी प्रकार धीमे–धीमे बह रही है, जैसे करधनी और माला पहने हुए बड़े–बड़े नितम्बों वाली उन नदियों की करधनी है, तट पर बैठी हुई सफेद पक्षियों की पंक्तियाँ मालाएँ है तथा ऊँचे–ऊँचे रेत भरे टीले उनके नितम्ब हैं ।[4]

वर्षा ऋतु में धरती उस सुन्दरी नायिका के समान दिखाई पड़ रही है, जो सफेद रंगों को छोड़कर अन्य सभी रंग के रत्नों के आभूषण पहने हुये है :–

---

1. ऋतु0 2/25
2. ऋतु0 2/24
3. ऋतु0 3/1
4. ऋतु0 3/3

प्रभिन्नवैदूर्यनिभैस्तृणांकुरैः समायिता प्रोत्थितकन्दलीदलैः ।
विभाति शुक्लेतररत्नभुषिता वरांगनेव क्षितिरिन्द्र,गोपकैः ।।[1]

प्रेमी जन के हृदयों को एक विजेता की तरह झकझोर देने वाले पावस का मानवीकरण देखिए:

कालिदास ने प्रकृति जीवन के विविद्य रूपों का ललित एवं उल्लसित चित्रण किया है । ऋतुसंहार में पावस प्रेरित प्राकृतिक छवियों के जो विशुद्ध चित्र चित्रित किये है । वे अन्यत्र अनुपलब्ध है । वर्षा ऋतु में छोटे--मोटे कीड़ों, ग्रीष्म ऋतु की धूल तथा कूडे–कवाड़ को बहाता हुआ मटमैला बरसाती पानी, सर्प के समान टेड़ी मेड़ी गति से, नीची जमीन से बहा जा रहा है और बेचारे मेंढ़क उसे सर्प समझकर अत्यन्त भय से देखते हैं ।[2]

ऋतुसंहार में निरीक्षण एवं ललित कल्पनाओं से समन्वित प्रकृति के सुन्दर चित्र उपलब्ध है जो अन्यत्र दुर्लभ है ।

---

1. ऋतु0 2/5
2. ऋतु0 2/13

## ऋतुसंहार का गीत-शिल्प : अभिनव समीक्षा दृष्टि

### युक्त गीत

हम यह पहले ही कह चुके हें कि ऋतु काव्य की परम्परा का उदय संस्कृत साहित्य के ऋग्वेद काल में ही हो चुका था । ऋग्वेद का पर्जन्य सूक्त हमारे देश की पावस सुषमा का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण करता हे । परन्तु उसमें मल्हारों जैसा प्रेम और श्रृंगार नहीं हे ।[1]

रामायण/महाभारत और पुराणों के ऋतुकाव्य मुक्त गीत नहीं आध्यात्मिक छाया है ।

लौकिक प्रबन्ध महाकाव्यों में ऋतुओं का वर्णन वैसे तो उनका अनिवार्य लक्षण बन गया हे परन्तु उनमें भी गीत प्रबन्ध कथा का अंग बन कर ही रह गया हे । वहाँ गीतकार मुक्त होकर नहीं गा सका हे । वह अपने गीत को स्वयं अपने प्रिय के आमने-सामने होकर भी नहीं गा सका हे बल्कि तटस्थ होकर रह गया हे । इस स्थिति में गीतकार की वैयक्तिकता बहुत दबी रह गयी है । उसके गीत कैमरे का चित्र तो देते हैं, गीतका की आत्मानुभूति के रंग उसमें पूरी तरह नहीं आ सके हैं । ऐसे गीत ऋतुओं की एक उद्दीपन रूप वाली तटस्थ वर्णना होकर रह जाते हे ।[2]

---

1. ऋग्वेद
2. देखिए कालिदास का ही कुमार संभव सर्ग तथा रघुवंश सर्ग व वसन्त वर्णन

इसके विपरीत जब हम कालिदास के ऋतुगीतों की ओर देखते हैं कि कालिदास ने संस्कृत गीत की इस जड़ता को तोड़ने में पहल की है और पहल में वह बहुत अधिक सफल भी रहा है । उसके ऋतुगीत सम्पूर्ण अर्थों में मुक्त ऋतुगीत है । इन गीतों में वह अपनी प्रिया को प्रत्यक्षतः आमने–सामने होकर बोल रहा है; ऋतुओं की उद्दीपनाओं के संमोहन में प्रेम के संभोग का खुला आमन्त्रण दे रहा है । उसके प्रत्येक ऋतुगीत से यही गूँज सुनाई देती है, प्रिये जब प्रकृति का कण–कण प्यार में डूब रहा है तो हम भी क्यों न प्रकृति के इस उपहार का संभोग करें । उदाहरण के लिए ग्रीष्म की सुहावनी सन्ध्या में कालिदास के गीत में प्रेयसी के मन को गुदगुदा देने वाला प्रेम विहार का आमन्त्रण देखिएः–

प्रचण्ड सूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमा सदावगाहक्षतवारिसंचयः,
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये ।

––ऋतु0 1.1

गर्मी की ऋतु आ गयी है । सूरज बहुत तपता है । दिन भर धूप जलाए रहती है । प्रेम लीलाओं का उत्साह कम सा हो जाता है । परन्तु इस सबसे क्या ? प्रिये ! गर्मी की शाम तो सुहानी है । चाँदनी की शीतलता तो छिटक रही है । ठण्डे-ठण्डे जलाशयों में देर–देर तक जल–केलि का आनन्द तो हम उठा ही सकते हैं ।

ग्रीष्म की घोर तपन का भी प्रेमी जन तो मनभावन विकल्प निकाल ही लेते हैं । उनकी प्रेम–लीलाएं तो प्रतिकूल ऋतुओं का भी अनुकूलन कर लेती है :

निशाः शशांक क्षतनील राजयः क्वचिद् विचित्रं जलयन्त्रमन्दिरम्
मणिप्रकाशः सरसं चन्दनं शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य सेन्यताम् ।

––ऋतु0 1.2

कालिदास के सभी ऋतुओं के गीतों में प्रेम का सीधा-सीधा आमन्त्रण है । उसके गीतों का यह सीधा संबोधन उसके भाव संस्पर्श को बहुत बढ़ा देता है । आधुनिक प्रेम गीतों में हम इसी तरह की मुक्तता और भावों की संस्पार्शता पाते हैं ।

मदमस्त हाथियों से झूमते मेघ, चमचम चमकती बिजली, घन-घन गरजते बादल । लगता है, जैसे वर्षा के मौसम ने किसी उद्धत राजा की तरह हाथियों की सेना, चमकीली झंडियों और नगाड़ों की गूँज के साथ कामी जन के ऊपर धावा बोल दिया है । ऐसे मौसम की ओर क्यों न प्रेयसी का मन खींचा जाए :

ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जरस्ताडित्पताको ऽशनिशब्दमर्दलः
समागतो राजवदुद्धतद्युतिर्घनागमः कामिजनाप्रियः प्रिये ।

ऋतु0 2.1

और फिर फूलों की ऋतु बसन्त का तो कहना ही क्या ? वहाँ तो जिधर देखिए उधर प्यार ही प्यार छलक रहा है । कौन ऐसा तरूण प्रेमी होगा जो प्रिया को आमन्त्रण देने लगे ? कालिदास के बसन्त गीत में यह आमन्त्रण देखिए :

द्रुमाः सपुष्पा सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः,
सुखाः प्रदोजा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारुतरं बसन्ते ।

ऋतु0 6.2

पेड़-पौधे सब ओर फूलों से छा गए हैं, तालाबों में कमल खिल रहे हैं, गन्ध भरा

**पवन** बह रहा है, स्त्रियाँ प्यार में सराबोर हो रही हैं, दिन रमणीय और सन्ध्या सुख भरी हो गयी है । प्रिये ! इस बसन्त में तो जिधर देखो, सुन्दर ही सुन्दर जान पड़ता है । आओ, हम बसन्त के इस सौन्दर्य का उपभोग करें ।

कालिदास के चाहे जिस ऋतु के गीतों को हम पढ़ें उनमें प्रेम का सीधा और खुला आमन्त्रण मिलता है ।

इन आमन्त्रण गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें उर्दू और फारसी के गीतों या गजलों की तरह मदिरालय के परिदृश्यों का जाना-बूझा चित्रण नहीं है बल्कि ऋतुओं के सौन्दर्य की मधुशाला के चित्र है जो बरबस तरूण मन को प्रेम संभोग का आमन्त्रण करते हैं :

रम्यः प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः
पुंस्कोकिलस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः
मत्तालियूथविरुतं निशि सीधुपानं,
सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य ।

--ऋतु0 6.35

इस गीत में हम देख रहे हैं कि मधुपान के निशा क्षणों का उल्लेख है परन्तु वह बसन्त के अत्यन्त रमणीय प्राकृतिक परिवेश का ही एक अंग है । ऊर्दू गीतों की तरह छलकाते जाम और साकी की छबियों के जादू से ही पाठक को नशा नहीं चढ़ाया गया है, पूरे मौसम का नशा है ।

<u>अनुभूतियों की निजता और तीव्रता-</u>

गीत रचनाएं स्वभावतः आदर्शवादी काव्य रचनाएं नहीं होती । उनमें धर्म, अर्थ और मोक्ष के सिद्धान्त नहीं गाए जाते । मानव हृदय की कोई उत्कट भावुकता ही गीत बन कर निकलती है । कालिदास के ऋतुगीत इसके अच्छे उदाहरण है । इन गीतों में

**'काम'** तत्त्व ही जीवन का एकमात्र रस बन कर छाया है । सबसे बड़ी बात गीतों की यह है कि उनमें गाया गया प्रेम सृष्टि के सभी रूपों में मिथुनकेलि बन कर छाया है । यह काम भावना की मौलिकता के गीत है । नर–नारी, पशु–पक्षी, लता–पादप तथा नदियाँ और सागर जिधर देखिए मिथुन का प्रेम संगीत छाया है । जीवन का यह संगीत प्रत्येक ऋतु में नए–नए रूप और रंग के विधान लेकर आता है ।

कालिदास के ऋतुगीतों में प्रेम प्रत्येक ऋतु में एक नया श्रृंगार करके आता है । वह ग्रीष्म के निदाघकाल में चन्दन और चाँदनी की शीतलता लेकर आता है ।[1] वर्षाकाल में वह मेघगर्जन से उत्पन्न प्रिया के आलिंगन लेकर आता है ।[2] शरद् में वही प्रेम लील कमलों से खेलती प्रमदाओं की दीवानगी बन जाता है ।[3] हेमन्त में वही प्रेम मधुपान किए प्रेमी युगल का कठोर आलेंगन हो जाता है ।[4] शिशिर में वह रातों–रात का मधु–उत्सव हो जाता है ।[5] तथा फूलों की बसन्त ऋतु में वही काम सुन्दरन से पुष्प–प्याले का द्विरेक मिथुन का साथ–साथ मधुपान हो जाता है ।[6]

प्रेम की यह अभिनवता और सर्वव्यापकता कालिदास के गीतों को बहुत हृदयग्राही गीतों का स्वर दे देती है । उसके किसी गीत में बासीपन नहीं आ सका है । प्रेम की ऐसी ताजगी है कि पाठक के मन पर छा जाती है ।

---

1. ऋतु0 1–4
2. वही. 2–11
3. वही. 3.23
4. वही. 4.12
5. वही. 5.7
6. वही. 6.19

**गीतकार** की अनुभूतियों की निजता और आवेग का आस्वाद देने वाली कुछेक गीतिकाओं के उदाहरण देखें :

सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रियामुखोच्छासविकम्पितं मधु,

सुतान्त्रिगीतं मदनस्य दीपनं शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः ।

--ऋतु0 1.3

प्रिये ! गर्मी के इस मौसम में केवड़ा और इत्र से सुवासित भवनों के चिकने-चिकने फर्श, प्रेयसी की श्वासों से हिलौरे सी लेते मदिरा के प्याले, प्यार को उमगा देने वाली वीणा का संगीत प्रेमियों के मन को लुभा लेते हैं ।

शिल्प का वासीपन नए शिल्प से कैसे दूर किया जाता है, यह कालिदास के इस गीत में ध्यान से देखने योग्य है । यहाँ कवि ने उर्दू के गीतकारों की तरह 'लबरेज प्याले' का घिसापिटा बिम्ब पर्याप्त नहीं समझा बल्कि प्रेयसी की मस्ती भरी सांसों के स्पर्श से तरंगित मधु का अभिनव और उससे कहीं अधिक मादम बिम्ब सृजन करना अधिक उपयुक्त समझा । इस तरह की बिम्ब सृष्टि अनुभूतियों की निजता और भावावेग के बिना संभव नहीं हो सकती । यहाँ कवि मन का निरावरण एवं मुक्त सौन्दर्य बोध छलकता है ।

अनुभूतियों की यही निजता और खुलापन कालिदास के इस पावस गीत में भी मिलता है :

अभीक्ष्णमुच्चैर्ध्वनता पयोमुचा घनान्धकारीकृतशर्वरीष्वपि,

तडित्प्रभादर्शितमार्गभूमयः प्रयान्ति रागादभिसारिकाः स्त्रियः।

--ऋतु0 2.10

बार–बार गरजते बादल, बादलों से घनी अंधेकारी रातें, चमकती–तड़कती बिजलियॉं । लेकिन अभिसार के लिए आतुर निकल पड़ी कामिनियों को इस सबका कोई भय नहीं, कोई रोक नहीं ।

इस गीत की एक विशेषता यह भी लगती है कि बषा ऋतु में जिन चीजों से अभिसारिका के मन में भय की संभावना सोची गयी है, वास्तव में वे ही वस्तुएं तो प्रिय के मिलन के लिए प्रेयसी मन को उतावला करने वाली हैं । गीत में वर्णित किया परिदृश्य हमारे देश की पावस का ही हो सकता है किसी पश्चिमी देश या अरब और फारस की वर्षा का नहीं । अपनी धरती की वर्षा का पूरा दिन–रात का परिदृश्य कवि की अनुभूतियों में छाया हुआ है ।

अनुभूतियों की यही निजता और मादकता रूपरमणीय नववधू सी आ रही शरद् की शोभा के चित्रण में मिलती है :

काशांशुका विकचपद्‌ममनोज्ञवक्त्रा
सोन्मादहंस रवनूपुरनादरम्या
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रुपरम्या ।

ऋतु0 3-1

कांस के फूलों की रेशमी साड़ी, खिलता हुआ कमलमुख, रूनझुन नूपुर से बजते हंसों के कलरव, झुकी झुकी अधपकी शालिलता सी शरीर रेखा । लगता है प्रिय मिलन को कोई सजीधजी नववधू चली आ रही है ।

अनुभूतियों की ऐसी ही निजता और सौन्दर्य की मादकता हम दूसरी ऋतुओं के गीतों में देख सकते हैं ।

हेमन्त ऋतु आइ कि लता पादपों पर नयी कोंपलें फूट निकली, लोध्र का वृक्ष फूल उठा, शालि के खेत पके पीले चमकने लगे, तुषार वृष्टि होने से कमल मुरझाने लगे । लगता है, तुषार के मौसम ने सारे साज सिंगारों में परिवर्तन ला दिया :

विलासिनीनां स्तनशालिनीनां नालंक्रियन्ते स्तनमण्डनानि ।[1]

आगे फिर शिशिर का अपना अलग ही रूप विधान है । ईख के खेतों से धरती छायी दिखती है, कहीं–कहीं हंस और सारस के कल शब्द सुनाई दे रहे हैं, शीत भरा शिशिर प्रमदा जन को बहुत ही प्यार लगता है :

प्रकामकामं प्रमदाजनप्रियम् ।[2]

ऋतुराज बसन्त का तो जादू ही क्या कहा जाए । लगता है, जैसे आमों के बौरों के तीखे बाण भौरों की धनुष डोरी पर चढ़ा कर प्रेमीजन को बेध डालने पर ही कमर कस ली है:

प्रफुल्लचूलंकुरतीक्ष्णसायको द्विरेफमालाविलसद् धनुर्गुणः ।
मनांसि भेन्तुं सुरतप्रसंगिनां वसन्तयोद्धा समुपागतः प्रिये ।

ऋतु0 6.1

---

1. ऋतु0 4.1

2. वही. 5.1

**भाषा और शैली की तरलता**

गीत स्वभाव से एक कोमल एवं तरल रचना है । कालिदास गीत की इस प्रकृति को अच्छी तरह जानता है । उसके ऋतुगीत भाव और भाषा दोनो ही स्तरों पर तरल है। वास्तव में तरल भाव रूखी और मन्द भाषा में बह ही नहीं सकते । कालिदास के ऋतुगीतों में गीतकार ने प्रकृति के उन्हीं भावोत्तेजक रूपों को ग्रहण किया है जो हमारी भावनाओं को तरल बना देते हैं । ग्रीष्म ऋतु तक के गीतों में हम पाते हैं कि निदाघ ताप से अछूते उन रमणीय क्षणों को गीतकार ने बड़ी चतुराई से चुन लिया है जहाँ ऋतु का ताप ठंडा किया जा सकता है ।[1]

ऋतुसंहार की भाषा में कृत्रिमता नाम की कोई चीज़ नहीं है । प्रत्येक शब्द एक चित्र है और प्रत्येक वर्णध्वनि संगीत का एक तार है । बिना इसके मनोमोहक गीत नहीं बन पाते ।

ऋतुसंहार की भाषा पूरी तरह से प्रत्यक्ष की भाषा है, भोगे जा रहे क्षणों की भाषा है इसलिए उसके पदबन्धों में न समास रचनाओं की दुरूहताएं है और न क्रियापदों की पेचीदगियाँ । गीत पढिए और भाव सौन्दर्य का अनुभव करिए प्रायः ऐसी ही गीतिकाएं हैं। कालिदास संस्कृत काव्यशास्त्रियों की भाषा शैली की दृष्टि से वैदर्भी शैली का कवि कहा जाता है । इस वैदर्भी शैली को ही हमने भाषा की अकृत्रिमता कहा है । एक अच्छे गीतकार की भाषा जितनी सरल और प्रांजल होती है उतनी ही अधिक मात्रा में उसके गीत हृदयग्राही होते हैं । कालिदास के ऋतुगीतों की भाषा इस दृष्टि से अद्वितीय है । उसकी सरल भाषा भावों के सम्प्रेषण में और सौन्दर्य चित्रों के विधान में कितनी प्रभावी है

---

1. ऋतु0 1.8-10, 28

यह हम ऋतुसंहार की कतिपय गीतिकाओं से जान सकते हैं ।

ग्रीष्म ऋतु की एक सरल सी गीतिका देखिए :-

नितम्बबिम्बैः सुदुकूलमेखलैः स्तनैः सहारा भरणैः सचन्दनैः ।

शिरोरुहैः स्नानकषायवासितैः स्त्रियो निदाघं शमयन्ति कामिनाम् ।[1]

–ऋतु0 1.4

कितनी सरल भाषा है । शरीर की सुन्दरता दर्शाने वाले अंग और उन अंगों के साज-सिंगार अलग-अलग और एक साथ चमक उठे हैं । गीत के पहले भाग में नेत्रों को तृप्त कर देने वाला सुन्दर साड़ी और करधनी से सजे नितम्बों का बिम्ब, अगले भाग में स्पर्श इन्द्रिय को तृप्त करने वाला सचन्दन स्तनों का बिम्ब और फिर घ्राण इन्द्रिय को तृप्त कर देने वाला स्नानकषाय से गंधित केशों का बिम्ब सारे के सारे मिलकर प्रेम वासना से मन को भर देते हैं । भला ऐसा सौन्दर्य बोध होने पर कैसा निदाघताप ?

सरल और अकृत्रिम भाषा तथा प्रवाहमय शैली में गीतकार कालिदास ने ग्रीष्म के सजीव चित्र खींच दिए हैं । गीतों की मनोमोहकता इस बात में छिपी है कि प्रेम संवादों का सूत्र पकड़ कर गीतकार ने ऋतु के सजीव से सजीव चित्र उतार दिए हैं । इससे गीतों में कही कोई उकताहट नहीं आ पाती ।

यही प्रवाहमयी शैली हम वर्षा के गीतों में पाते हैं । भाषा में कहीं कोई अवरोध नहीं हैं । जो वर्षा की रिमझिम, जो बादलों की घनघन और जो बिजली की चमक और चंचलता प्रकृति में मिलती है वैसा ही सब कुछ कालिदास के पावस गीतों में मिलता है । प्रकृति की सुन्दरता और नारी शरीर की सुन्दरता एक दूसरे में सहज घुल मिल

गयी है । इस प्रकार का एक वर्षागीत द्रष्टव्य है :

नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः

क्वचित् प्रभिन्नांजनराशिसनि भैः

क्वचित् सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः

समाचितं व्योमघनैः समन्ततः ।

ऋतु० 2.2

वर्षा ऋतु के कजरारे मेघों का सौन्दर्य इस गीत में गाया है । गीतकार की अनुभूतियों में यह सौन्दर्य इतना गहरा गया है कि उसे गीत में अभिव्यक्ति देने के लिए एक के बाद एक नया सादृश्य पकड़ता है । पद रचनाएं कुछ लंबी अवश्य लगती है, परन्तु अर्थ कान्ति इतनी उज्जवल है कि भाषा की बोझिलता का कहीं कोई चिह्न नहीं ।

कहीं नीलकमल के पत्तों जैसे गहरे श्याम वर्ण के, कहीं कज्जल राशि जैसे और कहीं गर्भवती प्रमदा के स्तनों के मुख के समान काले मेघ आकाश में छा गए हैं ।

गीत का सौन्दर्य बोध असाधारण है किन्तु भाषा में कहीं कोई क्लिष्टता नहीं है । सारी पद रचनाएं एक ही तृतीय विभक्ति के बहुवचन में होने से और एक सा रचना प्रकार होने से भाषा की सरलता और बढ़ गयी है ।

शरद् ऋतु की नादियों और सुन्दरी स्त्रियों की रूपकान्ति को एक दूसरे में मिलाते हुए कालिदास का यह शरद्गीत भी देखने योग्य है :

चंचन्मनोज्ञसफरीरसनाकलापाः

पर्यन्तसंस्थितसिताण्डजपंक्तिहाराः

नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्बबिम्बा

मन्दं प्रयान्ति समदा प्रमदा इवाध ।

–ऋतु0 3.3

चंचल मछलियों की करधनीं से शोभित, तटों पर बैठे श्वेत पक्षियों की मालाएं पहने, विशाल पुलिनों के नितम्बों वाली मन्द मन्द बहती शरद् की सरिताएं, लगता है जैसे मदमाती प्रमदाएं धीरे–धीरे चल रही हैं ।

इस गीत की भाषा में 'अण्डज' शब्द से भिन्न एक भी ऐसा शब्द नहीं है जो बोलने के साथ ही गीत में अपनी अर्थकान्ति न फैला दे ।

हेमन्त की ऋतु तुषारपाल के कारण उतनी सहज सहय नहीं लगती । परन्तु गीतकार कालिदास की शैली देखिए तो नारी सौन्दर्य को आभूषणों से मुक्त करके भी उसमें विलासिता का आस्वाद भर देता है :

न बाहुयुग्मेषु विलासिनीनां

प्रयान्ति संगं बलयांगदानि

नितम्बबिम्बेषु नवं दुकूलं

तन्नंशुकं पीनपयोधरेषु ।

ऋतु0 4.3

हेमन्त में विलासिनी भुजबन्ध आभूषण ठंड के कारण नहीं धारण कर पातीं, नयी साडियाँ भी नहीं सह पाती, उरोज कान्ति छलकाने वाली रेशमी चोलियाँ भी नहीं पहन पातीं । यह सब है किन्तु गीत का जादू देखें कि जो उस ऋतु में नहीं मिल पाता गीत अपनी शैली की भंगिमा से उन्हीं सुन्दर अंगों के चित्रों का अस्वाद दे रहा है ।

शिशिर गीत की रचना देखे तो प्यार का सारा साज सिंगार ही बदल दिया है । अब तो शरीर को गरमाहट देने वाले ताम्बूल का सेवन और कस्तूरी का लेप, पुष्पों के रस से बनी मदिरा, धूप बत्तियों से सुवासित प्रिय का शय्यागृह यही सब सुन्दरियों का प्रिय है :

गृहीतताम्बूलविलेपनस्रजः

पुष्पासवामोदितवक्त्रपंकजाः

प्रकामकालागुरु धूपवासितं

विशन्ति शय्यागृहमुत्सुका स्त्रियः ।

–ऋतु0 5.5

उसी कमनीय भाषा और शैली में वसन्त के सौन्दर्य गीत मन को खींच लेते हैं । सौन्दर्य गीत मन को खींच लेते हैं । एक और हवा के झोंके अमराइयों से बौर की सुगन्ध बहाए लाते हैं, दूसरी ओर मदमस्त कोयल अपनी मधुर तान छेड़ रही है, भौंरों का मधुर गीतगुंजन हो रहा है । ऐसे में मन थामे बैठी नारियों के हृदय भी प्यार में धड़कने लगते हैं:

आकम्पितानि हृदयानि मनस्विनीनां

वातैः प्रफुल्लसहकारकृताधिवासैः

उत्कूजितैः परभृतस्य मदाकुलस्य

श्रोत्र प्रियैर्मधुकरस्य च गीतनादैः ।

–ऋतु0 6.34

**बिम्ब विधान:–**

आधुनिक काव्यशास्त्र में बिम्ब शब्द अंग्रेजी के 'इमेज' शब्द के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इसका अर्थ होता है अनुकरण या सादृश्य ग्रहण । साहित्य रचना की दृष्टि से बिम्ब लेखक या कवि का एक ऐसा शब्द चित्र माना जाता है जिसके माध्यम से वह अपने विचारों और अनुभूतियों को एक अत्यन्त प्रभावी अभिव्यक्ति देने में सफल होता है ।[1]

कविता में बिम्ब के महत्त्व को दर्शाते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'जब तक भावों से सीधा और पुराना लगाव रखने वाले मूर्त्त और गोचर रूप न मिलेंगे तब तक काव्य का वास्तविक ढाँचा खड़ा न हो सकेगा ।'[2]

हम समझते हैं कि शुक्ल जी ने जो कुछ कहा है उसका तात्पर्य यह है कि शब्द चित्रों और बिम्बों के बिना छन्दों की रचनाएं तो की जा सकती हैं, रूखा–सूखा काव्य भी लिखा जा सकता है किन्तु मन को मोह लेने वाली सरस कविता नहीं की जा सकती । कम से कम गीत रचना तो सुन्दर बिम्बों के अभाव में सोची भी नहीं जा सकती ।

यह ठीक है कि बिम्ब की चर्चा आधुनिक काव्यशास्त्र बहुत गहराई के साथ की गयी है । परन्तु ऐसा नहीं है कि हमारा प्राचीन संस्कृत काव्यशास्त्र बिम्ब से परिचय ही नहीं रखता था या कि वह काव्य रचना में बिम्बों और शब्द चित्रों के सौन्दर्य को समझता ही नहीं था । वास्तविकता तो यह है कि हमारे संस्कृत काव्यशास्त्री बिम्ब के सौन्दर्य

---

1. सी.डी. लिविस : द पोइटिक इमेज, पृ0 18
2. देखिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रस मीमांसा, कविता क्या है ?

से भली भाँति अवगत थे । हाँ, एक बात यह अवश्य मानी जा सकती है कि संस्कृत के प्राचीन काव्यशास्त्र में बिम्ब शिल्प को कविता समीक्षा में अलग स्थान नहीं मिल सका । बिम्ब शिल्प के विविद्य रूपों और उसके सौन्दर्य बोध के विविध पक्षों पर स्वतन्त्र विवेचन नहीं किया गया । हमारे काव्य शास्त्रियों की दृष्टि में काव्य का सर्वस्व घूम-फिर कर रस बोध ही अधिक रहा और काव्य के शैली शिल्प के अलंकार आदि और अंग उसके सामने गौण होकर रह गए ।

इसके अतिरिक्त एक और भी कारण रहा है जिससे संस्कृत काव्य शास्त्र में बिम्ब शिल्प को लेकर अलग से चिन्तन नहीं हो सका । हमारे यहाँ सादृश्य विधान और सौन्दर्य विधान के सभी काव्य शिल्पों को अलंकार शिल्प में समेट लिया गया । बिम्ब के साथ भी यही हुआ । वैसे हम विचार करें तो यह बात सरलता से जान सकते हैं कि जहाँ कहीं भी सादृश्य मूलक अलंकार की चर्चा है वहाँ बिम्ब न्यूनाधिक रूप से स्वतः सामने आ जाता है । अनेक अलंकारों के लक्षणों में बिम्ब की शब्दतः चर्चा भी गयी है । उदाहरण के लिए दृष्टान्त अलंकार का लक्षण ही देखें :

दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम् ।[1]

प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच सदृश्य मूलक बिंबप्रतिबिम्बभाव 'दृष्टान्त' अलंकार होता है ।

इसी प्रकार हम निदर्शना का लक्षण देखते हैं :

'यत्र बिम्बानुबिंबत्वं बोधयेत सा निदर्शना ।'[2]

---

1. मम्मट : काव्यप्रकाश, दृष्टान्त अलंकार

2. विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, 10.51

परन्तु यह तो हमें स्वीकारना पड़ेगा ही कि हमारे काव्यशास्त्री बिम्ब शिल्प को सादृश्य शिल्प से मुक्त करके नही सोच सकें । यद्यपि स्वभावोक्ति अलकार के बिम्ब चिन्तन को हम सादृश्य मुक्त कह सकते हैं. परन्तु वह भी बिम्ब के बारे में कुछ मुक्त प्रकार का सौन्दर्य चिन्तन नहीं माना जा सकता ।

जहाँ तक हमारे संस्कृत कवियों की रचनाओं में बिम्बशिल्प का प्रश्न है वह आज के हिन्दी. अँग्रेजी या उर्दू के कवियों से कुछ कम सुन्दर नही है । उनकी कविता में बिम्ब का अपना स्वतन्त्र सौन्दर्य मिलता है । वह अलंकारों के सादृश्य विधान के अंग रूप में तो सर्वत्र है ही परन्तु अनेकत्र केवल--केवल बिम्ब का ही अपना विशिष्ट सौन्दर्य है । सादृश्य विधान से मुक्त बिम्ब के सौन्दर्य की प्रवृत्ति हमें ऋग्वेद के उषा गीतों में भी मिलती है और रामायण के प्राकृतिक सुषमा के वर्णनो में भ‍ ।

कविता के सुकुमार कवि कालिदास के काव्य पर जब हम विचार करते हैं तो वहाँ तो बिम्बो के मुक्त सौन्दर्य की बात ही क्या कहना । वह तो जब प्रकृति के सौन्दर्य के रूपहले चित्र उतारता है तो बिम्बों की सुन्दरशता देखते ही बनती है । उसके दोनों गीति काव्य ऋतुसहार और मेघदूत बिम्बशिल्प के सौन्दर्य की दृष्टि से आज की रोमांटिक या छायावादी कविता से भी आगे निकल जाते हैं । हम समझते हैं ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नही है, एक स्वाभाविक चीज है । कारण इसका यह है कि कालिदास का कवि प्रवृत्ति की जिस मुक्त सुषमा की गोद में खेला है, बाद के युगों में उसका उत्तरोत्तर ह्रास होता गया है । यही कारण था कि यूरोप का कवि थामस अपने ऋतुगीतों मे बिम्बो का वह सौन्दर्य नहीं ला सका और कालिदास के ऋतुगीतो में मिलता है ।[1]

---

1. अरविन्द घोष : कालिदास के ऋतुगीत पृ0 22

उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखकर ही हिन्दी के एक आधुनिक रचनाकार और समीक्षक का कहना है कि 'मानवीय संस्कृति का विकास चेतना के विकास का इतिहास है । इस विकास के साथ--साथ काव्यात्मक बिम्बों के स्वरूप तथा पद्धति में भी अन्तर आता गया है । यह विचित्र बात है कि काव्य में बिम्बों का अन्तरावलंबन उसी प्रकार चलता रहता है जिस प्रकार की जीवन में संस्कृतियों का ।'[1]

बिम्बशिल्प के बारे में की गयी अब तक की विवेचना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कृत्रिम बिम्ब विधान कविता में कोई सुन्दरता नहीं आती । केवल वे ही बिम्ब कविता में सुन्दरता लाते हैं जो अनुभूतियों से प्रेरित होते हैं और सहजता तथा सजीवता से उतरते चले आते हैं । यदि रचना के अन्दर कोई भावप्रवणता नहीं है, कोई कमनीय सौन्दर्य बोध नहीं है तो प्राणहीन शब्द चित्रों या बिम्बों से कविता में कोई आकर्षण पैदा नहीं किया जा सकता है । अस्तु, कविता के अन्य रूपों की तो हम बात छोड़ दें गीत रचना तो परोक्ष में जी ही नहीं सकती । वह तो इन्द्रियों के सम्पर्क में आने वाले रूपों के चित्र चाहती है । यदि यह गुण नहीं है तो गीत महसूस नहीं किया जा सकता, वह हमारी इन्द्रियों की प्यास कभी नहीं बुझा सकता और यह न होने पर वह हमारे गले में बस नहीं सकता । इसीलिए अच्छे गीतकार अपने गीतों में सुन्दर से सुन्दर और सजीव से सजीव रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द नाद का आस्वाद देने वाले बिम्ब अपने गीतों में लाते हैं । बिम्बों का यह आस्वाद हमें कालिदास के ऋतुगीतों में भरपूर मिलता है ।

ग्रीष्म गीतों में रमणीय संध्या, चाँदनी, रात, छतों पर चाँदनी का संगीत जिसे मादक बिम्ब हैं ।[2]

---

1. तीसरा सप्तक, पृ0 115

2. ऋतु0 1.3

दूसरी ओर निदाघ से तपते और बैर भाव भुला एक–दूसरे के साथ जीवन साधते सृष्टि जीवों के बिम्ब भी उतने ही आकर्षक है ।[1]

वर्षा का एक बिम्ब तो इतना सजीव है कि लगता है कवि ने अपनी हम जोली के साथ मूसलाधार में स्नान का आनन्द लेते हुए वह चित्र उतार लिया हो ।

धूल–मिट्टी और तिनकों से भरा वर्षा का गंदला पानी जिधर ढाल मिले उधर टेढ़ा–मेढ़ा दौड़ता है और भोला मेंढक उसे सॉप समझ भौचक्का सा देखता है ।[2] कुछ बिम्ब तो हमारे इस गीतकार को इतने प्रिय हैं कि वह उन्हें भुला ही नहीं पाता । इन बिम्बों में पुष्प प्याले मे सहमधुपान करते भौरा–भौरी का बिम्ब औरा आम्रमजरी का आसव पी मदगान करते पुंस्कोकिल का बिम्ब विशेष उल्लेखनीय है । ऋतुसंहार की एक ही बसन्त गीतिका में इन दोनों बिम्बों का प्रयोग हुआ है :

पुंस्कोकिलश्चूत रसासवेन,
मत्त: प्रियां चुम्बति रागहृष्ट:
कूजद्द्विरेकोऽप्ययमम्बुजस्थ:
प्रियं प्रियाया: प्रकरोति चाटु ।

–ऋतु0 6.16

ऋतुगीतों के बिम्बों की सूची देना कोई विशेष सार्थकता नहीं रखता । सारे गीत ही प्रकृति के मतवाले बिम्ब हैं । गीत से निकाल कर कोई बिम्ब अपनी वह छटा कभी नहीं दिखा सकता जिसके लिए गीतकार ने उसका प्रयोग किया है । इसलिए बिम्बों के कुछ विशिष्ट

---

1. ऋतु0 1.11–27
2. वही. 2.13

शिल्पों के उदाहरण देख लेना अप्रासगिक नहीं होगा ।

**रूपबिम्ब : चाक्षुष सौन्दर्य के बिम्ब–**

काव्य में चाक्षुष दृश्यों के चित्रण की महत्ता को रेखाकित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है : "ज्ञानेन्द्रियो से समन्वित मनुष्य जाति जगत् नामक अपार और अगाध रूप--समुद्र में छोड़ दी गयी है । ....हमारे प्रेम, भय, आश्चर्य, क्रोध, करूणा इत्यादि भावों की प्रतिष्ठा करने वाले आलबन बाहर ही के हैं-- इसी चारो ओर फैले रूपात्मक जगत के ही हैं । जब हमारी ऑखें देखने में प्रवृत्त होती हैं तो रूप हमारे बाहर प्रतीत होते है; जब हमारी वृत्ति अन्तर्मुखी होती है तब रूप हमारे भीतर दिखायी पड़ते हैं । बाहर--भीतर रहते हैं रूप ही ।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे नेत्र ज्ञानेन्द्रियों में सबसे अधिक प्रधानता रखते हैं । यह ही बाहरी संसार के रूप का पान करते हैं और इन्हीं के द्वारा बाहर के रूप हमारे मानस में अंकित हो जाते हैं । काव्य रचनाओं में जो रूपबिम्ब उभारे जाते हैं वे भी जब हमारे मानस मे चित्र होते हैं तो हम नेत्रों की अन्तर्मुखी वृत्ति से उन मानस रूप बिम्बों का वैसा ही आनन्द लेते है जैसे बाहरी ससार में फैले रूपों का । सच तो यह है कि काव्यबिम्बो का सृजन क्योंकि कलात्मक होता है अतः उनका रूप आस्वाद बाहरी रूपों से कुछ और अधिक मादक होता है ।

कालिदास के ऋतुगीतों के चाक्षुष बिम्बों में यह मादकता बहुत ही अद्‌भुत रूप में मिलती है ।

ग्रीष्म के एक दो गीतों में रूप बिम्ब की सजीवता और सुन्दरता देखें :

---

1. रसमीमासा, पृ0 211

सितेषु हर्म्येषु निशासु योषिता.
सुखप्रसुप्तानि मुखानि चन्द्रमाः
विलोक्य नूनं भृशमुत्सुकश्चिरं
निशाक्षये याति ह्रियेव पाण्डुताम् ।
—ऋतु0 1.9

इस ग्रीष्म गीत में हम चाँदनी रात सफेद मारबल के भवनों की छतों पर सोयी सुन्दरियो के गौरे—गौरे मुख बिम्बों और रात ढलते चन्द्रमा के फीके पड़ते रूप बिम्ब का आस्वाद लेते हैं । गीत के बिम्बों की सुन्दरता यह है कि धरती के रूप सौन्दर्य को आकाश के रूप सौन्दर्य के आमने—सामने ला देता है । हमारे चक्षुओं की रूप चेतना दोनो बिम्बो के सौन्दर्य का पान करती है ।

गीष्म के इन रूपहले बिम्बों के साथ--साथ कालिदास के ग्रीष्म गीत प्रकृति के उन रूप बिम्बों के भी चित्र उतारते है जहाँ हमारी चाक्षुष चेतना ग्रीष्म की वनाग्नि के रूप सौन्दर्य में समा जाती है :

ज्वलति पवनवृद्धः पर्वतानां दरीषु
स्फुटति पटुनिनादः शुष्कवंशस्थलीषु
प्रसरति तृणमध्ये लब्धवृद्धिः क्षणेन
ग्लपयति मृगवर्गं प्रान्तलग्नो दवाग्निः ।
ऋतु0 1.25

इस गीत में वायु के वेग से पर्वत कन्दराओं में देखते न देखते फैलती वनाग्नि, आग से जलते और चटकते सूखे बॉसों की चट—चट घास—फूँस के ढेरों को क्षणभर में निगल जाती आग

और घबराए वन पशुओं के रूप बिम्ब आँखो मे उतर आते हैं ।

वर्षा के एक ही गीत में देखें, गीतकार ने रूप बिम्ब का सारा सौन्दर्य ही उडेल कर रख दिया है

शिरसि बकुलमालां मालतीभिः समेतां,
विकसित नवपुष्पैर्यूथिकाकुड्मलैश्च
विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां
रचयति जलदौघः कान्तवत् काल एषः ।

--ऋतु0 2.25

प्रिय के हाथों सजाई जा रही कामिनी के मौलसिरी और मालती के फूलों के गजरों से सजे जूड़े और कदम्ब के फूलों को कर्णपूर बनाए कानों की मनोमोहक बिम्ब आकृतियाँ गीत के गाते-गाते आँखों में उतरने लगती हैं ।

शरद् गीत में कोविदार वृक्ष का रूपबिम्ब देखते ही बनता है । हल्की-हल्की हवा से हिलती डालियाँ, नए-नए फूल और किसलय, मधुमत्त भौरें का बार-बार मधुपान इस रूप सौन्दर्य से भरा कोविदार किस सहृदय के चित्त को चंचल नहीं बना देता

मत्तद्विरेफपरिपीतमधुप्रसेकश्चित्तं विदारयति कस्य न कोविदारः ।[1]

रूपबिम्बों की ऐसी ही सजीवता और रमणीयता हम हेमन्त के नवप्रवालों के उद्गम से रमणीय सस्य तथा प्रफुल्ललोध्र कान्ति वाले रूप में पाते हैं ।[2]

---

1. ऋतु0 3.6
2. वही. 4.1

हेमन्तगीतों में रतोपभोग की हुई सुन्दरियों के जो विविध रूप बिम्ब कालिदास ने दिए हैं वे कवि की अनुभूतियों की बड़ी ही सूक्ष्म संवेदनाओं और वैयक्तिक भावुकताओं को सूचित करते हैं । प्रत्येक बिम्ब अपने में सम्पूर्ण सौन्दर्य बांधे हुए है ।[1]

शिशिरगीत में शिशिर का अलंकरण सा करती नारियों के रूप बिम्ब भी अत्यन्त मादक हैं :

मनोज्ञकूर्पासकपीडितस्तनाः सरागकौशेयकभूषितोरवः ।
निवेशितान्तः कुसुमैः शिरोरुहैर्विभूषयन्तीव हिमागमं स्त्रियः ।

—ऋतु0 5.8

नारी सौन्दर्य के इसी प्रकार के मादक रूप बिम्बों से कालिदास के बसन्त गीत भरे हुए हैं । प्रिय जन को रूप कान्ति से मोह लेती नारियों का एक रूप बिम्ब देखें :

आलम्बि हेमरसनाः स्तनसक्तहाराः
कन्दर्प दर्प शिथिलीकृतगात्रयष्ट्यः
मासे मधौ मधुरकोकिलभृंगनादैः
नार्यो हरन्ति हृदयं प्रसभं नराणाम् ।

——ऋतु0 6.26

कालिदास का ऋतुसंहार मुख्य रूप से हमारे देश की छः ऋतुओं के प्रेमोद्दीपक प्राकृतिक रूपचित्रों और नारी—सौन्दर्य के रूपचित्रों का स्वच्छन्दतावादी रोमांटिक गीतिकाव्य है । इसमें पदे—पदे रूपबिम्बों का सौन्दर्य ही भरा हुआ है । परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि

---

1. देखिए ऋतु0 4.13—18

आँखों से भिन्न दूसरी ज्ञानेन्द्रियों को आस्वाद देने वाले बिम्ब कालिदास के ऋतुगीतों में हैं ही नहीं । गीतकार ने इन्द्रियों को आस्वाद देने वाले सभी प्रकार के बिम्बों का चित्रण यथास्थान किया है । यहाँ कुछेक ऋतुगीतों के माध्यम से हम रूपेतर बिम्बों का सौन्दर्य अवलोकन करेंगे ।

**रूपेतर बिम्ब : नेत्रेतर इन्द्रियों के बिम्ब--**

ग्रीश्म ऋतु की आरंभिक चार गीतिकाओं में हम देखते हैं कि उनमें 'प्रचण्ड सूर्य' और 'स्पृहणीयचन्द्रमा' के बिम्बों में जहाँ चाक्षुष रूपकान्ति का आस्वाद होता है वहीं विशेषण की सहायता से तपन और शीतलता के स्पर्श का भी आस्वाद मिलता है ।[1]

'प्रियामुखोच्छ्वासविकम्पितं मधु' से जहाँ नेत्रों को लबालब भरे मधु चषक के रूप बिम्ब का आस्वाद मिलता है वहीं घ्राणेन्द्रिय को मदिरगंध का भी आस्वाद मिल जाता है ।[2]

'स्नानकषायवासित शिरोरूह' तथा 'सचन्दन स्तन' का रूपचित्र आते ही गन्ध और शीतल स्पर्श के बिम्बों का भी आनन्द मिलने लगता है ।[3]

'परिशुष्कतालु मृगों' के बिम्ब से रसनेन्द्रिय का अनुभव बोध सक्रिय होने लगता है ।[4]

वर्षा के एक ही गीत में मेघों की गर्जना, मयूरों की कलापशोभा तथा उनके आलिंगन और चुम्बन के बिम्बों से एक साथ रूप, शब्द, स्पर्श और रसना के इन्द्रिय आस्वाद प्राप्त हो जाते हैं ।[5]

---

1. ऋतु0 1.1
2. वही. 1.3
3. वही. 1.4
4. वही. 1.11
5. वही. 2.6

बसन्त ऋतु के एक ही गीत में सारी इन्द्रियों को तृप्त कर देने वाले बिम्बों का सौन्दर्य गीतकार ने भर कर रख दिया है । वहाँ रमणीय प्रदोष की बेला, छिटकती चाँदनी, कोकिल की कूज, पवन की गन्ध, भौरों की गुंजन, मधुपान की मस्ती सारे इन्द्रिय आस्वाद एक साथ मिल जाते हैं । गीतकार ने स्वयं गीत के इस मर्म को रेखांकित किया है : सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य ।[1]

कालिदास के ऋतुसंहार के बिम्ब-शिल्प के बारे में अब तक जो कुछ विवेचन किया गया है वह वास्तव में दिग्दर्शन मात्र ही है । इस महान गीतकार के बिम्ब शिल्प के लेकर एक स्वतन्त्र प्रबन्ध ही लिखा जा सकता है । हमारे विवेचन से तो केवल इतना जाना जा सकता है कि गीति साहित्य की आधुनिक समीक्षा गीतों में जिस बिम्ब सौन्दर्य की बात करती है वह बिम्ब सौन्दर्य प्रकृति के चितेरे और श्रृंगार के गीतकार कालिदास के गीतों में जिस रूपकान्ति के साथ मिलता है, वह अन्यत्र बहुत दुर्लभ है ।

<u>निष्कर्ष</u>–

* कालिदास का ऋतुसंहार विश्व साहित्य में ऋतुगीतों का सर्वश्रेष्ठ काव्य है । अरविन्द घोष जैसे मनीषियों ने ऐसी ही धारणा व्यक्त की है ।
* यह किसी भी प्रकार की कथा कहानी से दूर केवल भारतीय ऋतुओं की सुन्दरता का गीतिकाव्य है ।
* छः ऋतुओं की संख्या के अनुसार गीतों का विभाजन छः सर्गों में किया गया है ।
* सर्गबद्ध होने पर भी यह किसी भी अंश में प्रबन्ध महाकाव्य नहीं है ।
* ऋतुसंहार का कोई इतिवृत्तात्मक कथ्य नहीं है ।
* ऋतुओं का सौन्दर्य और उनका प्रेमोद्दीपक रूप ही इस गीतिकाव्य का कथ्य है ।
* रस की दृष्टि से यह संभोग श्रृंगार रस का गीतिकाव्य है ।

* संस्कृत काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इसकी अलंकार योजना मनोग्राही है । वैदभी रीति की काव्य शैली है ।
* गीतों में मुख्यतः प्रसाद और माधुर्य गुणों का प्रयोग है । विरल रूप में एक दो गीत ओजस् वृत्ति के हैं ।
* इन्द्रवजा जाति के उपजाति और वंशस्थ जैसे लघु तथा सरलता से गेय छन्दों का ही अधिक प्रयोग है । वैसे मालिनी और वसन्ततिलका जैसे छन्द भी गीतों में प्रयुक्त हैं ।
* आधुनिक गीति शिल्प की दृष्टि से भी यह एक ऋतु गीतों का एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य हैं ।
* गीतिशिल्प की दृष्टि से यह मुक्त गीतों की रचना है ।
* गीतियों में अनुभूतियों की निजता और वैयक्तिकता का आवेग है ।
* गीतों की शैली आधुनिक प्रेमगीतों की तरह प्रत्यक्ष सम्बोधन की है ।
* बिम्बशिल्प इन्द्रियों को संतृप्त करने वाला है ।
* भाषा शैली गीतोचित है । उसमें तरलता, कोमलता, आवेग और संगीतात्मकता भरपूर है ।

## सप्तम अध्याय

## मेघदूत का कथ्य एवं शिल्प

प्रस्तुत अध्याय में मेघदूत के कथ्य एवं शिल्प के विशद विवेचन के पूर्व उसकी रचना की पृष्ठ भूमि क्या है और कवि की अन्य कृतियों की अपेक्षा यह कृति किस उद्देश्य विशेष की पूर्ति करती है, यह जान लेना यहाँ विशेष प्रासंगिकता रखता है ।

### रचना की पृष्ठिभूमि-

यह आवश्यक नही कि कालिदास के मेघदूत को लेकर उसकी रचना की पृष्ठिभूमि में प्रतिपादित मन्तव्य पूर्णतया सिद्धान्त कोटि के हों । यहाँ तो निरपेक्ष भाव से अपनी अल्पमति के अनुसार ही कुछ विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं । राष्ट्र कवि कालिदास की प्रत्येक कृति यूँ ही नहीं निर्मित हुयी है । निश्चित ही उसके पीछे कोई न कोई असाधारण मर्म छिपा होता है । इस सन्दर्भ में हिन्दी एवं संस्कृत के प्रख्यात विद्वान मनीषि आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता हमें बहुत ही युक्ति मुक्त लगती है वे मेघदूत के रचना के बारे में बोलते हैं ।

कोइ ऐसी बात नहीं है जो अन्य साधारण मनुष्यों के अनुभव से बाहर हो । सब कुछ परिचित सब कुछ साधारण और फिर भी अनुभूति की तीव्रता से अनोखा है । अनुभूति की यह तीव्रता उसमें नवीनता का संचार करती है । साधारण स्तर से उठकर यह असाधारण बनता है । कोई आश्चर्य नहीं कि लोगों ने अनुमान भिड़ाया कि इसमें कुछ न कुछ कालिदास के व्यक्तिगत अनुभव अवश्य हैं ।

आगे आचार्य द्विवेदी इसका और स्पष्टीकरण करते हैं कि इस खण्डकाव्य में कालिदास अपने जीवन दर्शन का थोड़ा-थोड़ा संकेत देते है । व्यक्ति मनुष्य के हृदय की व्याकुल वेदना को अग-जग में व्याप्त वेदना की पृष्ठिभूमि में, उसी के साथ एकमेक करके निखारते हैं । कुछ भी बिच्छिन्न नहीं है, कुछ भी अजनवी नहीं है । बिन्दु से लेकर पर्वत तक एक ही व्याकुल वेदना समुद्र की लहरों की तरह पहाड़ खा-खाकर लोट रही है । एक तार को छुओं और सहस्त्रों तार झनझना उठते हैं । सब तार मिलकर पूर्ण संगीत के निर्माण का कार्य करते हैं । नर लोक से किन्नर लोक तक एक ही व्याकुल अभिलाष भाव उल्लसित हो रहा है । मिलन स्थिति-बिन्दु है, विरह गति वेग है । दोनों के परस्पर आकर्षण से रूप की प्रतीति होती रहती है । विचार मूर्त आकार ग्रहण करते हैं, भावना सौन्दर्य बनती है । विरह में सौभाग्य पनपता है, रूप निखरता है, मन निर्मल होता है, बुद्धि एकता का संघान पाती है । सारांश यह है कि सब मिलाकर मेघदूत चिरन्तन मानव हृदय की व्याकुल वेदना को प्रत्यक्ष कराता है उसे कहीं भी पुरानापन नहीं है वो सनातन है ।[1]

सम्भवतः इसी जीवन दर्शन की अभिव्यञ्जना मेघदूत की पृष्ठिभूमि है । मेघदूत एक अध्ययन के लेखक डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल तो मेघदूत के निर्माण की पृष्ठिभूमि को कुछ दूसरी ही गहराइ से लेते हैं । उनकी दृष्टि में मेघदूत में मात्र वियोग श्रृंगार को ही रूपायित नहीं किया गया किन्तु उसकी तह में अध्यात्म के बीज विद्यमान हैं ।

डा0 अग्रवाल ने अपनी कृति की भूमिका में लिखा है-- 'अध्यात्म और श्रृंगार के

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कालिदास की लालित्य योजना, पृ0 20-21

नील लोहित धनुष से मेघदूत के भीने भाव लोक को जीतकर मुझे भी उसका नागरिक बना लिया ।

वह कहते हैं, मेघदूत काव्य क्या है ? भारत की देव मातृक भूमि पर श्रृंगार और आत्मा के चैतन्य की परिपूर्ण भाषा है ।[1]

ऐसा ही कुछ मन्तव्य मेघदूत के अन्वेषी मनीषी श्री रञ्जनसूरिदेव का भी है । मेघदूत प्रकृति सुन्दरी का चित्रण मात्र ही नहीं है । वरन् इसकी रचना में कवि का एक विराट उद्देश्य अन्तर्निहित है । वह विराट उद्देश्य है, मुक्ति और मुक्ति के साथ प्रति–समन्वय, जिसका संकेतक है शिवपुरी अलका में काम रूप पुरूष का सन्देश वाहक बनकर जाना । काम और मोक्ष, दोनों परस्पर विरोधी तत्व है । फिर भी, मेघदूत में दोनों का सामञ्जस चित्रण इस काव्य के कवि की प्रतिभा मौलिकता की महत्ता का सुवर्ण संकेत है ।[2]

मेघदूत की रचना की पृष्ठभूमि में हमने कालिदास के प्रामाणिक अध्येताओं के मन्तव्यों को उद्धधृत किया है । उनकी असाधारण मेधा के आगे हमारी क्या औकात है कि अधिकृत विद्वानों के मन्तव्यों की आलोचना करें । किन्तु अपने मन्तव्य का प्रकाशन करना तो धृष्टता नहीं कही जा सकती । हमें तो ऐसा लगता है कि पूर्व एवं उत्तर मेघ के माध्यम से कवि अपना एक लक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता है । वो लक्ष्य है अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व की झाँकी । यही कारण है कि समूचे पूर्व मेघ में वो भारतभूमि के मनोरम दृश्य प्रस्तुत करता है और उत्तरमेघ के माध्यम से भारतीय दाम्पत्य का अप्रतिम सहज प्रेम ।

---

1. वासुदेव शरण अग्रवाल : मेघदूत एक अध्ययन, पृ0 31
2. रञ्जन सूरिदेव, मेघदूत : एक अनुचिन्तन, पृ0 106

यह भारतीय दाम्पत्य ही है जो भारतीय संस्कृति के उन्नायकों की सृष्टि करता रहा है और करता रहेगा । निश्चय ही पूर्वमेघ यदि भारतीय वसुधा का बाह्य चित्र प्रस्तुत करता है तो उत्तर मेघ भारत भूमि का आन्तरिक चित्र । यही मेघदूत की रचना की पृष्ठभूमि प्रतीत होती है ।

मेघदूत की रचना का विशिष्ट उद्देश्य

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कवि की ज्ञान दशा की अपेक्षा रस दशा को अधिक महत्त्व दिया है । इसी रस दशा की साधना स्वरूप कवि के शब्द विधान को कविता कहा है । इस साधना को आचार्य शुक्ल भाव योग के नाम से अभिहित करते हैं । उसे कर्मयोग और ज्ञान योग के समकक्ष कहते हैं । जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है । हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है । उसे कविता कहते हैं । इस साधना को हम भावयोग कहते है । इस भावयोग को आचार्य शुक्ल कर्मयोग और ज्ञानयोग को समकक्ष मानते है ।[1] इस भाव-योग के साधक कवि जन काव्य की अनेक विधाओं का सृजन करते हैं । लक्ष्य एक ही है । कवि का शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता की परिभाषा में 'कवि का शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध' ही कविता माना है । ऐसी स्थिति में इस भावयोग में इस राजात्मकता का सम्प्रेषण जितना गीतिकाव्य के माध्यम से होता है । उतना महाकाव्यों और नाटकों द्वारा नहीं; क्योंकि सजीव भाषा द्वारा वैयक्तिक अन्तर्भाव की सक्षम अभिव्यञ्जना, संगीतात्मकता के साथ गीतिकाव्य में ही सुलभ है । गीतिकाव्य में संगीत बाह्य आरोप नहीं अन्तःकरण का भाव

---

1. रामचन्द्र शुक्ल, रसमीमांसा पृ0 1

प्रवाह है । मेघदूत में इसी गीतितत्व का रस निर्झर प्रवाहित है । इसके अतिरिक्त एक बात और है, सगुण श्रृंगार के मूल में मानवीय सौन्दर्य का आग्रह रहता है । इस प्रकार मानवीय वृत्ति के प्रतीक के रूप में मेघदूत में यक्ष और यक्षिणी का चित्रण हुआ है । कालिदास की यह कृति इसीलिये उसकी अन्य कृति को अपेक्षा विशिष्ट है क्योंकि इसमें मानवीय हृदय को रससिक्त करने की अद्भुत क्षमता है । इस अर्थ में कालिदास यह गीतिकाव्य उसकी अन्य रचनाओं से विशिष्ट है जो पाठक के हृदय को रसार्द्र करने में बेजोड़ है । वर्षाकालिक मेघों के धारा प्रवाह की भाँति मेघदूत अपनी रसधारा के द्वारा सहृदयों को सराबोर कर देता है ।

मेघदूत का कथ्य–

मेघदूत का कथ्य एक वियोगी के प्यार के सन्देश और सन्देश वाहक के सुरम्य मार्ग चित्रण से भिन्न कुछ नहीं है । वैसे भी गीतिकाव्य में कथ्य कोई इतिवृत्त प्रायः नहीं होता । होता भी हो तो उसका कोई अधिक महत्व नहीं होता । इस दृष्टि के साथ ही कालिदास के मेघदूत का कथ्य समझा जा सकता है ।

मेघदूत के प्रथम श्लोक में ही सूचित कर दिया है कि कर्त्तव्य से च्युत होने पर अपने स्वामी कुबेर द्वारा अभिशप्त कोई यक्ष निर्वासित होकर रामगिरि पर बसेरा कर लेता है । उसका यह निर्वासन एक वर्ष का है । वर्ष के कुछ महीने वह जैसे तैसे काट लेता है । किन्तु वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में आषाढ़ के पहले बादल को देखते ही वह व्याकुल हो जाता है । उसे अपनी प्रिया की याद सताने लगती है । वह बेचारा कामार्स और कोई नहीं तो मेघ को ही दूत बनाकर अपनी प्रिया के पास सन्देश भेजता है ।

मेघ को दूत बनाने की आशा में वो उसकी काफी प्रशंसा करता है ।[1] वह उसके अभिजात की प्रशंसा करता है और कुटज पुष्पों का अर्घ्यादान भी करता है ।[2] उसके मस्तिष्क

---

1. पूर्व मेघ, 6
2. वही, 4

में यह भी बात है कि कहीं उसकी अभ्यर्थना मेघ अस्वीकृत न कर दें । इसीलिए वो उसको अभिप्रेरित करता है कि जब तुम आकाश में उमड़ते हुये उड़ोगे तो प्रवासी पथिकों की स्त्रियों को उपकृत भी करोगे । तुम्हारे दर्शन से उनके दिल में तसल्ली बँधेगी कि उनके प्रियतम अब अवश्य परदेश से लौट रहे होंगे । इस तरह से प्रिय मेघ, तुम मेरे ऊपर तो एहसान करोगे ही, साथ ही इस यात्रा से बहुतों का भला होगा ।

कालिदास इसी सन्दर्भ में यक्ष के द्वारा रामगिरि से लेकर अलकापुरी तक के मार्ग का मनोहारी वर्णन करता है । उसका यक्ष कहता है, प्रिय मेघ जब तुम यहाँ से अलका की ओर प्रस्थान करोगे तो भारत की धरती का प्रत्येक अंचल आपका स्वागत करेगा । हे मेघ, जब तुम माल क्षेत्र को पार कर आगे बढ़ोगे तो विन्ध्य पर्वत के ढलानों में ऊँचे–नीचे ढालों पर बिखरी हुयी नर्मदा नदी दिखायी देगी । तुम अपने जलवर्षण से प्रकृति को रससिक्त करते हुये दशार्णदेश की ओर पहुँचोगे । वहीं तुम्हें उसकी राजधानी विदिशा के दर्शन होंगे । सुन्दर बेतवा की धारा देखोगे । इसके पश्चात वेत्रवती को पार कर यदि हो सके तो निचले पर्वत पर वसेरा कीजियेगा । इस तरह बसेरा करते तुम उत्तर दिशा की ओर बढ़ते ही जाना । प्रिय मेघ, तुम्हें अलकापुरी पहुँचना है । उज्जैनी तुम्हारे यात्रा पथ में तो नहीं पड़ती फिर भी मार्ग ही सही तुम उज्जैनी में महाकाल का दर्शन करते जाना । वहाँ की सुन्दरियों के कटाक्षों का सुख अनुभव करना । यह एक ऐतिहासिक स्थान है । वहाँ तुम उदयन और वासवदत्ता के प्रेम कथाएं सुनोगे ।

क्षिप्रा नदी के तरंगों से श्रम परिहार करते हुये तुम आगे बढ़े तब कहीं आपके मार्ग में गम्भीरा नदी पड़ेगी, उसका भी स्वागत सत्कार स्वीकार कीजियेगा । इसके बाद दशपुर और ब्रह्मावर्त होते हुये कुरूक्षेत्र पहुँचोगे । तत्पश्चात् शैलराज हिमालय के निकट बसे हुये कनखल पहुचोगे

फिर तो प्यारे मेघ, तुम हिमालय के अंक में ही जा पहुँचोगे जहाँ मेरी प्यारी अलकापुरी है ।

मार्ग वर्णन का यह कथ्य तो कवि ने पूर्व मेघ में लिया है । आगे अब अलका की बात होती है ।

उत्तरमेघ में कवि ने कैलाशपुरी के समीप स्थित अलकापुरी का हृदयहारी वर्णन प्रस्तुत किया है । अलकापुरी की अपनी विशेषता है । वहाँ के प्रासाद गगनचुम्बी है । बारह मास वह ऋतुओं के पुष्प वहाँ खिलते हैं । महलों के भीतर गम्भीर ध्वनि से परिपूरित मृदंग आदि वाद्य निनादित रहते हैं । वहाँ सब ओर यौवन का शाश्वत प्यार ही छलकता है ।

अब प्रिय मेघ, मेरे घर की ओर बढ़ना । अलका में कुबेर भवन के उत्तर की ओर मेरा घर है । उसी घर के सामने एक बाबड़ी है । उसमें सदा स्वर्ण कमल खिले रहते हैं । वावडी के समीप ही क्रीड़ा पर्वत है । उस क्रीडा शैल में कुरबक की बाड़ से घिरा हुआ मोतियों का मण्डप है, जहाँ एक ओर अशोक का वृक्ष है और दूसरी ओर मौलसिरी है । उन्हीं दोनों पेड़ों के बीच में एक सोने की छतरी है जिस पर मेरा पालतू मयूर बैठा करता है । यह है मेरे घर की पहचान ।

उस घर के अन्दर प्रिय मेघ तुम मेरे वियोग में दुर्बल पड़ गई मेरी प्रिया को देखोगे । वह छरहरी देह और उठते हुए यौवन वाली है । वह नुकीले दाँतो वाली एवं पके कुदुंख के समान अधर वाली है । चकित हिरणी की चितवन वाली है । सुन्दरियों के संसार में वह विधाता की पहली रचना है ।

प्रिय मेघ, मेरी प्यारी के विरह में लगातार रोने से नेत्र सूज गये होंगे, गर्म साँसों से ओठों का

रंग फीका पड़ गया होगा । हे मेघ जिस समय तुम वहाँ पहुँचोगे या तो वह देवताओं की पूजा में लगी दिखाई देगी या मेरी याद करके मेरा चित्र बना रही होगी । वह पिंजड़े की मैना से मीठे स्वर में पूछती होगी, अरी मिठ बोली क्या तुझे भी उनकी याद आ रही है ?

यक्ष पत्नी की विरह दशा के चित्र अंकित करने के बाद अब विरही का सन्देश ।

यक्ष कहता है, मित्र मेघ, मेरी विरही व्याथिता पत्नी से कहना, हे सुकुमारी रामगिरि के आश्रम में एकांत पत्र तुम्हारा जीवन साथी अभी जीवित है । तुम्हारे वियोग की व्यथा में वह पूछ रहा है कि तुम कुशल से तो हो । यक्ष का यह सन्देश अत्यन्त करुणा भरा है ।

सब कुछ कह चुकने के बाद यक्ष कहता है, हे मेघ, मेरी प्रियतमा से कहना, प्रिये ! तुम्हारे बिना दूर पड़ा मैं जैसे तैसे जीवन जी रहा हूँ । प्रिये, मन का धैर्य सर्वथा खो मत देना । कौन ऐसा है जिसे सदा सुख ही मिला हो और कौन ऐसा है जिसके भाग्य में सदा ही दुःखा आया हो । हम सबका भाग्य पहिये की नेमि की तरह बारी–बारी से ऊपर नीचे फिरता रहता है । अन्ततः वह यह भी बताता है कि जब विष्णु शेष की शैय्या त्याग कर उठेंगे तभी मेरे शाप का अन्त हो जायेगा । फिर मिलने होने पर हम अपने प्यार की सभी प्यासें बुझा लेंगे ।

अन्त में विरही यक्ष मेघ के प्रति शुभकामना व्यक्त करता है । प्यारे मित्र, मेरी तरह तुम कभी अपनी प्यारी बिजली का वियोग न झेलो, यह मुझ कृतज्ञ की शुभकामना है ।

मेघदूत के कथ्य का जो सार हमने अब तक दिया है, वह यह बता देने के लिए पर्याप्त है कि यह कोई इतिहास या पुराण कथा नहीं है । यह गीतकार की अपनी कल्पना सृष्टि है । उसका विरही और विरहिणी सब उसकी अपनी अनुभूतियाँ है । इसीलिए यह कथ्य किसी प्रबन्ध रचना का आधार न बन कर गीतिकाव्य की संगीत लहरों को जन्म देने वाला बना है । यह किसी भी अर्थ में कथा नही है, हृदय का संगीत है ।

## मेघदूत का गीत शिल्प

### मेघ गीतों की भाषा–

महाकवि कालिदास के काव्य में कला एवं भाव दोनों पक्षों का यथोचित समायोजन मिलता है । उनका शारीरिक सौन्दर्य, जहाँ एक ओर रीति, अलङ्क छन्दोविधान एवं पद–लालित्य के चमत्कार से विलसित है, वहीं दूसरी ओर उसका मानस–सौन्दर्य, रस, भाव, ध्वनि एवं मानव मात्र के लिए हितकर मानवीय–सन्देश की सम्प्रेषणीयता समुल्लसित है । कवि ने अपनी कविता के अन्र्तबाह्य सौन्दर्य के अनुरूप ही उसके लिए भाषा परिधान पहनाया है ।

कालिदास की काव्य भाषा प्रकृतितः परिष्कृत, प्राञ्जल, सरस, सुकोमल, मधुर तथा प्रसादगुण से युक्त है । वह वर्ण्य विषय के अनुकूल कहीं प्रौढ़, कही कोमल, कही अलंकारों से सजी कहीं भावों से तरल, कहीं ध्वनि से झंकृत, कहीं माधुर्यादि गुणों से रमणीय, कहीं ललित सुकोमल पद शय्या से मनोज्ञ बन जाती है ।

भावों का सहज सम्प्रेषण और छन्दों का सहज संगीत सभी कुछ तो कालिदास के गीत की भाषा से छलकता है । उसमें ध्वनि, अक्षर, स्वर, शब्द तथा अर्थ का ऐसा मनोहर एवं सुघटित समन्वय है, जिसके कारण उनकी भाषा में विलक्षण शास्त्रीय ज्ञान तथा सुलक्षण साहित्यिक–भाव निधि दोनों की रमणीय सम्प्रेषणीयता समान रूप से सभाविष्ट हो जाती है । कवि के गीतों की भाषा में एक साथ ही साहित्य, संगीत, कला तथा भावों को हृदयावर्जक प्रसन्नता का मनोरम समायोजन समुपलब्ध हो जाता है । कौन ऐसा सहृदय पाठक होगा, जो कालिदास की कविता की इस भाषा के उपर्युक्त गुणों पर रीझ न उठेगा ।

उसके मेघदूत गीतिकाव्य की भाषा सर्वत्र अत्यन्त प्राञ्जल, परिमार्जित एवं प्रवाहपूर्ण है जिनमें

कोमलकान्त पदावली अत्यन्त मनोहारिणी है । उसकी लेखनी से निकला विरहिणी का एक भावचित्र देखिए :

उत्संगे वा मलिन वसने सोम्य निक्षिप्य वीणां
मदगोत्रांक विरचित पदं गेय मुदगातुकामा ।
तंत्रीमाद्रां नयन सलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ।।[1]

कहीं–कहीं समास शैली का आश्रय लेने पर भी क्लिष्टता एवं पद्य के प्रवाह में अवरोध नहीं पाया जाता है :–

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीर घोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमय मुव स्तुंगमभ्रंलिहाग्राः,
प्रासादास्त्वां तुमभितुभलं यत्र तैस्तैर्विशेषौ ।।[2]

कल्पनाओं एवं अनुभूतिमयी भावनाओं के समान कालिदास की भाषा भी अपनी ही है । कवि प्रसंगानुकूल पदावली की संघटना द्वारा उसे मौलिक स्वरूप प्रदान करता है । उसकी भाषा में अनुनासिक ध्वनियों की गूँज एक संगीत भर देती है ।

---

1. उत्तरमेघ, 27
2. उत्तरमेघ, 6

कालिदास की रचनाओं में शब्द योजना स्वतः स्फूर्त होती है । कौन से वर्ण का किस रस में प्रयोग उचित है, किसका नहीं, इसकी चिन्ता वहाँ नहीं होती मेघदूत इसका प्रमाण है । वास्तव में यह सब कवि की चिन्तवृन्ति के अनुसार होता है ।

मेघदूत की भाषा का उपर्युक्त प्रकार से समीक्षण कर लेने के बाद बिना किसी हिचक के हम यह कह सकते हैं कि ऋतुसंहार और मेघदूत की भाषा में बहुत अधिक स्वर भेद दिखायी देता है । ऋतुसंहार के गीतों की भाषा एक नौसिखिए कवि की भाषा है, जबकि मेघगीतों की भाषा एक मंजे हुए प्रौढ़ गीतकार की भाषा है । ऋतुगीतों की भाषा में हम देखते है कि वह शब्दों की उछाल है; शब्दो की और वाक्यांशों की पुनरावृन्तियाँ भी मिलती हैं । मेघदूत की भाषा में ऐसा कहीं नहीं है । यहाँ आते–आते ऋतुगीतों का कवि भाषा का पूर्ण स्वामी बन गया है । अब भाषा उसके हाथ से न फिसल सकती है और न जल्दी ही अपने को दोहरा सकती है ।

एक और भी बहुत बड़ा अन्तर हम ऋतुसंहार और मेघदूत की भाषा में पाते हैं । यह अन्तर भाषा के कोश या व्याकरण से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है । यह अन्तर वास्तव में गीतकार की चेतना के स्तरों का अन्तर है जो उसकी भाषा में उतर आया है । ऋतुसंहार का कवि अभी ऐसा चित्रकार है जो आकृति सामने रखकर चित्र उतारता है और जो रूप रंग उसके हैं वे ही अपने चित्र में लाने की कोशिश करता है । कल्पनाशीलता से कोई रूप–रंग उसमें डालना उसकी सामर्थ्य से अभी बाहर है । यही कारण है कि ऋतुगीतों के भाषा चित्र बाह्य प्रकृति की ज्यों की त्यों तस्वीर लगते है । मेघदूत के शब्दचित्र इससे बहुत आगे निकल गए है । वहाँ भाषा के प्रयोग बहुत साभिप्राय हो गए हैं । वे बाह्य जीवन का चित्र ही नहीं उभारते उसमें कुछ नयी सुन्दरता भी डाल देते हैं ।

कालिदास के दोनों गीति काव्यों की भाषा में जिस स्तर भेद की बात हमने की है, वह बहुत स्वाभाविक है । यह अन्तर हमारे गीतकार के विकास को बताता है । बड़े से बड़े अन्य कवियों में भी यह अन्तर देखा जा सकता है । किन्तु यह बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि भाषा की जो चित्रात्मकता का सामर्थ्य कालिदास की सभी रचनाओं में मिलता है उसका उन्शीलन तो ऋतुसंहार में ही हो गया है, किन्तु मेघगीतों में आकर तो वह सामर्थ्य बहुत बहुत सुपल्लवित हो गया है ।

ध्वनि की प्रधानता

अनकही कह देना ध्वनि या व्यंजना है । कालिदास व्यञ्जना के महाकवि के रूप में विख्यात है । व्यञ्जना वहीं होती है जहाँ शब्द के स्थूल अर्थ का स्थान सूक्ष्म ले लेता है । मेघगीतों की भाषा में यह गुण है । यक्ष की दुर्बलता को ध्वनित करने के लिए कवि ने कनक--वलय–भ्रंश–रिक्त प्रकोष्ठः कहा है जिससे यह ध्वनित हो जाता है कि यक्ष अपनी प्रियतमा यक्षिणी के विरह में दुर्बल काया वाला हो गया है ।[1]

कालिदास ने ध्वन्यात्मक शैली के द्वारा किसी विषय का विस्तृत वर्णन न करके थोड़े ही शब्दों में बड़ी कुशलता से किया है । यक्ष मेघ से कहता है, हे मेघ, मैं जानता हूँ कि तुम लोक प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक नामक मेघों के वंश में उत्पन्न और स्वेच्छानुसार विचरण करने वाले हो, इन्द्र के परम मित्र हो; दुर्भाग्यवश अपनी प्रेयसी से विमुक्त हुआ मैं तुमसे याचना कर रहा हूँ क्योंकि गुणी पुरूष से की गई याचना निष्फल हो जाने पर भी अच्छी है परन्तु गुणहीन

---

1. पूर्वमेघ, 2

पुरूष से की गई याचना सफल होने पर अच्छी नहीं है ।[1]

यक्ष की इस उक्ति में एक-एक शब्द में ध्वनि का प्रयोग कवि ने किया है । वह मेघ के उच्च कुल का, इन्द्र के प्रधान पुरूष के रूप में प्रस्तुत करता हुआ उसकी श्रेष्ठता एवं आदर्श रूपता को सामने ला देता है । इस कथन से ध्वनित हो जाता है कि उच्च कुलीन यक्ष के प्रमुख प्रतिनिधि से मैं याचना कर रहा हूँ । मेरी इस याचना में विवशता है । मैं अपनी प्रेयसी से भाग्यवश बिछुड़ गया हूँ, मैं अपने से अधिक गुण वाले पुरूष से याचना कर रहा हूँ । यदि निष्फल हो गई तो भी श्रेष्ठ है । यक्ष के इस कथन से भाषा का चातुर्य पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है । मेघ सन्देश ले जाने के लिए विवश हो जाता है । व्यंग्य काव्य का सर्वोत्कृष्ट एक उदाहरण और दृष्टव्य है :-

तां चावश्यं दिवसगणना तत्परामेक पत्नी-<br>
मव्या पन्नाम विहत गतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।[2]

'दिवस गणनां तत्पराम्' 'एक पत्नीम्' अव्यापन्नाम् अविहतगतिः भ्रातृजायाम्' 'दृक्ष्यसि' ये प्रत्ये पद व्यंज्जक है । प्रथम यक्ष की प्रियतमा यक्षिणी की व्यापार शून्यता, तन्मयता और यक्ष की प्रतीक्षा करती हुयी याक्षिणी का संकेत करता है तो 'एक पत्नीम्' शब्द उसके पतिव्रता दृढ़ अनुराग का संकेत करता है । 'अव्यापन्नाम्' केवल प्राण शेष होने की स्थिति को ध्वनित करता है । 'अविहत गतिः' से यह संकेत किया है कि हे मेघ तुम मार्ग में कहीं पर रूकना नहीं अथवा विश्राम न करना नहीं तो तुम्हारी मेहनत व्यर्थ हो जायेगी ।

---

1. पूर्वमेघ, 6
2. पूर्वमेघ, 10

कालिदास की कोमल कारूणिक भावों की व्यंजना बड़ी सुन्दर है :-

तेनार्थित्वंत्वयि विधि वशाद दूरबन्धुर्गतोऽहम्,

याञ्चामोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।[1]

'दूरबन्धु' शब्द अत्यन्त व्यञ्जक है । यक्ष कहता है कि अभिमानी होता हुआ भी मैं तुमसे भावना कर रहा हूँ क्योंकि मैं भाग्यवश अपनी प्रियतमा से बिछुड़ा हुआ हूँ । इससे यह ध्वनित होता है कि यक्ष की अपनी प्रिया पर अनुरक्त है । साथ ही यक्ष की स्वाभिमानता भी प्रकट हो रही है । इन दोनों व्यञ्जनाओं के सहारे कवि ने यह ध्वनित कर दिया है कि मैं यह याचना नहीं करना चाहता था किन्तु क्या करूँ मै विवशता में ही ऐसा कर रहा हूँ ।

**गीत की वैदर्भी शैली**–

वैदर्भी रीति के साथ कालिदास का नाम इतना घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है कि आचार्य दण्डी ने तो वैदर्भी रीति की उद्भावना ही कालिदास के द्वारा मानी है––

लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विदशा गिरः ।

तेनेदं वर्त्य वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ।।[2]

कालिदास की भाषा विषयों का वर्णन करके भी विषयों के परे है । मधुद्रव में पगी उनकी

---

1. पूर्वमेघ, 6

2. डॉ0 शंकरदन्त ओझा : संस्कृत को रघुवंश की देन, पृ0 161

वैदर्भी शैली ने काव्य साधना का मार्ग शोधा है । प्रसाद एवं माधुर्य की प्रधानता के कारण कालिदास मुख्यतः ललित पक्ष के कवि है, अतः वैदर्भी शैली ही उसकी भाषा का एकमात्र मार्ग है ।

कालिदास शीर्षस्थ कलावित है । भाव गंभीर, रचना मधुर नाद एव भाषा के प्रभु जिसने सुरभारती की, अनन्त संभावनाओं में से उस प्रकार की काव्य शैली तथा पद संगठना का निर्माण किया है जो निश्चित रूप से अत्यधिक महान, अत्यन्त शक्तिशाली एवं अत्यधिक नादोन्नत है । कालिदास ने संस्कृत को उत्कृष्ट नाद के भव्य भवन में स्थापित किया है तथा उनकी रचनाओं से उद्भूत ध्वनि वहीं ध्वनि है जो प्राचीन साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में दिखाई देती है । इस साहित्य की शैलीगत विशेषताये सुगठित परन्तु सहज संक्षेप मृदु गांभीर्य और स्निग्ध उदारता और प्रांजल सौन्दर्य और सबसे बढ़कर संक्षिप्त तथा प्रभावोत्पादक काव्य भाषा है ।

कालिदास की भाषा इतनी लचीली है कि महाकाव्य से लेकर गीति तक की समस्त काव्य विधाओं में इसकी सुन्दर योजना संभव है । कालिदास ने अपनी महाकाव्य सम्बन्धी शैली में संस्कृत भाषा को इन स्थायी विशेषताओं में नाद एवं अभिव्यंजन की वह पूर्णता तथा महनीयता जोड़ दी है जो अँग्रेजी भाषा के कवि मिल्टन के एतद सम्बन्ध वैशिष्ट्यों से आगे बढ़ जाती है ।[1]

कविवर कालिदास ने मेघदूत इस में वैदर्भी रीति का प्रयोग करते हुए इसकी रचना प्रसाद गुण युक्त सरल, सुबोध, सरस, मधुर एवं ललित शैली में की है । इस काव्य में कवि ने जितनी सुन्दर कल्पना की है वैसी ही मधुर–मनोहर शैली है । इसकी भाषा प्राञ्जल, परिमार्जित एवं प्रभावयुक्त होते हुए रसानुकूल है । मेघदूत कोमलकान्त पदावली का अन्यतम निदर्शन है ।

---

1. अरविन्द घोष : कालिदास, पृ0 16–17

छायावादी रचना तीव्र अनुभूति प्रधान हुआ करती है । जब कवि को कण–कण में चेतना का अनुभव होता है, सारी प्रकृति आनन्द रस में नाच रही होती प्रतीत होती है, तभी इस भावना प्रधान काव्य का उदय होता है । उसके भावावेग की जिसमें अमूर्तता या सूक्ष्मता की प्रधानता होती है; साधारण शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं । वे भावों के भार को नहीं संभाल पाते । फलतः कवि की भाषा उस क्षण वक्रता लिए लाक्षणिक और व्यञ्जनामय बन जाती है । रागात्मक तत्व प्रबल पड़ जाता है और बुद्धि तत्व मन्द । इस भाव स्थिति से गीतिकाव्य का उदय होता है । स्थूलता का स्थान सूक्ष्मता ले लिया करती है । अमूर्त की मूर्त से और मूर्त की अमूर्त से तुलना की जाती है । भाषा प्रतीक प्रधान बन जाती है ।[1]

गुण योजना–

पिछले पृष्ठों में मेघदूत के शिल्प पक्ष के अन्तर्गत भाषा और भाषा की व्यञ्जना शक्ति के बारे में लिखा जा चुका है । अब हम महाकवि के मेघदूत की गीतिरचनाओं में गुणयोजना की ओर बढ़ते हैं ।

माधुर्य गुणः–

मेघदूत विप्रलम्भ श्रृंगार प्रधान रचना है । जिसमें यक्ष का प्रणय निवेदन यक्षिणी के विरह विकलित सौन्दर्य का बहुविध वर्णन है । इसमें कालिदास ने माधुर्य गुण का सफल प्रयोग करके अपने विरह गीत को मधुर बना दिया है । भाषा माधुर्य के शिल्पी कालिदास ने कहीं ध्वनियों और शब्द रचना की मधुरता से गीतों की मधुरता दी है । उसके गीतों के गायन में मधुरता गूँज उठती है :

---

1. शिव प्रसाद भारद्वाज : कालिदास दर्शन, पृ0 223

मन्दं मन्दंनुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।
गर्भाधान क्षणपरिचयानूनमाबद्ध मालाः,
सेविष्यन्ते नयनसुभगं रवे भवन्तं बलाकाः ।।[1]

अल्प समासयुक्त भाषा से माधुर्य गुण की अभिव्यञ्जना किस प्रकार होती है यह तथ्य कालिदास से बेहतर कौन जानता है । माधुर्य व्यञ्जक ध्वनियों का समायोजन देखिए :

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं,
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।
चूडापाशे नवकुरबकं चारू कर्णे शिरीषं,
सीमन्ते च त्वदुपगमणं यत्र नीपं वधूनाम् ।।[2]

गीतकार कालिदास ने मेघ मार्ग में पड़ने वाले विभिन्न प्राकृतिक स्थल अलकापुरी में बसने वाली स्त्रियों के विभिन्न कार्यों एवं यक्ष के मनोजगत में एक छत्र अधिकारिणी बनी यक्ष प्रिया का वस्तु आदि सौन्दर्य माधुर्य गुण से ही साकार हुआ है । कालिदास ने यक्षिणी के देहयष्टि नख शिख सौन्दर्य प्रोषित भृन्तकाओं के विरह को दूर करने के लिए विविध कामिक वर्णन में श्रृंगार रस को पुष्ट करने के लिए माधुर्य से भरे शब्दों का प्रयोग किया है ।

**<u>प्रसाद गुण–</u>**

भाषा के प्रसाद गुण का सम्बन्ध उसके अर्थ बोध से है । जिन रचनाओं का अर्थ बिना

---

1. पूर्व मेघ, 10
2. वही. उत्तर मेघ, 2

बौद्धिक परिश्रम के समझ में आ जाये वहाँ प्रसाद गुण होता है । आचार्यो ने इसे सभी रसों में व्याप्त बताया है । मेघदूत सन्देश काव्य है । इसमें प्रिय की व्यथा का अत्यन्त मनमोहक रूप में वर्णन है । इसमें माधुर्य के बाद प्रसाद गुण की बहुलता है । कवि कालिदास ने मेघ मार्ग और अपने हृदय की गहरी विरह अनुभूति का अत्यन्त कोमल रूप में वर्णन किया है । जिसमें हम प्रसाद गुण देख सकते है । यहाँ प्रेरक वायु द्वारा ऊँचे अट्टालिकों को आर्द्रकर मेघ की गति का अत्यन्त स्वाभाविक और सरल शब्दों में चित्रांकन हुआ है ।[1]

उन्तर मेघ में अलकापुरी के वर्णन में सर्वत्र प्रसाद गुण देखा जा सकता है । यहाँ अभिसारिकाओं का वस्तुपरक चित्रांकन प्रसाद गुण से किया गया है :-

गच्छन्तीनां रमणवसीतं योषितां तत्र नक्तं,
रूद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
सौदामन्या कनक निकषस्निग्धया दर्शयोर्वी
तोयोत्सर्गस्तानितमुखरो मा च भूर्विक्लवास्ताः ।।[2]

**ओजगुण:**

जहाँ किसी रचना को पढ़ने या सुनने से मन में उमंग, उत्साह आदि भाव का संचार होता हो वहाँ ओजगुण माना जाता है ।[3]

---

1. उन्तरमेघ0 8.
2. पूर्वमेघ, 40
3. काव्यप्रकाश 8.69

कालिदास ने अपने माधुर्य प्रधान गीति काव्य में कहीं कहीं कथ्य के अनुरूप ओज गुण का प्रयोग किया है । शैलीगत ओज का प्रयोग कवि ने महाकाल के मन्दिर में पूजा के समय गम्भीर नगाड़ों की निनाद में अथवा ताण्डव नृत्यरत शंकर की भुजाओं में लिपटे लाल बादलों के बहुविध वर्णन में किया है ।

**अलंकार शिल्प–**

मेघदूत में कालिदास ने अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया गया है । अलंकारों के विन्यास में भी कवि ने मौलिक एवं बड़ी ही रमणीय कल्पना का प्रयोग किया है । मेघदूत में प्रयुक्त अलंकारों के माध्यम से जहाँ प्राकृतिक दृश्य मानवीय सौन्दर्य से प्रतिस्पर्द्धा करने लगे है वहाँ मानवीय सौन्दर्य प्राकृतिक दृश्यों में जाकर विश्राम करने लगा है ।[1]

कालिदास के अलंकार शिल्प के बारे में पण्डित चन्द्रशेखर पाण्डेय का यह समीक्षात्मक कथन अति उचित लगता है :

उनकी कविता अत्यधिक अथय अनावश्यक अलंकारों के भार से आक्रान्त कामिनी की भाँति मन्द मन्थर गति से चलने वाली नहीं है, अपितु 'स्फुटचन्द्रतारका' विभावरी की भाँति अपने सहज सौन्दर्य से सहृदयों के चित्र को आकृष्ट करने वाली है ।

हमारे इस महान कवि ने शब्द और अर्थ दोनों स्तरों पर अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है । मेघदूत के कतिपय अलंकार प्रयोगों से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाएगी ।

---

1. डॉ0 रामकृष्ण आचार्य: मेघदूतम्, पृ0 सं0 99

**उपमा अलंकार–**

उपमा अलंकार के प्रयोग में कालिदास को संस्कृत साहित्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है । वे उपमा अलंकार के आचार्य कहे जा सकते है । सुन्दर उपमाओं के लिए वे प्रसिद्ध है । वस्तुतः उनकी उपमाएं मौलिक एवं अद्वितीय है । संस्कृत साहित्य में ही नहीं अन्य वाड्.मय में कोई भी कवि इस क्षेत्र में उनकी समता नहीं कर सका है, क्योंकि उन्होंने वे उपमाएं जीवन के और प्रकृति के साथ साथ ज्ञान के व्यापक क्षेत्र से ग्रहण की है ।

जब हम कालिदास की उपमा की बात करते है, तब हम लोग केवल उपमा अलंकार के प्रयोग नैपुण्य की ही बात नहीं करते । उनकी एक विशेष प्रश्कार की अनुकरणीय सालंकार प्रकाश भंगिमा की बात करते है । इसीलिए कालिदास के सम्बन्ध में उपमा शब्द का वाच्यार्थ सब प्रकार के अलंकार है । सारतः वह कवि की सादृश्य विधान शैली से तात्पर्य रखता है ।

कालिदास की कृतियों में सैकड़ों उत्कृष्ट उपमाये प्रयुक्त हुयी है जो उनके काव्य की सुन्दरता को बढ़ाती है । उनकी उपमाए सरस एवं सर्वथा विषयानुकूल होने के कारण अद्वितीय पायी जाती है ।

मेघदूत में सुन्दर उपमाओं का प्रयोग गीतकार ने किया है । कुछ उपमाएं देखी जा सकती हैः

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ताद्
वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुः रपण्डमारवण्डलस्य ।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ।।[1]

---

1. पूर्वमेघ 15

इन्द्रधनुष से युक्त श्याम मेघ की तुलना मोर के चन्दों से सुन्दर गोपवेष कृष्ण से की गई है जो अत्यन्त मोहक है ।

बिन्ध्य की ऊबड़–खाबड़ तलहटी में बहती नर्मदा को हाथी के शरीर की सुन्दर चित्रकारी की उपमा[1], वेत्रवती की लहरों को चंचल भ्रूभंग की उपमा[2], विरहिणी यक्षिणी को न सोई–न जागी स्थल कमलिनी की उपमा[3], शिप्रावात को चाटुकार प्रियतम की उपमा[4] पाठक के मन में समा जाती हैं ।

<u>रूपक अलंकार</u>--

कवि ने रूपक अलंकार का प्रयोग भी अपनी कृतियों में चारूतर किया है :–

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीवप्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृति सुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
तस्यादस्याः कुसुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्यान्
मोघीकर्तुं चटुलशफरोद् वर्तन प्रेक्षितानि ।।[5]

'चटुलशफरोद्वर्तन प्रेक्षितानि' में चंचल मछलियों में चितवनों का सुन्दर आरोप कालिदास ही कर सकता है ।

---

1. पूर्वमेघ, 19
2. वही. 24
3. उत्तरमेघ, 30
4. पूर्वमेघ
5. वही. 44

निदर्शना अलंकार--

कालिदास के निदर्शना शिल्प भी बेजोड़ मिलते है :

"नूनं तस्याः प्रवलरुदितोच्छून नेत्रं प्रियाया,
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।
हस्तन्यस्तं मुखमकमसकलव्यन्क्ति लम्बालकत्वात्
किइदोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्विभर्ति ।।"[1]

विरहिणी यक्षिणी का फीका मुख मेघाच्छन्न चन्द्र के फीकेपन को किस प्रकार धारण कर सकता है, इस प्रकार उक्त कथन के असम्बद्ध होने के कारण उसके सम्बद्ध हो जाने की दृष्टि से इसका स्वतः उपमा में पर्यवसान हो जाता है कि यक्षिणी का मुख मेघाच्छन्न चन्द्र के समान फीका है ।

इस निदर्शना की सुन्दरता अलकों में छिपे मुख का बिम्ब उभारने में है ।

परिसंख्या अलंकार--

परिसंख्या की अलंकार शैली महाकवि की लेखनी से थिरक उठती हैं :

आनन्दोत्थं नयन सलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै
नान्यिस्तापः कुसुमशरजादिष्ट संयोगसाध्यात् ।
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद विप्रयोगोपपान्तिः,
वितेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदास्ति ।।[2]

---

1. उन्तरमेघ 24

2. वही.

कवि ने यहाँ आँसू आदि वस्तुओं के अन्य निमित्तों से होने का निषेध कर आनन्दादि से होने का कथन किया है । अतः यह परिसंख्या है ।

उत्प्रेक्षा अलंकार--

मेघदूत में उत्प्रेक्षाओं की अपूर्व छटा बिखरी दिखायी देती है :

उज्जयिनी अपने विशाल वैभव के कारण ऐसी प्रतीत होती है मानो वह भूतल पर आए हुये स्वर्गस्थ जीवों के भोगांशिष्ट पुण्यों से आहृत कान्तियुक्त स्वर्गखण्ड हो :

स्वल्पीभूते सुचरित फले स्वर्गिणां गां गतानाम् ।

शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ।।[1]

शिवजी ऐसे रसिक हे कि मानों उनका ऊँचा अट्टहास ही हिमश्वेत कैलास बन गया है :

शशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ।[2]

चम्बल नदी की शुभ्रजल धारा पर नील मेघ के झुकने के कारण उस पर इन्द्रनील मणि मध्ययुक्त मुक्ताहार की सुन्दर उत्प्रेक्षा कितनी हृदयंगम है ।[3]

---

1. पूर्वमेघ 31
2. पूर्वमेघ 61
3. पूर्वमेघ 48

**अर्थान्तरन्यास अलंकार--**

अर्थान्तरन्यास अलंकार के प्रयोग में कालिदास परम निपुण है । उन्होंने अपने काव्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग इतनी विशिष्टता पूर्वक किया है कि विद्वान काव्य समीक्षकों ने प्रशंसा करते हुये कहा है :

''अर्थान्तरन्यास सन्दर्भे कालिदासों विशिष्यते ।

मेघदूत में प्रयुक्त अर्थान्तरन्यास अलंकार कवि की गहरी लोकानुभूति का परिचय देते हुये उसके जीवन दर्शन की संक्षिप्त झाँकी प्रस्तुत करता है । अर्थान्तरन्यास अलंकार के अतिशय सुन्दर प्रयोग के उदाहरण दृष्टव्य है :

शेषान्मासान् विरह दिवस स्थापित स्यावधेर्वा,<br>
विन्यस्यन्ती भुविगणनया देहली दत्त पुष्पैः ।<br>
सम्भोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती,<br>
प्रायेणैते रमण विरहे स्वंगनानां विनोदाः ।।[1]

महाकवि ने चिरन्तन सत्य का प्रतिपादन प्रायः अर्थान्तरन्यास अलंकारद्वारा किया है । ये वाक्य संस्कृत साहित्य के अमूल्य निधि है । इन उक्तियों से काव्य की शोभा द्विगुणित हो गई है ।

कालिदास के अलंकारों का परिगणन करना हमारा लक्ष्य नहीं है । केवल यह जानना है कि सौन्दर्य का उत्कर्ष करने में जो सादृश्य शैली जहाँ उचित होती है, कालिदास वैसा ही करता है ।

---

1. उत्तरमेघ 27

मेघदूत का अलंकार शिल्प अप्रतिम है । इसका काव्य सौन्दर्य इतना उत्कृष्ट कोटि का है कि जिस पर सहृदय काव्यरसिक मुग्ध होकर श्रृंगार रसधारा में निमग्न हो जीवन पर्यन्त इसे पढ़ने की अभिलाषा लिये कह उठते है । माघे मेघे गतं वयः ।

अनेक कवियों एवं काव्य मर्मज्ञों ने मेघदूत की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है । पं0 केशव प्रसाद मिश्र ने अधोलिखित विचार व्यक्त किये है-- कालिदास की यह प्रसन्न-मधुरवाणी, मन्दाक्रान्ता की यह झूमती चाल, देश की यह मनोहर रूप माधुरी सबने मिलकर मेघदूत को उस अलौकिक रस से परिप्लावित कर दिया है ।

पं0 चन्द्रशेखर पाण्डेय ने मेघदूत की समीक्षा करते हुए लिखा है- 'संक्षेप में, उदात्त कल्पना, कलात्मक सृष्टि नैपुण्य, रसानुकूल भाव व्यञ्जना, उच्च आदर्श तथा सुललित पद विन्यास जैसे इन विशिष्ट गुणों के कारण मेघदूत, गीति काव्य कला का निदर्शन है ।''[1]

अमोघराघव के रचनाकार दिवाकर ने 'मेघदूत' को लक्ष्य कर कालिदास की यह प्रशंसा की है--

रम्याश्लेषवती प्रसाद मधुरा श्रृंगार संयोगज्ज्वला,
चाटूक्तैराखिल प्रियै रहरहस्संमोहयन्ती मनः ।
लीलान्यस्त पद प्रचार रचना सदृर्ण संशोभिता,
भाति श्रीमती कालिदास कविता कान्तेव कोते रता।।[2]

---

1. पं0 चन्द्रशेखर पाण्डेय व्यास : संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ0 283
2. डॉ0 कैलाश नाथ द्विवेदी : महाकवि कालिदास, पृ0 सं0 45

मेघदूत का छन्द शिल्प--

छन्द योजना काव्यार्थ के उत्कर्ष में महत्व रखती है मेघदूत गीति काव्य में आद्योपान्त मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ है । कालिदास के छन्दों के प्रयोग भी भावानुकूल है । भाव--चित्रण के अनुसार ही वे छन्द का प्रयोग करते है । मेघदूत गीति काव्य का प्रारम्भ वर्षा ऋतु से किया गया है । वर्षा ऋतु में मेघ के आगमन से साधारण प्रवासी का भी पथ आर्द्र हो जाता है और उसकी गति मन्द हो जाती है । मन्दाक्रान्ता छन्द की गति भी मन्द होती है ।

वर्षा ऋतु में दूत कार्य सम्पन्न करने वाला मेघ मन्द--मन्द चरण न्यास से ही अपनी यात्रा को पूरी करेगा । यही कारण है कि महाकवि कालिदास ने मेघदूत गीतिकाव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द की योजना की है ।

विरहकातर यक्ष की क्रियाशक्ति भी मन्द पड़ गई है । वह करूण और मर्मस्पर्शी स्वर में धीरे--धीरे अपने सन्देश को मेघ से कह रहा है । इसी कारण कवि ने मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है ।

कालिदास के द्वारा प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता छन्द की परम रमणीयता स्वर सौष्ठव के साथ माधुर्य विलास तथा सुकुमार संगीत लहरी विप्रलम्भ श्रृंगार को व्यंजित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुयी है । जिस पर मुग्ध होकर क्षेमेन्द्र सहृदय आचार्य कह उठे है --

सुवशा कालिदासस्यं मन्दाक्रान्ता विराजते ।
सदश्वदमकस्येव काम्बोज तुरगांगना ।।[1]

---

1. डॉ0 कैलास नाथ द्विवेदी, महाकवि कालिदास, पृ0 सं0 53

वास्तव में कालिदास के छन्द–छन्द नहीं वरन् दृश्य और आदृश्य के चित्र फल बन जाते है । छन्दों का पूरा व्यक्तित्व शब्द और अर्थ की निष्पत्ति में समाहित होकर कविता को साकार कर देता है । जैसे कविता किसी साँचे में ढलकर निकल आयी हो ।....मैंने बार–बार यह अनुभव किया है कि कालिदास की कविता वैसे ही प्रस्फुटित होती है जैसे वृन्त पर रंग बिरंगा फूल–– जैसे मृणाल पर कई पंखुरियों का कमल । कभी–कभी यह भी प्रतीत हुयी है कि छन्द नहीं किसी की आँखे खुल गयी है, जिन्हें देखते रह जाना होता है । कालिदास की कविता का सर्वांग सुन्दर है । वह अपने छन्द में किसी एक शब्द या चरण या लय में नहीं रहती–– वह तो सिर से पैर तक सौन्दर्य की ईकाई में प्रतिष्ठित रहती है ।[1]

कालिदास की मन्दाक्रान्ता के नाद सौन्दर्य पर विद्वानों ने जो कुछ कहा है, वह एक पक्ष है, इससे अधिक भी कुछ है । पहली बात तो यह गीतकार ने पूरे मेघ काव्य में एक ही छन्द का प्रयोग करके उसे एक लम्बी मल्हार का रूप दे दिया है । ग्राम वनिताओं की तरह टोलियाँ बना कर गाते चले जाइए । छन्द की एकात्मता ने पूरे काव्य को एकात्म गीत बना दिया है ।

मन्दाक्रान्ता में पुरवा हवा सी लहरें गूँजती हैं अतः मेघगीतों को इससे सुन्दर संस्कृत का कोई छन्द नहीं हो सकता था । विरह की मल्हार को तो यही छन्द सही स्वर दे सकता था ।

## रस निष्पत्ति

मेघदूत में सर्वत्र विप्रलंभ श्रृंगार रस ही छाया दिखाई पड़ता है । विशेषकर उत्तरभाग में यक्ष अपनी और अपनी पत्नी की विरहावस्था का वर्णन जिन श्लोगों में करता है । वे श्लोक अत्यन्त करूणोत्पादक है । विरहिणी यक्ष पत्नी का वर्णन करते समय कालिदास ने एक उत्तम गृहिणी का चित्र अंकित किया है । वह अन्य नायिकाओं की तरह सिर्फ सुन्दरी ही नहीं– अपितु विविध कला प्रवीण सहृदया सच्ची प्रेमिका और आदर्श पतिव्रता है । ऐसी स्त्री की

विरहावस्था का चित्र कवि ने अत्यन्त कौशल से चित्रित किया है ।[1]

यक्ष स्वयं दुःखी होता हुआ भी अपने प्रियतमा यक्षिणी के दुःख से अधिक दुःखी हो जाता है । वियोगिनी यक्षिणी की वियोग दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण मेघदूत में किया गया है :

नूनं तस्या प्रबलरूदितोच्छूननेत्रं प्रियाया,
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्न वर्णाधरोष्ठम्
हस्तन्यस्तं मुखयसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा–
दिन्दोदैन्यं त्वदनुसरण क्लिष्ट कान्तेर्विभर्ति ।।

यक्षिणी मलिन वस्त्रों को पहने हुये वीणा को गोद में रखकर अपने प्रियतम यक्ष के विषय में गाना चाहती है लेकिन गाना गाने में असमर्थ हो जाती है आँखों से आश्रु की धारा बहने लगती है जो वीणा के तारों को गीला कर देती है और गीत अनगाया रह जाता है ।[2]

विरह की अवधि की गणना के लिए देहली पर फूल रखकर गिनती है हृदय में प्रिय के मिलन की कल्पना कर उसका आस्वादन करने लगती है ।[3]

यक्षिणी स्वप्न में अपनी प्रियतम यक्ष से मिलना चाहती है और इसके लिए वह सोना चाहती है किन्तु आँसुओं के कारण उसे नींद नहीं आती और वह अपने प्रियतम से स्वप्न में भी नहीं मिल पाती है ।[4]

---

1. वासुदेवशरण मिराशी : कालिदास, पृ0 109
2. उन्तरमेघ0 26
3. उन्तरमेघ 27
4. वही. 31

महाकवि के इस गीति काव्य में विप्रलम्भ श्रृंगार रस की ऐसी धारा प्रवाहित हुयी है कि इस धारा में तनिक भी अवगाहन करने पर सहृदय पाठक उसी में डूबता और उतराता रहता है ।

सम्भोग श्रृंगार–

कालिदास ने मेघदूत में विप्रलम्भ श्रृंगार की पृष्ठभूमि में संभोग श्रृंगार की भी सुन्दर अभिव्यञ्जना की है । यक्ष के द्वारा अलकापुरी के मार्ग वर्णन में तथा अलकापुरी में स्थित सुन्दरियों के चित्रण में हमें सम्भोग श्रृंगार के दर्शन होते हैं । मेघ के आकाश मार्ग में सिद्ध लोग मेघ गर्जन से उत्पन्न कम्पन के समय सहचारियों के सहसा किये गये आलिंगन के सुख का अनुभव करते है :

त्वामासद्य स्तनितसमये मानंभिष्यन्ति सिद्धाः ।

सोत्कम्पानि प्रिय सहचरीसम्भ्रमालिंगितानि ।।[1]

यक्ष मेघ से वेत्रवती नदी को नायिका बताकर उसके रसपान करने के लिए कहता है । वह मेघ से कहना है – "नीचैः नाम के पर्वत पर विश्राम करके वन की नदियों के तटों पर स्थित उद्यानों के जूही के मुकलों को नये जाल के बिन्दुओं से सेचन कर, कपोलों पर पसीना हटाने से जिनके कर्ण कुवलय मुरझा गये है; फूलों को तोड़ने वाली उन मालिकों के मुखों को छाया से चूम कर आगे बढ़ना ।[2]

मेघदूत में संयोग श्रृंगार का सुन्दर चित्रण सिद्धांगनाओं, पौरांगनाओं, नदियों और पुण्य युवतियों की विलासमयी चेष्टाओं में हुआ है । विप्रलम्भ श्रृंगार, श्रृंगार के गीतिकाव्य में कवि ने संभोग का सुन्दर रंग भर दिया है ।

---

1. पूर्वमेघ 22

2. वही. 27

यों 'मेघदूत' में श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग एवं वियोग की जो व्यञ्जना हुयी है । वह अपना भिन्न-भिन्न रूप रखती है । मुख्यतः इस गीतिकाव्य में वियोग की ही व्यञ्जना है और उसकी पृष्ठभूमि में प्रकृति के माध्यम से संयोग रस का चित्रण हुआ है । ये वर्णनाएं एक ओर यक्ष के वियोग व्यथित मन के बहलाव को प्रकट करती हुई उसकी व्यथा को प्रकट करती है, तो दूसरी ओर कवि की श्रृंगारिक भावना को प्रकट करती है । वियोगी का मन तो प्यार जानता है । वह यह नहीं चाहता कि जो प्यार उससे दूर जा पड़ा है, वह दूसरों को भी न मिले । यह तत्त्व ही प्यार का सच्चा मानवीय पक्ष है । कालिदास के मेघगीत में यही प्यार गाया गया है ।

सब बालो को एक साथ बिना डोरे के ही लपेट कर वेणी बना ली है (एक वेण 2/29) या शिखादान हित्वा) जो अत्यन्त रूखी और स्थान स्थान पर ऊँची नीची है । (कठिन विषमां 2/29) में सब चिन्ह पतिव्रता स्त्रियों के है । यक्षिणी भी पतिव्रता स्त्रियों में गणनीय है ।[1]

इससे सम्भवतः यह मन्तव्य जो एस शास्त्रियों द्वारा अनुमोदित है कि मेघदूत विरह काव्य है और उसमें विप्रलम्भ श्रृंगार ही प्रतिबिम्बित हुआ है । यह बात दूसरी है कि कालिदास को इस उत्तम कृति को लेकर उसके भावबोध में विभिन्न रूचियाँ काम करती है । डॉ0 अग्रवाल ने ठीक ही लिखा है-- 'कि जब तक प्रकृति में मेघ गरजेंगे तभी तक कवि निर्दिष्ट वर्णनों की नई--नई व्याख्याएं होती रहेंगी । मेघदूत के समस्त रहस्य को व्याख्याओं द्वारा प्रकाशित कर देना दाक्षिणावर्तनाथ, अरूणगिरिनाथ और मल्लिनाथ के बस की बात नहीं है ।[2]

---

1. मेघदूत एक अध्ययन, पृ0 115
2. वही. पृ0 42

**मेघदूत का गीत शिल्प : अभिनव समीक्षा दृष्टि विरह की संस्कृत मल्हारः**

भारत के लोक जीवन में सावन के मल्हार गीतों से हम सभी परिचित हैं । इन मल्हार गीतों में कुछ तो पूरी तरह मुक्त प्रकार के पावस गीत होते हैं । इन पावस गीतों में सावन की हरियाली झूमते बादल, पपीहों के स्वर और पुरबा हवा की लहरों का गान होता है । इस प्रकार के पावस गीत कालिदास के 'ऋतु संहार' के वर्षा गीत हैं ।

पावस गीतों के साथ-साथ लोकमल्हारों में बहुत से विरह गीत भी होते हैं । विरह के इन मल्हारों में कुछ में तो परदेस गये प्रिय के विरह गीत होते हैं और कुछ में इतिहास या पुराण के किन्हीं दो प्रेमीपात्रों के विरह गीत होते हैं । उदाहरण के लिए हमें सावन के मल्हार गीतों में राधा और कृष्ण या रूकमणी और कृष्ण की विरह मल्हारें सुनने को मिलती हैं । परदेसी की मल्हारों में हिन्हीं जीविका सम्बन्धी कारकों से अथवा किन्हीं और कारणों से दूर देश में जा पड़े प्रिय की याद में मल्हार गीत मिलते हैं । छोटी-छोटी मल्हारों में वर्षा का उद्दीपनरूप और लम्बी मल्हारों में प्रवासी के विरहगीत मिलते हैं ।

भारतीय लोक जीवन की बिरह मल्हारों को ध्यान में रखकर जब हम कालिदास के मेघदूत को देखते हैं तो लगता है कि यह विरह गीत भी एक लम्बी संस्कृत मल्हार है । गीतकार ने इस लम्बी मल्हार को एक बड़े गीत के रूप में ही लिया है । इसीलिए उसने 121 गीतिकाओं का यह मेघ काव्य एक ही छन्द में लिखा है । इससे आदि से अन्त तक पूरा काव्य एक बड़ी मल्हार सा बन गया है ।

कालिदास का मेघदूत सावन की एक लंबी संस्कृत मल्हार है, यह जानने के लिए हमें किसी बाहरी साक्ष्य और तर्क को जुटाने की आवश्यकता नहीं है । स्वयं कालिदास के काव्य से ही यह सूत्र मिल जाता है ।

यह बात अलग है कि रामगिरि के प्रवासी यक्ष को पहले-पहल मेघ का दर्शन आषाढ़

के पहले दिन वर्षित किया गया है-- आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम्-- किन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विरही यक्ष के मन में अपनी प्रिया को मिलन की आशा का संदेश देने की चाह तो पास आ पहुँचे सावन को जान कर ही पैदा होती है :

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयी हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ।

--पूर्वमेघ, 4

कालिदास की इस गीतिका से हम जान सकते हैं कि गीतकार के मन पर सावन की मल्हारों का भाव बोध कितने गहरे में छाया हुआ है । इससे हम यह भी जान सकते हैं कि मेघ गीतों की रचना का मूल उत्स लोक जीवन में समाया हुआ है । लोक जीवन में छाए प्रभावों को लेकर मुक्त गीत ही नहीं लम्बे लम्बे प्रबन्धगीत भी बहुत प्यारे बन जाते हैं । उनके लम्बेपन से गीत काव्य का प्रभाव इसलिए कम नहीं होता क्योंकि उसका प्रत्येक गीत और गीत में समायी प्रत्येक भावना लोक जीवन की स्वर लहरी होती है ।

कालिदास का मेघदूत जैसा कि हम जानते हैं भाषा और शिल्प की दृष्टि से लोकगीत नहीं है । वह समकालीन साहित्य की उत्कृष्टतम संस्कृत भाषा की रचना है । साधारण जन उसके गायन का आनन्द सुनकर अनुभव कर सकता है परन्तु उसका गान वह स्वयं सरलता से कभी नहीं कर सकता और न सफलता से उसका अर्थबोध ही कर सकता है । परन्तु यह होने पर इस गीतिकाव्य की सुन्दरता इस बात में निहित है कि इसकी शास्त्रीय भाषा और शास्त्रीय छन्द रचनाओं में लोककाव्य जैसी सरसता और मुक्तता आ गयी है । आज का गीत शिल्प ऐसी रचनाओं को श्रेष्ठ रचना मानता है ।

कालिदास के इस मेघकाव्य की प्रेरणा का साहित्यिक स्रोत बाल्मीकि रामायण का वर्षा वर्णन भी हो सकता है और जैसा कि मल्लिनाथ ने माना है रामायण के राम का हनुमान के द्वारा सीता को दिया गया सन्देश भी हो सकता है ।[1] परन्तु हम यह नहीं भुला सकते कि विरह के इस गीति काव्य का रचना विधान रामायण से नहीं लोक मल्हारों से ही अधिक प्रभावित है । यह एक उत्कृष्ट शैली में अभिजात भाषा का साहित्यिक गीति काव्य है । इसलिए मल्लिनाथ जैसे मनीषी का ध्यान इसके साहित्यिक स्रोत की ओर ही अधिक गया है ।

मेघदूत के ऊपर लोक मल्हारों का प्रभाव होने के पक्ष में अनेक तर्क दिये जा सकते हैं । पहली बात तो यह कि इसमें कोई इतिहास या पुराण की विरह कथा के पात्र नहीं अपनाये गये है । जो कोई अज्ञात यक्ष और यक्षिणी अपना लिये है वे गीतकार की कल्पना के पात्र है । वैसे विरह गीत उसका अपना है । ऐसे काल्पनिक पात्र को चुनकर विरह गीत रच डालना एक कलात्मक प्रयोग है । गीतकार की चतुराई इस बात में देखी जानी चाहिये कि इस विरह काव्य के लिये उसने प्रेमियों के बीच रामगिरि से अलका तक जो दूरी प्रकृति का गान करने के लिये चुनी है उसके पात्र यक्ष और यक्षिणी जैसे काल्पनिक ही हो सकते थे । कालिदास के इस विरह गीत में एक और नया प्रयोग दिखायी देता है जो लोक मल्हारों में कम ही संभव है । वह नया प्रयोग यह है कि यहाँ पुरूषप्रेमी को विरह पीडित दिखाया गया है । सन्देश उसी की ओर से है । वैसे विरह की वेदना पुरूष से कहीं अधिक नारी पात्र की ही चित्रित की गई है । लोक मल्हारों में प्रायः विरहिणी के गीत होते हैं । धोयी कवि के 'पवनदूत' में भी ऐसा ही मिलता है ।

<u>मुक्त गीत नहीं प्रबन्ध गीत काव्य–</u>

सामान्यतः गीत रचनाएं मुक्तक हुआ करती हैं । वे स्वयं में पूर्व लघु गीतिकाएं ही अधिक होती हैं । परन्तु कभी कभी लोकगीतों में भी और काव्य गीतों में कुछ गीत रचनाएं लंबी और प्रबन्धात्मक भी मिलती हैं । ऐसा तब होता है जब गीतकार जो कुछ गाना चाहता

है उसके लिए वह किसी काल्पनिक कहानी या पुरा कथा का नाममात्र का धागा पकड़ लेता है उसका उद्देश्य कथा गाना तो होता नहीं फिर भी उसके गीत उस कहानी के धागे में क्रमशः पिरोए हुए मणिकों की तरह प्रबन्धात्मक धागे में बंध जाते हैं । गीति काव्य में बस इतनी ही प्रबन्धात्मकता मानी जा सकती है । वैसे इसकी रूप रचना आख्यान प्रधान प्रबन्ध काव्य की तुलना में मुक्तक रचना के ही अधिक निकट होती है । कालिदास का मेघदूत एक इसी प्रकार की गीति रचना है । गीतों का प्रबन्धात्मक ग्रन्थन होने पर भी यहाँ किसी आख्यान प्रसंग की पूर्वा पर अपेक्षा नहीं है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रबन्ध और मुक्तक रचना के बारे में जो विचार किया है, वह इस प्रसंग में महत्त्वपूर्ण है: यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है । इसी से यह सभा और समाजों के लिए उपयुक्त होता है । उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता है, बल्कि कोई एक रमणीय खण्डदृश्य इस प्रकार सहसा सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मन्त्र मुग्ध सा रह जाता है । इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा सा स्तबल कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है । अतः जिस कवि में समाहार शक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा ।[1]

कहने की बात नहीं कि आचार्य शुक्ल ने जो कुछ कहा है वह तो सब मेघदूत की गीति रचनाओं में है ही । उससे बढ़कर देखा जाय तो यह गीतिकाव्य एक ऐसी अद्भुत मुक्त रचना है जिसमें सुन्दर-सुन्दर दृश्यों की वनस्थली एक बड़े से गुलदस्ते में समा गयी है । इस गुलदस्ते में पुष्पगुच्छ एक-दो नहीं बहुत सारे हैं और सभी के रूप रंग गीत बन गए हैं ।

---

1. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 171

इस गुलदस्ते की नकल पर बाद के संस्कृत कवियों ने और आधुनिक कवियों ने गीतों के गुलदस्ते बनाए लेकिन वह बात नहीं आ सकी जो कालिदास के मेघदूत में मिलती है । ऐसे कुछ गुलदस्तों की चर्चा हम पहले ही संस्कृत गीति काव्य के प्रसंग में कर चुके हैं । आज के गीत शिल्प की दृष्टि से कहें 'मेघदूत' जैसे बड़े गीत गुलदस्ते अब पुराने युग की बात हो गयी । आज का गीत भावनाओं का एक आवेगी क्षण भर रह गया है । वहाँ इतनी साज संवार नहीं रह गयी है ।

**<u>अनुभूतियों की निजता और तीव्रता –</u>**

वैसे तो साहित्य की किसी भी रचना में रचनाकार की आत्मानुभूति ही रचना का प्राण होती है किन्तु गीत रचना के बारे में तो यह बात और भी अधिक लागू होती है । स्वानुभूति के बिना अच्छी गीत रचना नहीं हो सकती । कालिदास के मेघ गीतों की सबसे बड़ी यही विशेषता है कि कुछ एक पुराण बिम्बों को छोड़ कर गीतों का सारा संसार उसकी अपनी अनुभूतियों का है । इसीलिए मेघदूत की किसी भी गीतिका को हम पढ़ें, हम अनुभूति और बिम्ब दोनों स्तरों पर गीत से जुड़ जाते हैं । हम उसे बार–बार गुनगुनाना चाहते हैं । पाठक या श्रोता के मन में गीत को गुनगुनाने की स्वतः प्रेरणा हो जाना गीतकार की सबसे बड़ी सफलता है । आधुनिक गीत शिल्प गीतकार की अनुभूतियों की वैयक्तिकता को गीत का प्राण मानता है ।

मेघदूत के कवि की अनुभूतियों की वैयक्तिकता और निजता के हम दो रूप पाते हैं । उसका पहला रूप तो मेघ मार्ग के सुन्दर परिदृश्यों का सजीव और विश्वसनीय चित्रण करने में मिलता है और दूसरा रूप प्रिय और प्रेयसी की विरह मुद्राओं के चित्रण में । मेघमण्डल में रत्नों की कान्ति बिखेरते इन्द्र धनुष का बांबी की चोटी से उभरता हुआ रंगीन चित्र लगता है

काले मेघ ने उसे पाकर मोर पंखधारी कृष्ण की सुन्दरता पा ली है । इस तरह का रूपविधान गीतकार की इन्द्रियों की संवेदनशीलता से हो पाता है ।[1]

गीतों में तटस्थ चित्रण का कोई सौन्दर्य नहीं माना जा सकता । वहाँ तो गीतकार की तन्मयता का ही प्रभाव जादू दिखाता है । जो कुछ गीत में है, वह भोगा और आस्वाद किया हुआ लगना चाहिए तभी गीत पाठक या श्रोता का मन खींच पाता है । कालिदास के मेघ गीतों में यह पूरी विश्वसनीयता के साथ मिलता है । इसलिए वे मन को मोह लेते हैं ।

जिस गीतकार ने किसान वनिताओं की आँखों में मेघों के उमड़ने पर थिरकती प्रसन्नता को नहीं देखा, जिसने उनकी भोली चितवनों का सौन्दर्य नहीं जाना, जिसने 'सीरोत्कषणसुरभि' धरती की गन्ध को नहीं सूंघा वह कवि ऐसा गीत नहीं लिख सकता :

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः,
प्रीतिस्निग्धै र्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः,
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुहय मालं
किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ।

–पूर्व मेघ, 16

अनुभूतियों की यही निजता 'मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः' आम्रकूट के चित्रण में, वही निजता'उपलविषम विन्ध्यपाद' में फैल–फूल बहती रेवा के चित्रण में, वहीं केतकी की बाड़ों से घिरे उपवन वाले दशार्ण देश के रूप के अंकन में, वहीं 'चलोर्मि वेतवा' के वर्णन में देखी जा सकती है ।

सौन्दर्य का फिसलता हुआ क्षण पकड़ लेने में गीतकार कालिदास की कोई तुलना नहीं है । पुष्पलावियों के मुखमण्डल पर बहते पसीने का सौन्दर्य चित्रण देखकर सहृदय पाठक

---

1. पूर्वमेघ, 15

के मुँह से बरवस वाह-वाह निकल पड़ता है ।[1]

वन हो या नगर सौन्दर्य की जिन छवियों ने गीतकार के मानस में जगह पा ली है गीत में उसकी सजीव अभिव्यक्ति हो गयी है । उज्जयिनी के बाजारों की शोभा या शिप्रावात का चित्रण सर्वत्र यहीं बात देखने को मिलती है ।[2]

महाकाल मन्दिर का सांध्य चित्र, देवदासियों के दीर्घ कटाक्ष, राजमार्गों से निशाकाल में जाती अभिसारिकाएं, भवनों छज्जली में सोए पारावत हमारे गीतकार की अनुभूति प्रवणता को सूचित करते हैं ।

कालिदास का गीतकार अपने ऊपर अश्लीलता का आरोप तो झेल सकता है लेकिन अनुभूति की वैयक्तिकता को नहीं खोना चाहता : 'ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः' जैसी बेपर्दा अभिव्यक्ति इसका प्रमाण है । रामगिरि से अलका तक सारा मार्ग चित्रण अनुभूतियों की इस तरलता के साथ किया गया है । हिमाद्रि प्रदेश का मेघदूत का सौन्दर्य चित्रण और कुमारसंभव का हिमालय वर्णन आमने-सामने करके पढ़ें तो पता चलता है कि गीतकार की अनुभूतियाँ कितनी निजी और विश्वसनीय है ।

प्रत्येक कवि एक सहृदय पाठक भी होता है । जब वह अपने से पूर्व की रचनाओं को पढ़ता है तो कुछ सुन्दर छबियाँ और काव्य सन्देश उसके मन को बहुत छू जाते हैं । यह सत्य है कि उसके साथ उसके निजी अनुभव सीधे नहीं जुडे होते वे दूसरे रचनाकारों के माध्यम से मिले हैं । परन्तु जब वे उसके संस्कारों में रच-पच जाते हैं तो वे उसकी ही अनुभूतियों बन जाते हैं । हम देखते है कि कालिदास के मेघगीतों में कहीं ऐसे अनुभव बोध भी बहुत ही सुन्दर रूप में अभिव्यक्त हुए हैं । देवगिरि पर स्थित स्कन्द के साथ जुड़ा

---

1. पूर्वमेघ, 28
2. वही. 32-33

**'वासवी** सेनाओं के रक्षक और 'अत्यादित्य तेज' का अनुभव बोध ऐसा ही है । चार पंक्तियों के गीत में वह कह दिया गया जो पूरे पुराण आख्यान में कदाचित् ही कहा जा सका हो । कुमारसंभव का सारा काव्यार्थ ही मेघदूत के एक गीत में आ गया है ।[1]

इसी प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्मावर्त के वर्णन में 'क्षत्रप्रधनपिशुन कौरव क्षेत्र' और 'गाण्डीव धन्वा' के धारासार वाणों का उल्लेख करके सारे महाभारत का पौरूष चित्र चार पंक्तियों के एक ही गीत भर दिया है ।[2]

**मेघदूत की गीति भाषा एवं शैली शिल्प**

भाषा किसी रचनाकार की ऐसी निजी सम्पन्ति नहीं होती जिसे वह मनमाने ढंग से जैसा चाहे प्रयोग करता चला जाए । भाषा को रचनाकार ीवन के अनुभवों से प्राप्त करता जात है । जिस रचनाकार के अनुभवों का जितना अधिक विस्तार होगा जितनी अधिक अनुभवों की विविधता होगी उतना ही अधिक उसकी भाषा का विस्तार और उतनी ही अधिक उसकी भाषा में प्रयोगों की विविधता आती चली जाएगी ।

भाषा के खुले संसार में रचनाकार की निजता के एक पक्ष को नहीं नकारा जा सकता है । वह पक्ष यह है कि अपनी रचनाओं के कथ्य की प्रकृति के अनुसार वह भाषा शब्दों के चयन और शैली के शिल्प विन्यास के बारे में वह स्वतन्त्र होता है । अगर रचनाकार की रचनाओं के कथ्य में ताजगी है, सजीवता है, उसमें गतिशीलता और प्रवाह है तो रचनाकार कभी भी गतिहीन और यान्त्रिक प्रकृति भाषा का प्रयोग नहीं करेगा । यदि अपनी भाषायी अक्षमता के कारण वह ऐसा करेगा भी तो अच्दी काव्य रचना वह नहीं कर सकेग । भाषा की मन्दता और गतिशीलता के कथ्य की मन्दता और गतिशीलता के साथ सीधा सम्बन्ध होता है ।

---

1. देखिए पूर्वमेघ 47

2. वही. 52

जब हम कालिदास की ही काव्य रचनाओं को देखते हैं तो पाते हैं कि उसके प्रबन्ध काव्यों में जहाँ कहीं पौराणिक आख्यान की वर्णना के दबाब से भाषा गतिहीनता अनुभव करती है उसकी सजीवता और नवीनता कम होने लगती है, हमारा यह कवि कल्पना के सहारे काव्य रचना के वर्ण्य को प्रकृति के आंगन में उतार देता है और वहाँ उसके मन पर कथ्य की मन्दता का कोई दबाब नहीं रह जाता है । भाषा में एक अद्‌भुत प्रवाह पैदा हो जाता है । उदाहरण के लिए भाषा की मन्दता और गतिशीलता का यह अन्तर कालिदास के रघुवंश और कुमारसंभव के बंधे और खुले वर्ण्य वाले काव्य संदर्भों से बड़ी सरलता से जाना जा सकता है । कुमारसम्भव की देवस्तुतियों की भाषा में वह नवीनता और प्रवाह नहीं है जो हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन, वसन्त वर्णन या शिव पार्वती के मिलन संवादों में है ।

अब हम कालिदास के गीति काव्यों की भाषा की ओर देखते हैं । वहाँ हम पाते हैं कि ऋतुसंहार के गीतकार की भाषा और शैली के शिल्प पर्याप्त अन्तर है लेकिन एक समान प्रकार का शैली सूत्र भी है । अरविन्द घोष ने उस शैली सूत्र को ही कालिदास की पहचान मान कर ऋतुसंहार को मेघदूत के कालिदास की ही रचना स्थापित किया है ।[1] वह शैली सूत्र है भाषा का और साथ ही साथ कथ्य का रूपहलापन । कालिदास की शैली में बासीपन को जगह नहीं है । वहाँ लगातार नवीनता की चाह है । उसमें कृत्रिम प्रकार के भाषा पाण्डित्य के प्रदर्शन का भी कोई आग्रह नहीं है । अकृत्रिम किन्तु कलात्मक भाषा शिल्प के प्रति अभिरुचि है । यह कालिदास की भाषा शैली के संकेत सूत्र हैं जो उसे संस्कृत के अन्य कवियों से अलग एक विशिष्ट पहचान प्रदान कर देते हैं ।

ऋतुसंहार की भाषा का शिल्प एक तरूण गीतकार का शिल्प है । वहाँ कलात्मक भाषा की वक्र भंगिमाएं प्रायः नहीं है । परिणाम उसका यह है कि प्रत्येक गीत प्रायशः एक

---

1. अरविन्द घोष, कालिदास, पृ ७०

सरल और सपाट वाक्य रचना है । ऋतुओं के जो रूप चित्र तरूण गीतकार की अनुभूतियों में जिस सौन्दर्य के साथ आए हैं उन्हें वैसा ही गीतों में उतार दिया गया है । अतीत का कोई कथ्य नहीं है अतः सारी वाक्य रचनाएं वर्तमान कालिक क्रियापदों से पूरी हो जाती है । स्पष्ट है कि इससे भाषा का शिल्प सरल और प्रवाह पूर्ण हो गया है ।

मेघदूत के गीतकार की भाषा का स्तर ऋतुसंहार के गीतकार की भाषा के स्वर से कुछ अर्थो में उन्नततर हो गया है । यहॉं प्रकृति के रूप चित्र जैसे के तैसे नहीं है उनमें गीतकार ने प्रेम भावनाओं के कुछ सूक्ष्म प्रकार के रंग भी भर दिए हैं । मेघ गीतों की भाषा एक दम सरल प्रकार की वाक्य रचनाओं वाली नहीं है । वहॉं गीत में हिलोरे सी पैदा करने के लिए नामिक पदों और क्रिया पदों के प्रयोगों का पूर्वापर क्रम भी बहुत बदला गया हे ।

आधुनिक गीतों के शिल्प में हम पाते हैं कि भाषा रचनाकार की कल्पना के साथ उड़ान भरती है वैसा ही मेघगीतों की भाषा में मिलता है । गीत की भाषा वर्णना का विस्तार नहीं करती, वह कम शब्दों में और चित्रात्मक शब्दों में एक भावचित्र का आनन्द देकर कोई नया चित्र उभारने की ओर आगे बढ़ जाती है ।

आज की गीत समीक्षा गीतों के लिए बिम्ब प्रधान भाषा को अनुकूल मानती है । हमारे कालिदास के दोनों ही गीतिकाव्यों की भाषा पूरी तरह बिम्बों की भाषा है । मेघदूत के गीतिबिम्ब तो प्रकृति के सौन्दर्य चित्रों के साथ–साथ बहुत ही गहरे भाव चित्र भी हैं ।

सरलता और तरलता गीत की भाषा के विशेषगुण आज का गीत शिल्प मॉंगता है । हमारे गीतकार के मेघगीतों की संस्कृत भाषा में यह दोनों गुण भरपूर है । भाषाशैली की इस सरलता और तरलता की पहचान के लिए हम एक–दो मेघगीतों के उदाहरण देख सकते हैं । सबसे पहले हम मेघदूत की प्रथम गीतिका के भाषाशिल्प को ही देखें और परखें कि उसके पढ़ते ही किस प्रकार हमारा मन इस लम्बे विरह गीत को सुनने की उत्कण्ठा से भर जाता है:

कश्चित् कान्ताचिरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमन्तः ।
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्न्तुः
यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरूषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।

–पूर्वमेघ 1

इस गीतिका में कोई ऐसा शब्द प्रयोग नहीं है जो हमारे जैसे पाठकों की चेतना से अपरिचित हो । 'कोई यक्ष' कहकर कवि ने विरही को जो कोई कर दिया । वह रचनाकार स्वयं भी हो सकता है और उसके पाठक के मन में बसा 'कोई' हो सकता है । यह विरह का गीत है, अभिशप्त या बदकिस्मत का गीत है, यह प्रिया से दूर जा पड़े किसी प्रवासी का गीत है आदि आदि तत्त्व जो श्रोता के मन में गीत को सुनने की उत्कण्ठा भर देते हैं एक साथ सरल और तरल भाषा में रख दिए हैं ।

गीत के कथ्य और भाषा की तरलता मेघगीतों में इतनी आकर्षक है कि देखते ही बनती है । आषाढ के पहले दिन किसी विरही ने देखा मेघ और सावन आँखों में छा गया । हृदय में प्रिया की यादें भर आयी और बादल से ही अपने मन की बात कह डालने की उत्कण्ठा भर गयी । इस सारी वर्णना में इतनी गति और तरलता है कि दो चार गीतियों में ही सारी प्रस्तावना जाती है और मेघ से प्रिया को सन्देश भेजने की बात आरम्भ हो जाती है ।

प्रत्येक गीत का एक मौसम है । मौसम का अपना परिवेश है । उस परिवेश को गीतकार की भाषा जितना सजीव रूपायित कर सकती है गीत उतना ही प्यारा बन जाता है । कालिदास के मेघगीत में परिवेश इस तरलता के साथ रूपायित होता है :

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां

वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः

गर्भाधानक्षण परिचयान्नूनमा बद्धमालाः

सेविष्यन्ते नयनसुभंग रवे भवन्तं बलाकाः ।

इस गीतिका में हम साफ–साफ देख रहे हैं कि भाषा में कहीं कोई अवरोध नहीं है । प्रवाह और तरलता है । सरल और लघु वाक्यों की रचनाएं है । अनुनासिक वर्णों का संगीत है । फलतः मेघ की उड़ान का एक सजीव परिवेश सामने आ जाता है ।

भाषा शिल्प की यही सरलता और तरलता मेघ मार्ग की प्रस्तावना करने वाली गीतिका में देखिए :

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं

सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र

क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य ।

पूरी गीतिका में कहीं कोइ भाषायी कृत्रिमता नहीं है । खिन्नः खिन्नः' और 'क्षीणः क्षीणः' पदों के प्रयोग से गीत की गूँज और भावनाओं की कोमलता व्यक्त होती है । गीत की भाषा के लिए यह सब बहुत आवश्यक है ।

गीत की भाषा कथ्य की प्रकृति के अनुसार कहीं विरल और कहीं सघन पदरचना का रूप ले लेती है । कालिदास की गीति भाषा में हम देखते हैं कि जहाँ गीतकार अपने कथ्य में त्वरा लाना चाहता है वहाँ भाषा विरल पदावलि की होती है और जहाँ सघन बिम्ब का

**सृजन** करना चाहता है वहाँ वह कुछ सघनता ले लेती है । विरल भाषा की वाक्य रचना बड़ी सरल प्रकृति की हो जाती है । गीत को पढ़ते या सुनते ही गीतार्थ नाच उठता है । इस तरह की विरल पदरचना के उदाहरणों की मेघदूत में प्रचुरता है । एक दो उदाहरण इस प्रसंग में देखने योग्य है :

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ।

--पूर्वमेघ, 24

पूरी रचना कोमलकान्त पदों वाली है । एक-एक पद मोती की तरह अलग-अलग चमक देता है । एकाध्य पर्वत लांघने की बात नहीं है, कदम कदम पर ककुम सुरभि पर्वतों के आकर्षण है । यह गीतार्थ 'पर्वते पर्वते' की आवृत्ति से कह दिया गया है । कुहकते मयूर मेघ का मन न बाँध लें इसलिए 'कथमपि' तुरन्त चल पड़ने का अनुरोध है ।

जहाँ कहीं किसी स्थान या अंचल के सौन्दर्य के प्रति आकर्षण पैदा करना है वहाँ गीतों में यही भाषा शैली मिलती है । एकाध विशेषण पद ऐसा जड़ दिया गया है कि आकर्षण का केन्द्र बन जाता है । यही शैली 'प्रथितविदिशालक्षणा' विदिशा'[1], 'कथाकोविदग्रामवृद्धों' की धरती 'अवन्ति'[2] देवगिरि के स्कन्द[3], रन्तिदेव की कीर्ति[4] चर्मण्वती, कौरव समरक्षेत्र

---

1. पूर्वमेघ, 26
2. वही. 32
3. वही. 47
4. वही. 49

ब्रह्मावर्त[1] तथा 'शैलराजावतीर्ण गंगा[2] के वर्णन में मिलती है । ठीक इसी प्रकार की सरल और अभिरुचिपूर्ण अभिव्यक्तियाँ 'स्रस्तगंगादुकूला अलका'[3], बालमन्दार[4], पादप वाले यक्ष के भवन, विधाता की 'आद्या सृष्टि'[5] विरहिणी यक्षप्रिया के चित्रण में मिलती हैं ।

कथ्य की सघनता लाने और उस पर पाठक की चेतना को कुछ क्षण के लिए स्थिर कर देने के लिए गीति रचनाएं कुछ सघन पदावली की हो गयी हैं । उदाहरण के लिए महाकाल का वर्णन देखें :

पश्चादुच्चैर्भुजतरूवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः
नृत्तारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ।

—पूर्वमेघ, 40

यह सघन रचना पशुपति के बिम्ब की सघनता के लिए की गयी है ।

इसी प्रकार की सघन भाषा रचना कैलास पर्वत की शुभ्रता और विराटता दर्शाने के लिए की गयी है :

---

1. पूर्वमेघ 52
2. वही. 54
3. वही. 67
4. उन्तरमेघ, 15
5. वही. 22

गत्वा चोर्ध्वं दशमुख भुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः

कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः

श्रृंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खम्

राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ।

–**पूर्वमेघ**, 62

अलका में यक्ष के भवन का सघन बिम्ब उभारने के लिए भी कुछ गीति रचनाएं सघन पदावली में की गयी हैं ।[1]

विरहिणी यक्षिणी की एक–एक विरह मुद्रा को दर्शाने वाली गीतियाँ विरल पदावली में प्राप्त होती हैं । केवल एक दो गीतियाँ ही इस शैली के उदाहरण के लिए पर्याप्त हैं :

उत्संगे वा मलिनवसने सोम्य विक्षिप्य वीणां

मद्गोत्रांकं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ह

तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्

भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ।

–उत्तरमेघ, 26

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा

शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्

स्पर्शाक्लिष्टामयमितनखेनासकृत् सारयन्तीं

गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण ।

---

1. देखिए उत्तरमेघ 16–18

गीतशिल्प की आधुनिक मुक्त समीक्षा की दृष्टि अपना कर हमने गीतकार कालिदास की मेघगीतियों की भाषाशैली की विशेषताओं को समझने का प्रयत्न किया है । इसमें हमें कहीं कोई सन्देह नहीं है कि कालिदास की साहित्यिक संस्कृत भाषा में गीतोचित भाषा की सभी विशेषताएं उपलब्ध है । उसकी शैली में प्रवाह और आवेग है जो गीत रचना का प्राणतन्त्व है।

<u>मेघदूत की गीतियों का बिम्बशिल्प</u>–

गीति रचनाओं में आधुनिक गीति समीक्षा बिम्बों को क्यों इतना अधिक महत्त्व देती है । इस बारे में कालिदास के ऋतुगीतों के बिम्ब सौन्दर्य की चर्चा में पर्याप्त विवेचना किया जा चुका है । यहाँ संक्षेप में यह जान लेना पर्यापत है कि प्रबन्धात्मक महाकाव्य रचनाएं तो मुख्यतः हमारे इतिहास बोध और सांस्कृतिक मूल्यों के बोध को जगाती हैं किन्तु गीत रचनाएं हमारी इन्द्रियों की संवेदनाओं को झकझोरती हैं । प्रबन्ध काव्य रचनाओं में विचारशीलता की प्रधानता पाई जाती है जबकि गीति रचनाओं में भावप्रवणता की अधिकता रहती है । प्रबन्ध रचनाओं में वर्णना की प्रधानता रहती है परन्तु गीत रचनाओं में वर्णना गौण हो जाती है । उनमें सौन्दर्य के चित्रण को प्रमुखता दी जाती है । इसका सार यह निकलता है कि प्रबन्ध रचनाओं बौद्धिक तृप्ति मिलती है, रसवृन्ति उसका सहयोग भर करती है । इसके विपरीत गीतिकाव्य रचनाओं में बौद्धिकता नगण्य रहती है, वहाँ हमें इन्द्रिय आस्वादों की तृप्ति अधिक मिलती है । प्रबन्ध काव्यों और मुक्त वृन्ति के गीतिकाव्यों के शिल्प में इन्हीं कारणों से भारी अन्तर आ जाता है

गीतिकाव्य में ऐन्द्रियिक तृप्ति का भाव प्रधान होने से गीति रचना में बिम्बों की आवश्यकता बढ़ जाती है । गीतकार जिस इन्द्रिय संवेदन का आस्वाद करना चाहता है तदनुकूल बिम्ब की सर्जना अपनी गीति रचना में उभार देता है ।

किसी पाश्चात्य समीक्षक का यह कथन कि 'चित्र एक बोलती कविता है और कविता बोलता हुआ एक चित्र है', गीति रचना के बारे में शतप्रतिशत सही उतरता है । गीतिकाव्य

की प्रत्येक गीति स्वयं एक बोलता हुआ चित्र होती है । इस दृष्टि से जब हम कालिदास के मेघदूत के बारे में सोचते हैं तो यह गीतिकाव्य हमें नवीन से नवीन शब्द चित्रों की एक सुन्दर चित्रमाला सा प्रतीत होता है । इन चित्रों में ढेर सारे रूप बिम्ब शब्द बिम्ब घ्राण और स्पर्श बिम्ब उपलब्ध होते हैं जो गीति रचना को पढ़ते ही हमारी इन्द्रियों को एक परम तृप्ति प्रदान कर देते हैं । बिम्बशिल्प का मेघगीतों में क्या सौन्दर्य है यह जानने के लिए हम कालिदास के बिम्बों के कुछ चुने हुए उदाहरण देखते हैं ।

**वर्षा के रूप बिम्ब**:

नेत्रों की तृप्ति प्रदान करने वाले शब्दचित्र रूपबिम्ब कहे जाते हैं । कालिदास की मेघगीतिकाओं में यह बिम्ब सर्वत्र छाए हुए हैं । पूर्व मेघ की गीतिकाओं में जहाँ मुख्य रूप से वषा ऋतु के आषाढ़ और सावन की पुरवा हवा, उमड़–घुमड़ करते मेघ, पपीहों का संगीत वषा के मौसम का जनजीवन और पशु–पक्षी तथा वनस्पतियों के ऊपर मादक प्रभाव वर्णित है वहाँ इनके सौन्दर्य का चित्रण करने वाले बड़े ही मनोरम रूप–रस–गन्ध–शब्द और स्पर्श का सुख देने वाले बिम्ब मिलते हैं ।

इसी प्रकार मेघ की यात्रा के मार्ग में जहाँ गीतकार ने पहले ही रमणीय पर्वतों और कल--कल करती नदियों के मिलने की बात कह दी है वहाँ ऐन्द्रियिक तृप्ति प्रदान करने वाले एक से एक अधिक सजीव बिम्ब वर्णित किए गए हैं । रामगिरि से लेकर हिमालय तक के सुरम्य मेघमार्ग की अद्भुत प्रकार की चित्र माला देती हैं, पूर्वमेघ की गीतियाँ ।

पूर्व मेघ की गीतियों में वर्षा की रूप कान्ति का सुख देने वाले बिम्बों में हम देखते हैं– वप्रक्रीडा में परिणत हाथी[1], बागों में छिटकती चाँदनी से नहाई कल्पना नगरी अलका[2],

---

1. पूर्वमेघ, 2
2. वही. 7

झटके के साथ अपनी केशराशि को उछालती पथिकवनिताएं[1], आकाश में दौड़ती बगुलों की पंक्तियां[2], मेघगर्जन के साथ धरती के गर्भ से निकल पड़े शिलीन्ध्र और कमलतन्तुओं का पाथेय ले उड़ते राजहंस[3].

स्पर्श एवं नाद बिम्ब–

केवल रूप बिम्ब ही नहीं वर्षा के सुहाने मौसम की पुरवा का स्पर्श और चातक का संगीत भी त्वचा और श्रोत्रा को सुख देने वाला हम पाते हैं:

मन्दं मन्दं नदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः
गर्भाधानक्षण परिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ।

–पूर्वमेघ, 9

मेघमार्ग के रूप बिम्ब

रामगिरि से मेघ की उड़ान आरम्भ होते ही हम देखते हैं नवीन से नवीन चित्रों की मालाएं । गीतकार ने अपने शब्द चित्रों में एक–एक थिरकन को संजो कर रख दिया है । बिम्ब और बिम्बों से जुड़े मनोभाव तथा अनुभाव सभी अपने शब्दचित्रों में कालिदास ने भर दिए हैं । मेघमार्ग के इन रूपहले बिम्बों में हमें मिलते हैं–– .पवन के झोंकों से उड़ते मेघखण्ड को पर्वत का शिखर जान विस्मय से उन्मुखी हो निहारती सिद्धांगनाएं[4] बांकी की चोटी से उगता

---

1. पूर्वमेघ 8
2. वही. 9
3. वही. 11
4. वही. 14

हुआ इन्द्रधनुष[1], परिणम आमों से लदा आम्रकूट[2], डवलविषम विन्ध्यपदों में बिखरी रेवा[3], नाचते–कुहकते शुक्लापांग मयूर[4], पके जामुनों और गन्धभरे केवड़ों वाले दशार्ण भूखण्ड[5], चलोर्मि वेतवा ? पसीना छाए मालों वाली पुष्पलावियां[6], जलपक्षियों की करघनी बजाती निर्विन्ध्या ? मेघदूत का कोइ भी सहृदय पाठक इन बिम्बों के सौन्दर्य में रम कर एक अनोखी तृप्ति अनुभव करता है । अनदेखे दृश्य उसकी आँखों में उतर आते हैं ।

स्पर्श नाद बिम्ब–

जैसे आँखों का परम सुख वैसे ही श्रोत्र और त्वचा के भी गहरे आस्वाद गीतकार के बिम्ब देते हैं :

नीवं दृष्टवा हरिकपिशं केसरैरर्धरूढैः
आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्
जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ।

पूर्वमेघ, 22

यहाँ धरती की गंध और बूंदों के सुखद स्पर्श के मनोरम बिम्बों का सृजन है ।

उज्जयिनी के रूपबिम्ब :

धरती का स्वर्ग उज्जयिनी के चित्रण में भी कवि ने नगर वैभव के बिंबो के साथ–साथ प्राकृतिक रूप सौन्दर्य के बिम्बों को भी महत्त्व दिया हैं । यहाँ के बिम्बों में मनोरम लगते

---

1. पूर्वमेघ, 15
2. वही. 18
3. वही. 20
4. वही. 24
5. वही. 25
6. वही. 26

हैं– शिप्रावात, शस्यश्याम मरकतमण्यिाँ, गन्ध उड़ाती अट्टालिकाएं, जलकेलि में मस्त युवतियाँ, दीर्घकटाक्षों वाली देवदासियाँ, चमकती बिजलियों में जाती अभिसारिकाएं ।[1]

प्रेम के गीतकार कालिदास की संवेदनशील दृष्टि से प्रेम का कोई क्षण चूक जाय, यह तो संभव नहीं लगता । छजली में प्रेम के क्षण गुजारते सुप्त पारावतों के बिम्ब ऐसा ही बताते हैं :

तां कस्यांचिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रौ चिरविलसनाद् खिन्नविधुत्कलत्रः
दृष्टे सूर्ये पुनरापि भवान् बाहयेदध्वशेषम्
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ।

**पूर्वमेघ–42**

**<u>शेषमार्ग के प्रकृतिक बिम्ब–</u>**

उज्जयिनी से आगे पुनः वही नदियों और पर्वतों का संसार आ जाता है । गीतिकाओं के इस वर्णन में हम मनोहारी बिम्बों के माध्यम से देखते हैं–– चंचल मछलियों के चितवन वाली नील जल की साडी को समेटे मुक्तनितम्बा गंभीरा, देवगिरि के पके–पके उदुबरों के कानन, पुष्पमेघों से नहाते स्कन्द, इन्द्रनीलमणि सी चर्मण्वती, कुन्दों पर नाचते भौरों से काले–काले दशपुर की वधुओं के चितवन, रेवतीलोचनांका हाला, शैलराजावतीर्णा गंगा, तेज दौड़ते शरभ, वंशी से बजते वायुपूरित बांसों के वन, त्रिदशवनिताओं का दर्पण कैलास, प्रिय के हाथ में हाथ डाले क्रीडाशैल पर विचरण करती गौरी, हेमाम्भोज मानसरोवर तथा स्रस्तगंगादुकूला अलका के मोहक शब्दचित्रों का आनन्द लेते हैं ।[2]

---

1. पूर्वमेघ, 32–41
2. पूर्वमेघ, 44–67

**सघन एवं विरल बिम्ब–**

रूपबिम्बों का सृजन करने में गीतकार कालिदास के शब्दचित्र प्राय: सघन मिलते हैं । परन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं है । कहीं–कहीं तो रूप रचना करने वाले एक–एक अंग का सृजन करने के लिए गीतकार देश और काल की सीमाएं बांध कर कल्पना के सहारे अद्‌भुत सौन्दर्य प्रसाधन जुटा देता है । गीतकार की ऐसी एक बिम्ब सृष्टि हम अलका की सुन्दरियों के रूपविधान में देखते हैं :

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धम्
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः
चूडापाशे नवकुरबकं चारुकर्णे शिरीषम्
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।

–उत्तरमेघ, 2

इस गीतिका में हम देखते हैं कि कवि ने सारी ऋतुओं के सुन्दर–सुन्दर पुष्पों से अलका की वधुओं का रूप बिम्ब सजा दिया है । गीतकार का सौन्दर्य बोध इतना सूक्ष्म है कि अलंकरण के रूप–रंग और आकार--प्रकार का पूरा ध्यान रखा गया है ।

इससे आगे हम उत्तरमेघ की उन गीतिकाओं के बिम्ब–संसार में आ जाते हैं जहाँ विरह वेदना भोग रही यक्ष प्रिया का एकान्त घर और एकान्त रूप है । वहाँ हम देखते हैं कि घर की सारी रूपसज्जा मनोरम है किन्तु विरहिणी के लिए वह सब सपनों की दुनिया में हैं ।

**यक्ष आवास के रूपबिंब–**

यक्ष आवास के सुन्दर–बिम्ब हमें कल्पना के एक दूसरे संसार में ही पहुँचा देते हैं । इन बिम्बों में कालिदास के अन्दर एक कल्पनाशील चित्रकार भी समा गया है । यहाँ के

बिम्बों में हम कल्पवृक्ष की मदिरा, कनकसिकता के मुष्टिनिक्षेप, नीवीबन्धन के शिथिल होने से लजाती प्रेमिकाएं, जर्जर बादलों से घिरे गवास, बूँद बूंद चूती चन्द्रकान्ता मणियाँ, अकेले कल्पवृक्ष से मिलते कौशेय वस्त्र, मदिरा, पुष्पों के आभूषण, लाक्षारस जैसे सिंगार, और झुके-झुके बालमन्दार, मरकतमणि के सोपान वाली वाणी, कनककदलियों से घिरा क्रीडाशैल, रक्त अशोक और केसर वाला कुरबक का माधवीमण्डप, बैठे हुए नीलकण्ठ मयूर से मनोरम काञ्चनी वासयष्टि ।[1]

**विरहिणी के रूपबिम्ब**--

उपर्युक्त प्रकार के रूप सौन्दर्य से भरे परिवेश में विरह के दिन काटती यक्षिणी के बिम्ब हम आगे की गीतिकाओं में पाते हैं । यक्षिणी के इन बिम्बों की विशेषता यह है कि जहाँ पर हमें विरह चित्रों के रूप का आस्वाद देते ही वही मन के स्तर पर एक टीस भी पैदा कर देते हैं ।

यक्ष सुन्दरी के रूप का सबसे पहले एक मादक बिम्ब देखें :

तन्वी स्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये सामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम्
या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ।

–उत्तरमेघ, 22

---

1. उत्तरमेघ 5–19

इसके बाद हमें मिलते है विधाता की आधा सृष्टि के विरह चित्र । इन चित्रों में हम देखते हैं नितान्त एकान्त में बैठी एक विरहिणी जो 'शिशिरमथिता पदिम्नी' सी लगती है । उसकी आँखें रो–रो कर सूज गयी हैं । चिन्ता की मुद्रा में मुख पर केश लटकाएं बादल में घिरी चन्द्रिका सी लगती है । कभी सारिका से प्रियतम की बातें करती है, कभी देहली पर बने पुष्पों से प्रिय आगमन की अवधि गिनती है । गोदम में रखी वीणा के तार भी आंसुओं से भीग गए हैं और साधे हुए स्वर भी भूल जाते हैं । विरह की मारी वह बेचारी गवाक्षोश से झाँकती चन्द्रकिरणों से भी मुँह फेर लेती हैं ।[1] लगता है जैसे दुर्दिन में न जागी और न सोयी कोई स्थलकमलिनी है :

पादानिन्दोरमृतशिशिरान्      जालमार्गप्रविष्टान्
पूर्वप्रीत्या      गतमभिमुखं      संनिवृत्त      तथैव
चक्षुः  खेदात्  सलिलगुरुभिः  पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ।

–उत्तरमेघ, 32

और फिर विरह की पीडा भोग लेने के पश्चात् सन्देश में मिलन की आशा का चित्र । रूपहली चाँदनी रातों का परिवेश बिम्बः

शापान्तो      मे      भुजगशयतादुत्थिते      शार्ङ्गपाणौ
शेषान्  मासान्  गमय  चतुरो  लोचने  मीलयित्वा
पश्चादावां      विरहगुणितं      तं      तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः      परिणतशरच्चन्द्रिकासु      क्षपासु

–उत्तरमेघ, 53

---

1. उत्तरमेघ, 23–32

मेघदूत के कथ्य और शिल्प का संस्कृत काव्यशास्त्रीय दृष्टि से तथा आधुनिक समीक्षा दृष्टि से परिशीलन एवं अनुशीलन करने के बाद हम यह कह सकते हैं कि मेघगीतों का यही वह शिल्पगत सौन्दर्य है जिसने कवीन्द्र रवीन्द्र जैसे कला एवं गीतमर्मज्ञ महान् कवि का मन आकर्षित कर लिया था, जिसने विरह के अनेक सन्देश काव्यों को प्रेरणा दी, जिससे प्रेरणा लेकर छायावादी हिन्दी कवियों ने अनेक बादल गीतों की रचनाएं की ।

भाषा का पाण्डित्य गीत के श्रोता को नहीं मोहता, यह गीत का सम्पूर्ण रचाव होता है जो उसका मन मोह लेता है । कालिदास के मेघदूत की गीतिकाओं में वह सम्पूर्ण सौन्दर्य है, यह हम अनुभव करते हैं ।

निष्कर्ष –

* कालिदास का मेघदूत काव्यशास्त्रीय दृष्टि से एक किंचित् प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य है ।
* इसमें कोई इतिहास का नायक और इतिवृत्त नहीं । एक कल्पनामूलक कथा की हल्की सी रेखा है ।
* यह एक विरह काव्य है ।
* इसका मूल उत्स राम के हनुमान द्वारा प्रेषित जानकी सन्देश में भी माना जा सकता है परन्तु इसकी रूप रचना लोकजीवन की सावन मल्हारों का प्रभाव अधिक सूचित करती है ।
* ऋतुसंहार की तुलना में यह एक प्रौढ गीतिकाव्य है ।
* संस्कृत काव्यशास्त्र की दृष्टि से इसके गुण–रीति–अलंकार प्रयोग उत्तम कोटि के है । भाषा की ध्वनिधर्मिता भी मार्मिक है ।
* रस की दृष्टि से यह विप्रलंभ श्रृंगार का गीतिकाव्य है ।
* गीतियों की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग है ।
* आधुनिक गीतशिल्प की दृष्टि से यह एक लम्बा विरहगीत है ।

* मेघगीतों में हल्की सी परकथा का आलंबन होने पर भी गीतियों में कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों का आवेग ही सर्वत्र प्रभावी है ।
* बिम्बशिल्प असाधारण रूप से सुन्दर है । रूपबिम्बों के साथ साथ रस–गन्ध, स्पर्श और नाद के सुन्दर बिम्ब मिलते हैं । यह एक अत्यन्त मनोरम काव्यात्मक चित्रमाला है ।
* गीतों की भाषा तरल, कोमल और गेय है ।
* कालिदास के मेघगीतों ने मध्यकालीन संस्कृत गीतकारों और आधुनिक युग की कवीन्द्र रवीन्द्र और निराला जैसे अनेक गीतकारों पर गहरा प्रभाव डाला है ।

## अष्टम अध्याय

## उपसंहार

कालिदास के गीति काव्यों का 'कथ्य एवं शिल्प' का अध्ययन करते हुए हमने अपनी क्षमता के अनुसार कालिदास के गीतिकाव्यों की समीक्षा की है । हमारा अध्ययन उनकी समग्र कृतियों के रूप में कालिदास का अध्ययन नहीं है, मात्र उनकी दो कृतियाँ ऋतुसंहार और मेघदूत का ही मुख्यतः अध्ययन है । फिर भी यथास्थान कालिदास के अनूठे व्यक्तित्व एवं अनुपम कृतित्व के दर्शन इसमें होते रहे हैं । कालिदास के कृतित्व का आयाम इतना विस्तृत एवं विशाल है कि सातशः विद्वानों ने उस पर लिखा है । इसके पश्चात भी कालिदास की रचनाओं में कुछ न कुछ नित नवीन रह ही जाता है, हमारा मानना है कि कालिदास की कविता चिर नवीन है; कालजयी है । इसीलिए उसमें सन्दर्भित नये-नये अर्थ सूझते ही रहेंगे । कालिदास की वाणी से भारतवर्ष का महान उदात्त शान्त शोभन रूप मुखरित हुआ है । उन्होंने भारतवर्ष के अन्तरात्मा को वाणी दी है । उस वाणी में इस देश की अपूर्व मनीषा और महान जीवन आदर्शों को रूप मिला वे सही अर्थों में वे हमारे राष्ट्रीय कवि है ।

कालिदास किस युग में आविर्भूत हुये थे उसके पहले भारतवर्ष के अनेक अनेक महत्वपूर्ण शास्त्रों का उद्घोष हो चुका था । कई धार्मिक और आध्यात्मिक आन्दोलनों का उद्भव और विलय हो चुका था । अनेक कलाएं प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त कर रूढ़िबद्धता की ओर अग्रसर हो चुकी थी । वैदिक कर्मकाण्ड एक ओर उपनिषदों के अद्वैतवाद और दूसरी ओर बौद्ध और जैन धर्म के वेद विरोधी आन्दोलन की प्रक्रिया का सामना कर चुका था । रामायण और महाभारत के कथा साहित्य के बाद पौराणिक कथाओं का विपुल

साहित्य निर्मित हो चुका था । ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रतिपादित कर्मकाण्ड प्रधान धर्म के बाद अन्तरात्मा आत्मदर्शन के पक्षपाती, सांख्य और योग के दार्शनिक सिद्धान्त जमा चुके थे । सारांश यह है कि भारतवर्ष नयी राष्ट्रीयता के उत्साह से भरपूर था ।

महाकवि के आविर्भाव तक बाहर से अनेक विदेशी मानव समुदाय इस देश में आते रहे । कुछ आक्रमक रूप में आए कुछ देश की उर्वराभूमि में बस जाने की कामना से आये । उनके विविध प्रकार के आचार विचार नृत्य गीत, उत्सव आयोजन आदि में इस महान् देश की जन मण्डली के वैचित्य ने वृद्धि की थी । नाना आचार विचारों की मिलन भूमि होने के कारण इस देश की संस्कृति में अनेक प्रकार के वैचित्र्य आये । कालिदास इसी युग की देन है । कालिदास अपने साहित्य में इसी समवेत संस्कृति को सजाते सँवारते है । महाकवि ने अपने भीतर इस समन्वय संस्कृति को आत्मसात् किया था । उसी का ललित रूप उनकी कृतियों में रूपायित हुआ है । इस स्वर्णिम युग को इतिहासकार सामान्यतः गुप्त युग का नाम देते हैं ।

निश्चय ही विश्व विश्रुत कालिदास की काव्य प्रतिभा में संस्कृत कविता को शिष्टता एवं सूक्ष्मता प्रदान की है । उसकी शैली विशुद्ध एवं प्राञ्चल है उसमें न तो कहीं पुराणों की ही अस्पष्टता अथवा शिथिलता है न कहीं परिवर्तित कविता सा रंग बाहुल्य । वो आकृन्कि सशक्त एवं स्पष्ट है । अभिव्यक्ति की सहज विशदता एवं भाषा का सरल स्वाभाविक प्रवाह कवि कालिदास की रचनाओं की महत्ता को संकेतित करते हैं । उनकी सुन्दर सटीक उपमाये, तथा सारगर्भित

सामान्य लोकोक्तियाँ अद्वितीय बन पड़ी है । उनके शब्द योजना का अपना विशिष्ट स्थान है । वे लम्बे सामासिक शब्दों तथा समास प्रयुक्त अलंकारों से रहित है । सच तो यह है कि कालिदास के समान सुन्दर एवं प्रौढ़ वर्णन किसी भी दूसरे कवि ने नहीं किया । कालिदास के प्रायः सभी समीक्षकों ने इसे स्वीकार किया है कि कविता का जीवन एवं स्वर प्रकृति ही है । इस दृष्टि से कालिदास को मुख्य रूप से प्रकृति का कवि कहा जा सकता है यद्यपि सृष्टि और धरा के मिलकर के भोग में प्रकृति का वैसा प्राणमय वर्णन सहज सम्भव नहीं था ।

प्रकृति पुत्र कालिदास का यह वैशिष्ट्य यद्यपि उनकी प्रत्येक कृति में मिलता है । किन्तु ऋतु संहार और मेघदूत गीतिकाव्यों को हम प्रकृति काव्य ही कह सकते है । हमने देखा है कि कवि कालिदास अपने ऋतुसंहार के प्रत्येक छन्द में प्रकृति का स्वच्छन्द छन्द गाया है ।

मेघदूत में भी कालिदास ने प्रकृति के ही सरस एवं मधुर गीत गाये गये हैं । कुछ मिलाकर यह कहा जा सकता है कि कालिदास प्रकृति का ही कवि है । प्रकृति के साथ कवि का गहरा रागात्मक सम्बन्ध है । उन्होंने अपनी कविता में सम्पूर्ण प्रकृति जिसके अन्दर मानव और मानवेतर सृष्टि समाहित हो जाती है, के साथ जिस रागात्मक सम्बन्ध को वाणी दी है वो अन्य साधारण कवियों के बश की बात नहीं है ।

कालिदास के देश एवं काल के निर्धारण में हमने किसी निश्चित मत की स्थापना नहीं की क्योंकि आज भी इसका निर्णय मतभेद ग्रस्त है । कालिदास के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भी विद्वानों में ऐक्यमत नहीं है । एक से अधिक कालिदास की बात सैकड़ों बरसों से चल रही है । ऐसी स्थिति में क्या कालिदास

सचमुच अनेक हुये है, यह एक ज्वलन्त प्रश्न है । हमारी मान्यता है कि संस्कृत साहित्य में कालिदास बहुत बड़ा नाम है । आगे के विद्वानों को भी यदि कालिदास के समकक्ष न सही यदि यत्किञ्चित् काव्य वैशिष्ट्य देखा गया तो उसे भी कालिदास से पुकारा जाने लगा होगा । कालिदास के नाम निर्मित ग्रन्थों की एक तालिका है । जैसे ज्योतिषविदभरण आदि । ऐसी कृतियाँ किसी अर्वाचित कालिदास की हो सकती है । किन्तु हमने प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में दो महाकाव्य, तीन नाटक, दो गीतिकाव्य के रचनाकार को एक ही कालिदास माना है और वही उचित है ।

कुमारसंभव की परिपूर्णता के सन्दर्भ में भी विद्वानों में मतभेद है । किन्तु हमने अष्टसर्गात्मक कुमारसंभव को भी कालिदास की कृति स्वीकारा है । इसमें जो तथ्य हमें मिले वो शोध प्रबन्ध में निर्दिष्ट है । इसी भाँति कुमारसम्भव के श्रृंगार को लेकर भी प्राच्य, पाश्चात्य विद्वानों में बड़े आक्षेप प्रत्याक्षेप हुये है । प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में अप्रासांगिक होने के कारण इस विषय को नहीं उछाला गया मात्र अपनी मान्यता का निर्देश भर किया कि कालिदास के कुमारसंभव पर आक्षेप सारहीन प्रतीत होते हैं । दाम्पत्य रति, हेय नहीं, वरेण्य है । वही सृष्टि के जीवन का उत्स है ।

कालिदास के जीवनवृन्त के सन्दर्भ में अभी तक यथार्थ में कुछ ज्ञात नहीं मात्र किंवदान्तियाँ ही उनके जीवनवृन्त के अनेक चित्र प्रस्तुत करती है । इन जनश्रुतियों में कालिदास की छवि को किसी शोभम् रूप में नहीं बिम्बित किया गया है । कहीं उन्हें विलासी कहीं उनके वेश्यागामी तक चित्रित किया गया है । ऐसी किंवदान्तिया तो निराधार समझकर हमने उनका स्पर्श तक नहीं किया । जिस महान कवि की यह उक्ति हो कि 'अनिर्वचनीयं परकलत्रम्' उसके बारे में सोच-समझ कर ही मुँह खोलना उचित लगता है ।

रघुवंश के विषय में भी कुछ समीक्षकों की धारणा है कि वो भी अपूर्ण है । किन्तु उसकी अपूर्णता की बात गले नहीं उतरती अतएव हमने उन्नीस संसर्गात्मक रघुवंश को पूर्ण माना है । कालिदास की नाटकत्रयी के विषय में कोई वैमत्य नहीं है कि उसमें कुछ तर्क वितर्क किया जाय । इतना अवश्य है कि विक्रमोर्वशीयम में अपभ्रंश भाषा में ग्रथित छन्दों को लेकर विवाद है इस सन्दर्भ में हमने रसबोध की दृष्टि से उनको अत्यन्त उपादेय समझा है वह प्रक्षिप्त अप्रक्षिप्त के पचड़े में पड़ना हमने उचित नहीं समझा है ।

अन्ततः कालिदास के दोनों गीतिकाव्य का हमने जहाँ तक बन पड़ा है अत्यन्त सावधानी के साथ अध्ययन मनन् करने का प्रयास किया है और इस निष्कर्ष में पहुँचे है कि ये उभय कृतियाँ कलेवर की दृष्टि से भले ही लघु हों किन्तु गीति तत्व के निकष पर कसने के पश्चात् में खरी उतरती है ।

कालिदास के मेघदूत को लेकर विद्वानों के द्वारा उसके सैद्धान्तिक पक्ष की समीक्षा की गई है । जिनमें डा० वासुदेव शरण अग्रवाल और रञ्जन सूरिदेव प्रमुख है । इनमें श्री रञ्जन सूरिदेव अंशतः मेघदूत में अध्यात्म पक्ष की भी झलक देखते है किन्तु डा० अग्रवाल की दृष्टि में मेघदूत समग्र रूपेण अध्यात्म तत्व को ही प्रतिष्ठापित करता है । हमने विद्वान समीक्षकों की मीमांसा में भाग लेना अनाधिकृत चेष्टा मानकर उनके मतों के खण्डन मण्डन को उचित नहीं समझा । मात्र कालिदास के इस गीतिकाव्य का एक अध्यात्मिक पक्ष भी है इससे उनकी गरिमा की अभिव्यक्ति होती है । इसीलिए उसकी चर्चा भी की है । किन्तु हमने अपना निष्कर्ष तो यह दिया है कि कालिदास का यह गीतिकाव्य कवि के विरही हृदय का अकृत्रिम सहज उदगार है जिसमें यक्ष दम्पती के विरह वर्णन के

त्याज से भारतीय दाम्पत्य का चित्रण किया गया है । हमारी इस मान्यता की पुष्टि चन्द्रवाले पाण्डेय ने भी की है । जैसा कि वे कालिदास नायक अपनी कृति में लिखते हैं--- "मेघदूत में अध्यात्म पढ़ने का प्रयास बराबर होता रहा है । इधर उसमें कुंडालेनी जगाने की विधि भी ढूँढी जा रही है । अच्छा ही है, कालिदास की व्यापक दृष्टि में इससे वृद्धि ही होती है । परन्तु अपना पक्ष ऐसा नहीं है । अपने को तो यहाँ प्राथिवी की विभूति ही गोचर होती है ।[1]

निश्चय ही कालिदास के दोनों गीतिकाव्यों में कवि के हृदय के उद्गार ही उनकी वाणी की तूलिका से छन्द पथ में चित्रित हुये हैं जो उसके सहृदय पाठकों के गीत बन गए हैं । कालिदास के ऋतुगीतों को न तो किसी अन्य कवि के नाम डाला जा सकता हे और न ही उन्हें नौसिखिए कवि की अल्हड मस्ती कह कर उपेक्षा की जा सकती है । वास्तविकता तो यह है, जैसा कि अरविन्द घोष जैसे मनीषी का मत है कि कालिदास के यह ऋतुगीत विश्व साहित्य में अपनी कोई तुलना नहीं रखते हैं ।

कालिदास के ऋतुगीत यों तो प्रकृति की रमणभूमि भारत की धरती से जन्मे हैं । उनमें हमारे देश के बारहमासा लोकगीतों जैसी ताज़गी और प्रवाह है । परन्तु उनके साहित्य ऋग्वेद से लेकर महाकाव्य युग तक की एक लम्बी साहित्य परम्परा भी जुड़ी है । कालिदास के यह ऋतुगीत उस परम्परा के सबसे सुन्दर पुष्प हैं ।

---

1. चन्द्रवाले पाण्डेय कालिदास, पृ0 2

साहित्य की और विधाओं की लह गीतों का भी विकास हुआ है । आरंभ में गीत कविता से अलग व्यक्तित्व नहीं पा सके थे । कालिदास ने संस्कृत काव्य में उन्हें एक अलग व्यक्तित्व दिया । ऋतुसंहार उसका आरंभिक प्रयत्न है ।

हमने अपने अध्ययन में पाया है कि कालिदास वास्तव में प्रकृति से ही गीतकार कवि है । उसकी सभी रचनाओं, उसका गीतकार ही सबसे सुन्दर लगता है । मेघदूत जैसी गीति रचना इसीलिए उसकी लेखनी से निकल सकी क्योंकि गीत उसका स्वभाव है ।

कालिदास के ऋतुसंहार और मेघदूत दोनों को गीति काव्य के प्राचीन और नवीन मापदण्डों से परखने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वह एक महज गीतकार है । उसके ऋतुगीत और मेघगीत यदि आज की लोक भाषा में आ जाएं तो गली गली लोग उनको गाते दिखाई देंगे । इसका कारण है उनके अन्दर भावों की तरलता, भारतीय जीवन और प्रकृति के बिम्बों की सजीवता ।

आधुनिक युग का गीति काव्य कुछ और नए रूपों में आ गया है । गीतों के विषय नए हो गए हैं, शिल्प भी बहुत कुछ नए हो गए हैं । संस्कृति के नए गीतों में भी यह तीव्रता से हो रहा है । आज गीतों में छन्द का बन्धन नहीं है वे मुक्त लय के गीत हैं । कालिदास के गीतों में यह छूट नहीं हैं फिर भी उनकी गेयता बड़ी मोहक है ।

अभिनव गीत रचनाएं सामान्यतः प्रबन्धात्मकता से दूर पायी जाती है । वे मुक्तक प्रकृति की ही अधिक होती है । कालिदास के ऋतुसंहार की प्रत्येक ऋतु की गीतिकाएं मुक्तक शैली की ही हैं । किन्तु मेघदूत की गीतिकाओं के साथ ऐसा नहीं है । वहाँ एक हल्की सी वियोग कथा उन्हें एक प्रकार की प्रबन्धात्मकता प्रदान कर देती है । यह होने पर उसमें प्रबन्धकाव्य जैसी किसी आख्यानात्मक कथ्य की बोझिलता तनिक भी नहीं है । वास्तव में वियोग की वेदना से भिन्न वहाँ कोई आख्यान है ही नहीं । गीतिकाओं का विन्यास इतनी कलात्मकता से हुआ है कि सारी गीतिकाएं मिल कर वियोग का एक लंबा मल्हार गीत बन जाती हैं ।

महाकवि के दोनों ही गीतिकाव्यों की गीतियों में अनुभूतियों की वैयक्तिकता हैं, भावों का आवेग है, प्रेम की लालसा है, इन्द्रियों की संवेदनाओं का सराबोर कर देने वाली संवेदन शीलता है, बिम्बों की एक से एक नवीन छटा है । गीत रचना के लिए जो भावभूमि और जो शिल्प आवश्यक रूप से चाहिए वह हमारे कालिदास के पास है ।

गीत एक गतिशील रचना है । वह भावों में और भावों को गीत बनाने वाली भाषा में कहीं भी गतिरोध सहन नहीं कर पाता है । कालिदास के मेघदूत और ऋतुसंहार दोनों गीतिकाव्यों की भाषा में कहीं कोई गतिरोध नहीं है । भाषा में लोच, ध्वनियों की कोमलता और मधुरता तो है ही, नये से नये बिम्ब और सुन्दर से सुन्दर अप्रस्तुत विधान कर देने की भी अद्भुत क्षमता है । कालिदास के मेघदूत और ऋतुसंहार दोनों गीतिकाव्यों में गीतकार की निजता की कुछ ऐसी गहरी छाप अंकित हो गयी है कि अंग्रेजी हिन्दी उर्दू तथा दूसरी भाषाओं में लिखे गए कितने ही बादल गीत और ऋतुओं के नए पुराने गीत इनकी तुलना नहीं कर सकें है ।

सचमुच ही हमारा गीतकार कालिदास गीतिकाव्यों के संसार का गौरव है ।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. अथर्ववेद
2. ऋग्वेद
3. सामवेद
4. वाल्मीकि रामायण
5. महाभारत
6. भागवत पुराण
7. ब्रह्मवैवर्त पुराण
8. पद्म पुराण
9. शिव पुराण
10. अभिज्ञान शाकुन्तल
11. ऋतुसंहार
12. कुमार सम्भव
13. मालविकाग्निमित्र
14. मेघदूत
15. रघुवंश
16. विक्रमोर्वशीय


**प्रासंगिक गीतिकाव्य ग्रन्थ**


1 अमरूक शतकम्

18. गीत गोविन्दम्

| | | |
|---|---|---|
| 19. | चौरपञ्चाशिका | |
| 20. | आनन्द लहरी | |
| 21. | गंगा लहरी | |
| 22. | पीयूष लहरी | |
| 23. | आग्नेजा | व्योमशेखर, साहिबाबाद |
| 24. | आग्नेशिखा | पुष्पा त्रिवेदी, [illegible] पटना |
| 25. | अहं राष्ट्री | व्योमशेखर, साहिबाबाद |
| 26 | मृद्वीका | अभिराज राजेन्द्र मिश्र, इलाहाबाद |

**प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ**

| | | |
|---|---|---|
| 27. | काव्यालंकार | : भामह |
| 28. | काव्यादर्श | : दण्डी |
| 29. | काव्य प्रकाश | : मम्मट |
| 30. | ध्वन्यालोक | : आनन्द वर्धन |
| 31. | औचित्य विचार चर्चा | : क्षेमेन्द्र |
| 32. | साहित्य दर्पण | : विश्वनाथ |
| 33. | वृन्त रत्नाकर | : भट्ट केदार |
| 34. | संगीत दर्पण | : दामोदर पंडित |
| 35. | नाट्य शास्त्र | : भरतमुनि |
| 36. | अभिनव भारती | : अभिनव गुप्त |

## आधुनिक काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ


37. चिंतामणि : रामचन्द्र शुक्ल

38. रस मीमांसा : रामचन्द्र शुक्ल

39. साहित्यालोचन : श्याम सुन्दर दास


## कालिदास साहित्य के समीक्षा–ग्रन्थ


40. कालिदास : चन्द्रवलि पांडेय, वाराणसी

41. कालिदास : अमलधारी सिंह, दिल्ली

42. महाकवि कालिदास : कृष्ण दन्त चतुर्वेदी, आगरा

43. कालिदास की लालित्य योजना : हजारी प्रसाद द्विवेदी, दिल्ली

44. कालिदास दर्शन : शिव प्रसाद भारद्वाज, दिल्ली

45. अखण्ड और महान भारत : कालिदास की कविता : शिवकुमार भारद्वाज, दिल्ली

46. कालिदास ग्रन्थावली : सीताराम चतुर्वेदी, प्रयाग

42. कालिदास : वी.वी. मिरासी, बम्बई

43. कालिदास एवं प्रसाद का अप्रस्तुत विधान : विश्वपाल आर्य, गाजियाबाद

44. कालिदास का भारत : भगवत शरण उपाध्याय, दिल्ली

45. कालिदास : अरविन्द घोष, पांडेचेरी

46. कालिदास की कला एवं संस्कृति : देवीदन्त शर्मा, मेरठ

47. कालिदास का नाट्य कल्प : श्याम रमण पाण्डेय, पटना

48. महाकवि कालिदास : सदानन्द जखमोला कोटद्वार

49. मेघदूत एक अध्ययन : वासुदेव शरण अग्रवाल, दिल्ली

50. मेघदूत एक अनुचिन्तन : रंजन सूरिदेव वाराणसी

51. मेघदूत : केशव प्रसाद मिश्र, इलाहाबाद

## संस्कृत साहित्य इतिहास – ग्रन्थ


52. संस्कृत साहित्य का इतिहास : ए.बी. कीथ, दिल्ली

53. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय, वाराणसी

54. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : नानूराम व्यास एवं पांडेय, वाराणसी

55. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास : कपिलदेव द्विवेदी, इलाहाबाद ।

56. संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ : जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा

57. संस्कृत साहित्य में रोमांटिक प्रवृत्तियाँ : हरिश्चन्द्र वर्मा, मेरठ


## प्रासंगिक हिन्दी ग्रन्थ


58. शकुन्तला की मालिनी और महर्षि कण्व का आश्रम : ललिता प्रसाद नैकान, कोटद्वार

59. रस आखेटक : कुबेरनाथ राय, दिल्ली ।

60. आँसू : जय शंकर प्रसाद, इलाहाबाद

61. कामायनी : जयशंकर प्रसाद, इलाहाबाद

62. रवीन्द्र नाथ की कविताएं : दिल्ली

63. संस्कृत के रघुवंश की देन : शंकर दत्त ओझा, लखनऊ ।

64. अग्निजा : व्योमशेखर, साहिबाबाद

65. अग्निशिखा : पुष्पा त्रिवेदी, पटना

66. अहं राष्ट्री : व्योमशेखर, साहिबाबाद

67. आधुनिक हिन्दी प्रगीत : विमला गुप्ता, काशी

## पत्र – पत्रिकाएं

| | |
|---|---|
| आदिति | : पांडेचेरी |
| ऋतम् | : लखनऊ |
| विमर्श | : होशियारपुर |
| सागरिका | : सागर |
| स्मारिका | : उज्जैन |

मेरठ विश्व विद्यालय संस्कृत शोध पत्रिका, मेरठ

नारिजातम्, कानपुर

प्राची ज्योति, कुरुक्षेत्र

अर्वाचीन संस्कृतम्, दिल्ली

शोध प्रभा, दिल्ली